Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY-112
इतिहास दर्शन एवं लेखन
सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ
(भाग–दो)

खण्ड
1
इतिहास लेखन मे गवेषणा

इकाई– 1
गवेषणा का अर्थ, अवधारणा एवं सीमाएं

इकाई– 2
गवेषणा एवं उनके कार्य

इकाई– 3
साक्ष्य विश्लेषण के आधार तत्व

इकाई– 4
इतिहास में तथ्य

इकाई– 5
इतिहास में वस्तुनिष्ठता

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

इतिहास दर्शन एवं लेखन : सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — माननीया कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य,इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (खण्ड 1,2,3)

प्रो0 एम0 पी0 अहिरवार — आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
इकाई- 1,2,3,4,5, (खण्ड 5)

डॉ0 रमाकान्त — सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (खण्ड 4, 6)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव — आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (इकाई 1 - 30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष - 2023

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट :पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित **2024.**

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

PEPE-111

इकाई 1

गवेषणा का अर्थ, अवधारणा एवं सीमाएँ

इकाई की रूपरेखा-

1:0 उद्देश्य

1:1 प्रस्तावना

1:2 गवेषणा का सामान्य अर्थ और परिभाषा

1:3 गवेषणा की अवधारणा

1:4 गवेषणा के विविध स्तर

1:4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा

1:4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या

1:4.3 सिद्धान्तों के परिवेश में तथ्यों का निरूपण

1:5 इतिहास-लेखन में गवेषणा का महत्व

1:6 ऐतिहासिक गवेषणा की सीमाएं

1:7 बोध-प्रश्न

1:8 सन्दर्भ-ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इतिहास चिन्तन और इतिहास-लेखन बड़ा ही कठिन विषय है और ऐतिहासिक गवेषणा इतिहास-लेखन की आधारशिला है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि –

- गवेषणा क्या है या शोध किसे कहते हैं?
- गवेषणा की आधुनिक अवधारणा क्या है तथा विज्ञान ने इसे किस तरह प्रभावित किया है?
- गवेषणा के विविध सोपान/चरण कौन-2 से हैं?
- इतिहास-लेखन में इसकी क्या भूमिका होती है?
- गवेषणा के कार्य में शोधार्थी को किन-किन सावधानियों का ध्यान रखना चाहिए?

1.1 प्रस्तावना

मानव शुरू से ही जिज्ञासु प्राणी रहा है। क्या, क्यों, कैसे उसके मस्तिष्क में हमेशा उमड़ते रहे, जिससे दर्शन, विज्ञान आदि का विकास सम्भव हुआ। कारणात्मक सम्बन्धों को जानने की उत्कृष्ट अभिलाषा ने गवेषणा की सुव्यवस्थित पद्धति को जन्म दिया। आज प्राकृतिक पद्धति को जन्म दिया। आज प्राकृतिक विज्ञान, सामाजिक विज्ञान, इतिहास आदि अनुशासनों में गवेषणा सुस्थापित हो चुकी है। ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक अवधारणा सवर्था वैज्ञानिक विचारधारा की देन है। ऐतिहासिक गवेषणा इतिहास-शोध का ही पर्यायवाची है। इसे इतिहास-लेखन का आधार स्तम्भ माना जाता है। यह वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी नवीन विचार या ज्ञान विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते हैं। यह एक प्रयास है जिसके द्वारा सुसंगठित, सुव्यवस्थित तथा क्रमबद्धता के चरणों को ध्यान में रखते हुए नवीन तथ्यों की खोज की जाती है या पूर्व ज्ञात तथ्यों के सम्बन्ध में नवीन अवधारणायें प्रतिपादित की जाती हैं। गवेषणा की प्रक्रिया के तीन चरण होते हैं,

जिनमें नवीन तथ्यों की गवेषणा प्रथम चरण है। उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या दूसरा तथा सिद्धान्तों के परिवेष में तथ्यों का निरूपण क्रमशः तीसरा चरण है। इस इकाई में गवेषणा के विविध पक्षों से आपका परिचय कराया गया है।

1.2 गवेषणा का सामान्य अर्थ और परिभाषा

सामान्यतया ज्ञान की किसी विशिष्ट शाखा में जिज्ञासा रखते हुए इस दिशा में खोज द्वारा उपलब्ध होने वाली सामग्री का क्रमशः परीक्षण तथा समीक्षा ही गवेषणा है। अनुसंधान, अन्वेषण, गवेषण, शोध अथवा रिसर्च आदि शब्द गवेषणा के पर्यायवाची के रूप में प्रयुक्त होते हैं। व्युत्पत्ति की दृष्टि से अनुसंधान शब्द 'अनु' तथा 'संधान' शब्दों के योग से बना है जिसका अर्थ है विशिष्ट लक्ष्य को सम्मुख रखकर उसकी पूर्ति के लिए दिशा-विशेष में कार्य करने के लिए तत्पर रहना। दूसरे शब्दों में अनुसंधानकर्ता तथ्यों की स्थापना के लिए निरन्तर शोध-कार्य में संलग्न रहता है। 'अन्वेषक' से अभिप्राय है- किसी विशेष इच्छा से प्रेरित होकर, इससे सम्बद्ध चिन्हों के अनुसार लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना। गवेषणा में भी खोज की इच्छा ही व्यक्त होती है।

यहाँ यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि प्रारम्भ में भारतीय संस्कृति वनों तथा पर्वतों में फल-फूल रही थी। पशुपालन आर्यो का एक मुख्य व्यवसाय था। गोचारण बालकों और प्रौढ़ों की एक प्रमुख क्रिया थी। वन में गायें बहुत दूर-दूर तक चली जाती थीं तथा संध्या-समय उन गायों को घर लाने के लिए उनकी व्यापक खोज होती थी। इस क्रिया को प्राचीन भारतीय साहित्य में 'गवेषणा' नाम से पुकारा गया। गोधूलि-बेला, गोपाल, गवेषणा आदि हिन्दी के शब्दों में यही 'गो' शब्द प्रधान है। वर्तमान संदर्भ में 'गवेषणा' शब्द का प्रयोग किसी वस्तु, पदार्थ अथवा किसी नितान्त नवीन तथ्य की खोज के लिए किया जाता है। 'शोध' के अन्तर्गत किसी अज्ञात तथ्य से सम्बद्ध बिखरी हुई सामग्री की खोज तथा उसके परिष्कार अथवा शोधन का अर्थ निहित है। अंग्रेजी का रिसर्च (Research) शब्द भी गवेषणा

का पर्याय है। वस्तुतः सर्च (search) तथा अंग्रेजी के 'रि' (Re) उपसर्ग से इस ओर पुनः प्रवृत्त होने का भाव व्यक्त होता है अर्थात् उपलब्ध सामग्री का पुनः अनुशीलन एवं सर्वेक्षण अनुसंधानकर्ता का दायित्व है। इस प्रकार सूक्ष्म अन्तर होने पर भी इन्हें पर्यायवाची शब्दों के रूप में ग्रहण करना ही उचित होगा।

गवेषणा अथवा शोध को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। 1931ई0 में अमेरिकन इतिहास परिषद के अध्यक्षीय भाषण में कार्ल बेकर ने कहा था कि इतिहासकार ऐतिहासिक गवेषणा में उन्हीं ऐतिहासिक प्रतिमानों को पा सकता है जो उसके समाज ने पाने के लिए सिखाया है। वह केवल उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जिन्हें उसका समाज महत्वपूर्ण बताता है (जी. सी. पाण्डेय, पृष्ट-222)। ऐतिहासिक गवेषणा में अतीत के अन्तर्निहित ऐसे ही प्रतिमानों की गवेषणा इतिहास करता हैं। कार्लबेकर के उक्त विचार का खण्डन करते हुए बर्नहीम लिखते हैं कि शोध स्वयमेव इतिहास नहीं अपितु इतिहासकार द्वारा अपने लक्ष्य तक पहुँचने का साधन तथा प्रक्रिया है। अतएव शोध का अभिप्राय केवल समाज निर्दिष्ट अतीत के अंतर्निहित प्रतिमानों को खोजना ही नहीं, अपितु इसके अतिरिक्त कुछ और भी है (बर्नहीन, रेनियर द्वारा उद्घृत, पृष्ठ-51)।

बेवर ने इतिहासकार और शोधकर्ता में अन्तर बतालाते हुए लिखा है- यदि भाग्य अथवा परिस्थितियों के परिणामस्वरूप कोई इतिहासकार ऐतिहासिक स्रोतों को प्राप्त कर उन्हें प्रकाशित करा देता है तो ऐसे कार्य को शोध की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। उसने एक उदाहरण दिया है- पोगियों ने धूलधूसरित ग्रन्थालयों से अनेक ऐतिहासिक स्रोतों को खोजकर उन्हें प्रकाशित कराया था, परन्तु उन्हें कुशल शोधकर्ता की श्रेणी की अपेक्षा एक महान इतिहासकार की ही श्रेणी मिल पायी थी (रेनियर, पृष्ठ-51) ।

शेक अली ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक इतिहासः उद्देश्य एवं विधि में स्पष्ट किया है कि- ''शोध एक प्रकिया है जिसका अभिप्राय अतीत सम्बन्धी नवीन तथ्यों

को प्रकाश में लाना तथा ज्ञान की सीमा को विस्तृत करना है।'' रेनियर के अनुसार ''शोधकर्ता का उद्देश्य नवीन तथ्यों की खोज करना, नवीन तथ्यों का संशोधन करना तथा नवीन साक्ष्यों के आधार पर अतीत की घटना का यथार्थ एवं परिकल्पनात्मक प्रस्तुतीकरण करना है''। इस प्रसंग में वह पुनः लिखता है- ''नवीन साक्ष्यों के आलोक में घटना के महत्व तथा उसके अर्थ को स्पष्ट करना, घटना के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों को दूर करना तथा तत्कालीन समाजिक मूल्यों के परिवेश में तथ्यों की व्याख्या शोधकर्ता का उद्देश्य होना चाहिए (रेनियर, पृष्ठ-52-53।''

एच.सी. हाकेट के अनुसार- ''शोध का अभिप्राय अतीतकालीन घटना के सम्बन्ध में नवीन सूचना या विचार का प्रस्तुतीकरण होता है (हाकेट-1955, पृ0-10)।'' हेगल ने 'कार्य-कारण की गवेषणा' पर ध्यान आकृष्ट करते हुए लिखा है कि इतिहास घटनाओं का अन्वेषण और संकलन ही नहीं अपितु उनके भीतर छिपी हुई कार्यकारण की गवेषणा है। कालिंगवुड ने भी घटनाओं के परिवेश में विचार-विधि की गवेषणा को मुख्य कहा है (कालिंगवुड, पृ015)।

उपर्युक्त विमर्श से स्पष्ट होता है कि इतिहासकारों या विद्वानो द्वारा लिखी गयी प्रत्येक बात शोध के अन्तर्गत नहीं आती। शोध-गवेषणा को एक ऐसे क्रिया-कलाप के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जिसका उद्देश्य किसी वस्तु के नवीन पक्षों को प्रकाशित करना होता है। साथ ही साथ यह वर्तमान को समृद्ध करती है और इसमें विषय विशेष के सम्बन्ध में क्रमबद्धता एवं व्यवस्था होती है। शेक अली का शोध सम्बन्धी कथन विशेषतया विमर्शनीय है- ''शोध वह क्रिया है जिसके द्वारा किसी के नवीन विचार या ज्ञान-विस्तार के लिए कुछ नवीन प्रयास किये जाते हैं। यह एक प्रयास है जिसके द्वारा सुसंगठित, सुव्यवस्थित एवं क्रमबद्धता के चरणों को ध्यान में रखते हुए नवीन तथ्यों की खोज की जाती है या पूर्व ज्ञात तथ्यों के संदर्भ में नवीन आवधारणाएं प्रतिपादित की जाती हैं।''

1.3 गवेषणा की अवधारणा

इतिहास में गवेषणा की प्रक्रिया का प्रादुर्भाव अठ्ठारहवीं सदी की देन है। इस प्रक्रिया के शिलान्यासकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से वैज्ञानिक विधाओं के आधार पर इतिहास का अध्ययन कर ऐतिहासिक अवधारणा की शिलाशायिका तैयार की। वे इस बात से अवगत थे कि विज्ञान ने भौतिक जगत में क्रान्तिकारी परिवर्तन करके मानव-जीवन के लिए सुखद परिणाम प्रस्तुत किया है। यदि वैज्ञानिक विधाओं का प्रयोग इतिहास के अध्ययन में किया जाय तो इस विषय के महत्व एवं उपादयेता में अवश्य वृद्धि होगी। विज्ञान की उपयोगिता ने प्रो0 जे.बी. ब्यूरी जैसे इतिहासकारों को इस उद्घोषणा के लिए विवश कर दिया कि "इतिहास विज्ञान है, न कम और न अधिक"। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने कठिन परिश्रम से ऐतिहासिक स्रोतों को क्रमबद्ध किया, त्रुटिपूर्ण स्रोतों की व्याख्या कर उनकों विश्वसनीय स्वरूप प्रदान किया। इसके लिए इन विद्वानों ने विद्वतापूर्ण ऐतिहासिक विधाओं को प्रस्तुत किया। उनका उद्देश्य त्रुटियों मात्र को दूर करके ऐतिहासिक ज्ञान को सुनिश्चित तथा सुव्यवस्थित अध्ययन द्वारा एक सुदृढ़ शिलाशायिका प्रदान करना था, जो भावी शोधकर्ताओं के लिए सुगम मार्गदर्शन कर सके।

प्रो0 जे0बी0 ब्यूरी के बाद जर्मनी में नेबूर तथा रांके, ब्रिटेन में एक्टन, अमेरिका में कार्ल वेबर तथा फ्रांस में टेने जैसे सुप्रसिद्ध इतिहासकारों ने विद्वता के उच्चतर आदर्श को प्रदर्शित करते हुए न केवल ब्यूरी का समर्थन किया अपितु इन विद्वानों ने इतिहास-विज्ञान के तकनीकि ज्ञान की आधारशिला भी रखी। इन्होनें न केवल ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का प्रतिपादन किया, बल्कि आलोचना-पद्धति की नवीन विधियों को भी प्रस्तुत किया जिसे ऐतिहासिक अध्ययन की "वैज्ञानिक प्रणाली" की संज्ञा दी जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि 19वीं शताब्दी में ऐतिहासिक गवेषणा तथा ऐतिहासिक अध्ययन की वैज्ञानिक प्रणाली अपनी परिपक्वता एवं प्रौढ़ता को प्राप्त हुई। बर्नहीम, लांग्लाय, तथा सेनवास ने इतिहास-अध्ययन में वैज्ञानिक प्रणाली के माध्यम से अतीत का अवलोकन किया तथा अपने समसामयिक समाज को अनेक अन्तर्निहित तथ्यों का दिग्दर्शन कराया। बाद में उनके उत्तराधिकारियों ने उसे और परिष्कृत करके यथार्थ तथ्यों के संकलन-कार्य एवं श्रृंखलाबद्धता को प्रोत्साहित किया। इसी समय में अतीत से समसामयिक समाज के प्रश्नों का उत्तर दिया गया था। परिणामस्वरूप उनके उत्तराधिकारी इतिहासकारों ने न केवल उनकी विधाओं का अनुसरण किया बल्कि समय-समय पर यथोचित उपादानों द्वारा उन्हें परिष्कृत भी किया। इन विद्वानों के समवेत प्रयास से ऐतिहासिक गवेषणा की नवीन विधाएं प्रस्फुटित हुईं तथा अतीत के कोणों में निहित ऐतिहासिक तथ्य ने प्रकाशित होकर इतिहासकारों की अभिरूचि तथा ध्यान को आकृष्ट किया। इस प्रकार यथार्थ तथ्यों का संकलन किया गया तथा इतिहासकारों ने अपने कलात्मक कौशल के प्रयोग से बिखरे हुए तथ्यों को श्रृंखलाबद्ध कर अतीत का एक सुन्दर, सजीव तथा रोचक चित्र प्रस्तुत किया। उनका एकमात्र लक्ष्य अतीत से समसामयिक समाज के प्रश्नों का उत्तर प्रस्तुत करना था।

18वीं तथा 19वीं सदी के इतिहासकारों की रचनाओं में विज्ञान तथा कला का सुन्दर सामंजस्य मिलता है। झारखण्ड चौबे (2001, पृष्ठ-222) ने अपनी पुस्तक में स्पष्ट किया है कि इतिहास वैज्ञानिक विधा द्वारा तथ्यों का संकलन नहीं, अपितु एक कुशल कारीगर द्वारा निर्मित प्रासाद होता है। प्रत्येक समाज अपने युग के इतिहासकारों से ताजमहल जैसी सुन्दर रचना की अपेक्षा रखता है। आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा का एकमात्र लक्ष्य इस उद्देश्य की प्राप्ति है।

1.4 ऐतिहासिक गवेषणा के विविध स्तर

ऐतिहासिक गवेषणा के तात्पर्य बोध तथा उसकी आधुनिक अवधारणा से परिचय प्राप्त करने के उपरान्त गवेषणा की कार्य प्रणाली के विविध स्तरों तथा चरणों का परिचय प्राप्त करना भी आवश्यक है। रेनियर महोदय ने गवेषणा की जो परिभाषा दी है उसके अनुसार हम गवेषणा अथवा गवेषणा की कार्य-प्रणाली को मुख्य रूप से तीन भागों (स्तरों) में बाँट सकते हैं-

1.4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा (Invesgitaion of new data)

1.4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या (Fresh interpretation of the data already known),

1.4.3 तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन (subordination of the data to a principal),

1.4.1 नवीन तथ्यों की गवेषणा (Invesgitaion of new data): - एच. सी. हाकेट ने (1955,पृ-110) निरूपित किया है कि शोध का अभिप्राय अतीतकालिक घटना के सम्बन्ध में नवीन सूचना, तथ्य तथा विचार का प्रस्तुतीकरण है। भारतीय इतिहास में इस प्रकार के प्रमाण प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। सर्वप्रथम जेम्स प्रिंसेप ने ब्राह्मीलिपि को पढ़कर अशोक महान के सम्बन्ध में अज्ञात तथ्यों को प्रकाशित किया। उनके इस अन्वेषण ने सम्राट अशोक के संदर्भ में शोध के लिए अनेक विद्वानों का ध्यान आकृष्ट किया। सर जॉन मार्शल तथा अन्य पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय इतिहास के आगाध समुद्र में प्रवेश कर बहुमूल्य मोतियों को सामाजिक सतह पर लाने में अद्भुत सफलता प्राप्त की। ऐसी प्रक्रिया को शोध की साधारण प्रणाली के अन्तर्गत रखा जा सकता है। उसका एकमात्र उद्देश्य अतीत के उन तथ्यों को प्रकाश में लाना है जिनका ज्ञान समसामयिक समाज को न हो।

1.4.2 उपलब्ध तथ्यों की नवीन व्याख्या (Fresh interpretation of the data already known)- शोध की उक्त प्रथम प्रणाली साधारण एवं सरल है। किन्तु यह दूसरी प्रणाली जटिल है। इसके अन्तर्गत शोधकर्ता ज्ञात तथ्यों का विश्लेषण,

व्याख्या, स्पष्टीकरण, मूल्यांकन तथा आलोचनात्मक परीक्षण करता है। इस प्रणाली में शोधकर्ता अपने पूर्ववर्ती लेखक के विचारों पर मानसिक शक्ति के सहारे अपनी आलोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करते हुए उस लेखक के निष्कर्ष को गलत सिद्ध करके वहाँ अपना विचार प्रस्तुत करता है और अपने विचार को सही मनवाने पर बल देता है। भारतीय इतिहासकारों ने स्मिथ के ''आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया'' तथा 'अकबर द ग्रेट मुगल' में वर्णित विचारों को गलत सिद्ध किया है। उदाहरणार्थ स्मिथ अकबर के दीन-इलाही के विषय में लिखा है कि दीन-इलाही अकबर की बुद्धिमता नही अपितु मूर्खता का परिचायक है।

वस्तुतः पाश्चात्य इतिहासकारों ने अपनी भाषा में अपने दृष्टिकोण तथा रूचि के अनुसार भारतीय अतीत का इतिहास लिखा है। जे. एच. मिल कृत, 'हिस्ट्री आफ इण्डिया', तथा मोरलैण्ड लिखित- 'एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया' में तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर रखा गया है। इन पाश्चात्य इतिहासकारों का एकमात्र उद्देश्य मुस्लिम शासकों की अपेक्षा भारतीयों के लिए ब्रिटिश शासन की उपादेयता को सिद्ध करना था। भारतीय शोधकर्ताओं ने बड़े परिश्रम से, अतीत का निरूपण, व्याख्या तथा मूल्यांकन किया। प्रो. एस. आर. शर्मा ने (द क्रेसेन्ट इन इण्डिया, पृ0-363)। अकबर की दीन-इलाही नीति की उपादेयता और औचित्य को सिद्ध करते हुए लिखा है कि दीन-इलाही सम्राट अकबर की राष्ट्रीयता सम्बन्धी उच्च कोटि का आदर्श था। प्रो. ईश्वरीय प्रसाद की दृष्टि में दीन-इलाही मातृत्व भाव का परिचायक है। इस प्रकार तथ्यों का व्याख्यात्मक प्रस्तुतीकरण द्वितीय श्रेणी के शोध के अन्तर्गत आता है।

इस प्रणाली में शोधकर्ता ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रयोग तथ्यों के संकलन, उनके घनिष्ट सम्बन्धों को परखने तथा सामान्यीकरण के सिद्धान्त के आधार पर उनमें सुधार करने में करता है। उसमें ऐसा कर सकने की क्षमता का होना भी आवश्यक है। बेवर ने भी इसे आवश्यक कहा है। पुनः वह अपनी कथा की पुनर्रचना बदले हुए दृष्टिकोण से तत्कालीन सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप

करता है। यदि वह इसमें असमर्थ रहा तो उसे सफल इतिहासकार नहीं कहा जा सकता। जब वह अपना निष्कर्ष प्रस्तुत करने लगे तो वह न सोचने लगे कि अन्यों के निष्कर्षों की तुलना मे उसका निष्कर्ष अन्तिम सत्य है। यदि इस तरह के विचार उसके मन-मस्तिष्क में उत्पन्न होते हैं तो उसे इसका परित्याग करना होगा। तभी वह एक अच्छा गवेषक कहा जा सकता है।

1.4.3 तथ्यों की सहायता से सिद्धान्तों का प्रतिपादन (subordination of the data to a principal)- शोध-प्रक्रिया का यह तीसरा स्तर और अधिक जटिल है। इस स्तर पर पहुँचकर गवेषक दार्शनिक बन जाता है और एक सामान्य नियम और सिद्धान्त के माध्यम से अतीत की घटनाओं का निरूपण तथा उसके व्यवहारिक स्वरूप की व्याख्या करता है। उदाहरणार्थ- हीगल, मार्क्स, काम्टे, क्रोचे, स्पेंगलर, टायनबी, बिको आदि ने अपने विशेष दृष्टिकोण से अतीत का मूल्यांकन किया, अपने दार्शनिक विचार प्रस्तुत किये तथा इतिहास में आदर्शवाद, भौतिकवाद, आध्यात्मवाद, सर्वोत्कृष्टवाद, व्यक्तिवाद तथा चुनौती-प्रक्रिया के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। इन विद्वानों की मौलिक रचनाएँ शोध का सर्वोच्च आदर्श प्रस्तुत करती है।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक गवेषणा के उक्त तीनों चरण अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। उनकी गुणवत्ता और निष्कर्ष शोधार्थी के श्रम और शोध के प्रति समर्पण पर निर्भर करता है। एक गम्भीर शोधार्थी शोध के आधार पर समपर्ण की असीम सम्भावनाओं को प्रगट करता है।

1.5 इतिहास-लेखन में गवेषणा का महत्व

इतिहास-लेखन में गवेषणा का कार्य बड़ा ही जटिल तथा दुष्कर कार्य है। यह गवेषक से श्रम, समय, धैर्य और कड़ी मेहनत की अपेक्षा करता है। यद्यपि ये सभी चुनौतियाँ शोध-कार्य के मध्य में ही शोधार्थी को उसके कार्य से अलग करने के लिए बाधा डालती है, फिर भी बहुत से उत्साही शोध-विद्वान, संगठन तथा संस्थाएं

हैं जो ऐतिहासिक गवेषणा पर अत्यधिक ध्यान दे रहे हैं। इतिहास में विद्वानों की संख्या तीव्र गति से बढ़ती जा रही है और विद्वान् दिन-प्रतिदिन ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य में स्वयं को समर्पित करते जा रहे हैं जो इतिहास-लेखन में गवेषणा की महत्ता का अभिद्योतन करता है। गवेषक, गवेषणा के क्षेत्र में नयी तकनीक का उपयोग कर रहे हैं। उनके विचार दिन प्रतिदन विश्लेषणात्मक तथा समालोचनात्मक होते जा रहे हैं। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों ने गवेषणा के निष्कर्षो को वस्तुनिष्ठ बनाने में बड़ा सहयोग दिया है। ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य की उपयोगिता तथा महत्ता को ध्यान में रखते हुए विद्वान इसमें दिलचस्पी ले रहें। ऐतिहासिक गवेषणा के कार्य के कुछ महत्वपूर्ण लाभों तथा उपयोगिता को तीन स्तरों पर समझा जा सकता है- 1- व्यत्तिगत हित, 2- राष्ट्रहित, 3- विश्वहित

1- व्यक्तिगत हित- ऐतिहासिक गवेषणा का बड़ा लाभ उनके लिए हैं जिन्होनें अपनी वृत्ति अभी शुरू नहीं की है। अपना शोध-कार्य समाप्त करने के पश्चात् और ऐतिहासिक शोध का कुछ अनुभव प्राप्त करने के उपरान्त वे किसी महाविद्यालय या विश्वविद्यालय में रोजगार प्राप्त कर सकते हैं। वे अभिलेखागार अथवा पुरातत्व विभाग आदि में भी नियुक्त हो सकते हैं। एक शोध डिग्री व्यक्ति की प्रतिष्ठा को समाज में बढ़ाती है। एक अच्छा शोध-कार्य योग्य शोधार्थी को मनोवैज्ञानिक तथा मानसिक संतुष्टि प्रदान करता है।

2-राष्टहित– ऐतिहासिक गवेषणा के द्वारा समाज, व्यक्ति की अपेक्षा अधिक लाभ उठाता है। प्राचीन राष्ट्रों के इतिहास की कई कड़ियाँ खो चुकी हैं। इन खाली स्थानों को केवल ऐतिहासिक शोधों से दूर किया जा सकता है। गवेषणा किसी भी राष्ट्र के उत्थान और पतन की तस्वीर प्रस्तुत करती है। कुछ नई खोजों ऐतिहासिक गवेषणा के माध्यम से भी होती हैं। इनमें से कुछ खोजें न केवल व्यक्तियों के लिए महत्वपूर्ण होती है बल्कि पूरी दुनियाँ के लिए होती हैं। हड़प्पा सभ्यता की खोज लोगों के पुराने विचारों को बदल चुकी है। इससे पहले भारतीय इतिहास में वैदिक

युग सबसे प्राचीन था। ऐतिहासिक गवेषणा लोगों में फैली मिथ्या धारणाओं को भी दूर करता है, जो प्रायः औपनिवेशिक इतिहासकारों द्वारा स्थापित की गयी थीं।

3-विश्व हित- ऐतिहासिक गवेषणा पूरे विश्व के लिए लाभप्रद तथा उपयोगी है। ऐतिहासिक शोध विभिन्न राष्ट्रों के मध्य आपसी समझ विकसित करने में मदद देते हैं। संघर्ष के बहुत से कारण होते हैं जो कि विभिन्न बिन्दुओं पर राष्ट्रों को विभक्त करते हैं, इन्हें गवेषणा के माध्यम से दूर किया जा सकता हैं। अतः केवल व्यक्ति या राष्ट्र ही नहीं बल्कि विश्व ऐतिहासिक शोधों से लाभ उठाता है। ऐतिहासिक गवेषणा दूसरे देशों के साथ अपने सम्बन्धों की जानकारी का लाभ भी प्रदान करती है तथा राष्ट्रीय-अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्ध को प्रगाढ़ करती है।

1.6 गवेषणा की सीमाएं

इस समय हम जिस युग में जीवन यापन कर रहे हैं, सर्वथा वैज्ञानिक युग हैं। विज्ञान ने हमारे जीवन तथा समाज के विविध पक्षों को विशेष तौर से प्रभावित करते हुए वैज्ञानिक दृष्टिकोण के सृजन में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। नवसृजित वैज्ञानिक दृष्टिकोण के फलस्वरूप इतिहास लेखन तथा गवेषणा के कुछ नये प्रतिमान भी स्थापित हुए हैं।

इसमें कोई दो राय नहीं कि विज्ञानवाद ने ऐतिहासिक गवेषणा के विविध क्षेत्रों में गवेषक के कार्य को सुगम कर दिया है तथा ऐतिहासिक निष्कर्ष को वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसारित किया है, किन्तु विषयवस्तु, संसाधनों की उपलब्धता और शोध-समस्या एवं शोधप्ररचना के कारण गवेषणा की सीमायें भी हो जाती हैं। नीचें की पंक्तियों में ऐतिहासिक गवेषणा की सीमाओं की तरफ आपका ध्यान केन्द्रित किया गया है।

बेस्ट और कान (Best & Kahn) ने अपनी पुस्तक 'रिसर्च इन एजुकेशन', में स्पष्ट करते हैं कि एक मुख्य कठिनाई समस्या को इस हद तक सीमित करने की होती है कि इसका संतोषजनक विश्लेषण सम्भव हो सके। अनुभवी इतिहासकार इस तथ्य को महसूस करते हैं कि ऐतिहासिक शोधों में सीमित समस्या का अन्दर गहराई

तक जाकर विश्लेषण आवश्यक है, अपेक्षाकृत वृहद समस्या की सतही विश्लेषण से। दूसरी बड़ी कठिनाई पर्याप्त और विश्वसनीय आंकड़ों की कमी से सम्बद्ध हैं। आधुनिक और निकट के अतीत का विश्लेषण प्राचीन और मध्यकालीन इतिहास की तुलना में सरल इसलिए हो जाता है कि अतीत जितना दूर होगा, आंकड़े अपर्याप्त होगें और इनकी विश्वसनीयता खतरे में होगी। अध्ययन काल और इतिहासकार के जीवन में लम्बा फासला होता है। अतः अनुमान, आकलन तथा तार्किक विश्लेषण पर निर्भरता बढ़ जाती है। प्राथमिक स्रोतों से आकड़ों को एकत्रित करना मुश्किल है। इसमें भी कल्पना, कठिन श्रम और संसाधन की जरूरत होती है।

इतिहासकार जिन द्वितीयक स्रोतों पर आश्रित होता हैं वह अलग-अलग काल-खण्डों के होते है, खासकर तब जब किसी समाज में इतिहासलेखन के प्रति बहुत रूचि न हो। साथ ही तत्कालीन परिवेश में जो कुछ लिखा गया है उसमें इतिहास कितना है, आग्रह कितना यह देखना भी जरूरी है। जिन लोगों ने लिखा है उनकी मान्यताएँ, उनके पूर्वाग्रह और उस समय के राजनैतिक, सामाजिक वातावरण को जानना समझना भी आवश्यक है। यह भी ऐतिहासिक गवेषणा की सीमा निर्धारित करता है। ऐतिहासिक गवेषणा की सीमा यह भी है कि इसमें सांख्यिकीय विधि का प्रयोग और गणनात्मक विश्लेषण असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य है।

1.7 बोध प्रश्न-

1- इतिहास-लेखन में गवेषणा की प्रक्रिया पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- गवेषणा का क्या अर्थ है? इतिहास-लेखन में इसकी अवधारणा तथा महत्व की विवेचना कीजिए।

3- ऐतिहासिक गवेषणा के विविध स्तरों को उदाहरण सहित समझाइए?

4- गवेषणा की आधुनिक अवधारणा तथा इस पर विज्ञान के प्रभाव की विवेचना कीजिए।

5- गवेषणा क्या है? ऐतिहासिक गवेषणा की कार्यप्रणाली की विवेचना कीजिए।

1.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- शेक अली : इतिहास-दर्शन : उद्देश्य एवं विधि

2- बुद्ध प्रकाश : इतिहास दर्शन

3- ए. एल. राउज : द यूज आफ हिस्ट्री

4- जी. एल. रेनियर : हिस्ट्री इट्स परपज एण्ड मेथड

5- जी. सी. पाण्डेय : इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त

इकाई - 2

गवेषणा एवं उसके कार्य

इकाई की रूपरेखा-

2:0 उद्देश्य

2:1 प्रस्तावना

2:2 गवेषणा के सामान्य कार्य

- 2:2.1 सतर्कता
- 2:2.2 विषय- शीर्षक का चयन
- 2:2.3 रचना- पुनर्रचना
- 2:2.4 अतीत की पुनर्प्राप्ति
- 2:2.5 कल्पना-परिकल्पना तथा अनुमान
- 2:2.6 समीक्षा
- 2:2.7 विश्लेषण
- 2:2.8 प्रश्न-प्रश्नावली
- 2:2.9 कथन
- 2:2.10 अवलोकन-निरीक्षण एवं परीक्षण
- 2:2.11 तर्क प्रस्तुति
- 2:2.12 सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्ति
- 2:2.13 भविष्यवाणी
- 2:2.14 गवेंषणा के विशिष्ट कार्य

2:3 बोध-प्रश्न

2:4 सन्दर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई में गवेषणा के सामान्य कार्यों की विवचेना की गयी है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि एक गवेंषक को अपने विषय शीर्षक के चयन में किन-किन बातों का विशेष ध्यान रखना चाहिए? रचना पुनर्रचना क्या है? क्या गवेषक के लिए अतीत की पुनर्प्राप्ति सम्भव है? गवेषणा में कल्पना, परिकल्पना तथा अनुमान की क्या भूमिका है? समीक्षा, विश्लेषण, प्रश्न-प्रश्नावली, कथन, अवलोकन, तर्कप्रस्तुति, सामान्यीकरण, भविष्यवाणी आदि गवेषणा के विविध कार्यों का निष्पादन कैसे किया जा सकता है।

2.1 प्रस्तावना

इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा ने गवेषणा की क्रियाविधि एवं उसके सम्पादन तथा निष्कर्ष के स्वरूप में क्रान्तिकारी परिवर्तन कया है। पिछली इकाई में गवेषणा, उसकी अवधारणा, उसका अर्थ, उसकी त्रिस्तरीय कार्यविधि आदि की सामान्य जानकारी कर लेने के बाद हमें यह जान लेना भी आवश्यक है कि गवेषणा में एक गवेषक को किन-किन कार्यों को सामान्य रूप से सम्पादित करना पड़ता है। यह इकाई मूलतः गवेषणा के विविध कार्यों की जानकारी से सम्बन्धित है, जिसमें विषयः शीर्षक चयन से लेकर अध्ययन-लेखन कार्य तक की क्रियाविधि की विशद विवेचना की गयी है।

2.2 गवेषणा के सामान्य कार्य

ऐतिहासिक गवेषणा एक अत्यन्त कठिन एवं दुष्कर कार्य है, जो गवेषक के धैर्य, मेहनत तथा ज्ञान की कठिन परीक्षा लेता है। ऐतिहासिक गवेषणा की प्रक्रिया को आधुनिक वैज्ञानिक दृष्टिकोण ने विशेष रूप से प्रभावित किया है। विज्ञान से अनुशासित गवेषणा के विविध आयामों का प्रभाव स्पष्ट रूप से इतिहासलेखन में परिलक्षित हो रहा है। गवेषणा की आधुनिक विधाओं ने इतिहास के स्वरूप को वस्तुनिष्ठता की ओर बड़ी तेजी से अग्रसारित किया है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि गवेषणा वर्तमान ऐतिहासिक अध्ययन या इतिहास-लेखन का सर्वस्व है। पिछली इकाई में हम लोगों ने गवेषणा के अर्थ, अवधारणा तथा उसकी सीमाओं के बारे में सामान्य जानकारी प्राप्त की थी। उसके बाद हमें यह जान लेना भी आवश्यक है कि गवेषणा में एक गवेषक को किन-किन कार्यों को सामान्य रूप से सम्पादित करना पड़ता है। चूँकि गवेषणा एक वैज्ञानिक विधा है, अतः इसमें प्रायः सभी वैज्ञानिक अनुसंधान के कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं। ऐतिहासिक गवेषणा में जो सामान्य रूप से कार्य करने होते हैं वे इस प्रकार हैं:- सतर्कता, विषय-शीर्षक चयन, रचना-पुर्नरचना, प्रश्न-कथन, सामान्यीकरण, परीक्षण, तर्कप्रस्तुति, समीक्षा, अनुमान, भविष्यवाणी, निष्कर्ष आदि। इनके विषय में कुछ आवश्यक जानकारी ऐतिहासिक सातत्य से संक्षेप में करायी जा रही है।

2.2.1 सतर्कता

गवेषणा एक ऐसा कार्य है जिसमें एक गंवेषक को काफी सतर्कता एवं सावधानी बरतनी होती है। यह सतर्कता उसे विषय:शीर्षक चयन से लेकर अध्ययन-लेखन, कार्य-सम्पादन तक रखनी पड़ती है। जैसे- गलत विषय न चुन जाय, भ्रामक शीर्षक न मिल जाय, व्यर्थ के स्रोत संदर्भ न सामने आयें। मौलिक-वास्तविक ग्रन्थ ही अध्ययन किये जायें, संदर्भ-ग्रन्थों की भौतिक रचना का सही ज्ञान हो। उचित कथन, प्रश्न, परीक्षण, तर्क, अनुमान तथा निष्कर्ष आदि निकल सकें। तथ्यों की प्रस्तुति सहीं ढंग से हो सके। यथार्थ पर आवरण न चढ़े। गवेषक के लिए गवेषणा-कार्य के अन्तर्गत जो भी कार्य निर्दिष्ट हों उन सबके करने में पूरी सतर्कता रखना ही गवेषणा में सतर्कता की अवधारणा है, जिसे अनावश्यक विस्तार से बचने के लिए संक्षेप में बतलाया गया है।

2.2.2 विषय:शीर्षक का चयन

गवेषणा कार्य के लिए विषय का चयन एक दुष्कर कार्य है तथा उस विषय के अन्तर्गत शोध-शीर्षक का चयन तो और भी अधिक सावधानी की अपेक्षा करता

है। यह कार्य एक बौद्धिक प्रचेष्ठा है। इसका अर्थ केवल नवीन आविष्कार और अन्वेषण नहीं है। इसका अर्थ एक नवीन विन्यास, एक नवीन दृष्टिकोण तथा एक नवीन साक्ष्य आदि भी है। यदि शोधकर्ता अपना विषय ढंग से चुनने में असफल होता है तब वह अपने कार्य के प्रति न्याय करने में असमर्थ होगा।

एक योग्य गवेषक को निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए अपने विषय-शीर्षक का चयन करना चाहिए तथा इसके बाद ही प्रारम्भिक तैयारी शुरू करनी चाहिए। अपने शोध के विषय का निर्णयात्मक चयन करने में गवेषक को अपनी योग्यताओं, क्षमताओं का ख्याल रखते हुए अपनी अभिरूचि के अनुसार सावधानी पूर्वक विषय का चयन करना चाहिए क्योंकि उसे अपनी ऊर्जा तथा स्रोतों का उपयोग करते हुए वर्षों तक चयनित विषय पर कार्य करना पड़ता है। शोधकर्ता को जिस विषय का ज्ञान सबसे अधिक हो, उसी विषय पर शोध-कार्य करना चाहिए। गवेषणा का कार्य विद्यमान स्रोतों तथा अभी तक अज्ञात स्रोतों, आँकड़ों पर आधारित होता है। इसलिए विषय-शीर्षक का चयन करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि गवेषणा हेतु प्रचुर स्रोत-सामग्री तथा आँकड़ों की उपलब्धता है कि नहीं। गवेषक को अपने मस्तिष्क में ख्याल रखना चाहिए कि उसे सामग्री आसानी से उपलब्ध हो जाय तथा उपलब्ध शोध-सामग्री विश्वसनीय भी हो। शोधकर्ता को यह भी विचार करना चाहिए कि शोध का विषय समाज तथा व्यक्ति के लिए लाभदायक सिद्ध होगा।

एक योग्य तथा मेहनती शोधकर्ता को अन्तिम रूप से एक विषय चुनने से पूर्व उपलब्ध सामग्री की भाषा को भी ख्याल में रखना चाहिए। सामग्री की उपलब्धता अर्थहीन सिद्ध हो जायेगी, अगर शोध-सामग्री जिस भाषा में है, उसे शोधार्थी न जानता हो। तुलनात्मक विषयों पर शोध-कार्य करने में कठिनाई होती है क्यों कि इसमें दो तरह की संस्कृति, भाषा और विषय-सामग्री का अध्ययन करना पड़ता है। अतः ऐसे विषयों से शोधकर्ता को बचना चाहिए। विषय-शीर्षक चयन में ग्रन्थों एवं पत्र-पत्रिकाओं की संदर्भ-सूचियों से भी सहायता ली जा सकती है। समय-

समय पर इतिहास से सम्बन्धित पत्र-पत्रिकाओं तथा ग्रन्थ-सूचियों में प्रकाशित समालोचनाओं का अध्ययन करना चाहिए ताकि शोधकर्ता को अपने विषय शीर्षक चयन में मदद मिल सके। प्रायः समीक्षाओं, ग्रन्थ सूचियों, संदर्भों में कुछ समस्याएँ उपलब्ध होती हैं, जिनमें शोध-कार्य की पुनः आवश्यकता होती है।

2.2.3 रचना पुनर्रचना

चयनित विषयान्तर्गत गवेषक रचना अथवा पुनर्रचना का कार्य करता है। जब वह सर्वथा नये विषय पर लिखता है तो उसे रचना कहते हैं और जब वह किसी पूर्व विज्ञप्त विषय पर अपने भिन्न दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए लिखता है तो उसे पुनर्रचना कहते हैं, (रेनियर, पृ-22)। रचना किसी विषय की सीमा के अन्तर्गत तथ्यों की यथार्थ समालोचना के साथ क्रमबद्ध घटना-वर्णन के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत की जाती है जो समसामयिक मानव-समाज को छूती हुई होनी चाहिए। इसकी शैली सरल, सुबोध, सरस, तथा साहित्यिक होनी चाहिए। हाकेट के अनुसार रचना रोचक तथा मूल्यसंम्पृक्त होनी चाहिए। यह कार्य रचनाकार सामान्यीकरण, व्याख्या, विश्लेषण तथा मूल्यांकन के सिद्धान्तों के आधार पर करता है। हेनरी पिरेन के अनुसार विषय की सीमा तथ्यों की यर्थाथता, ऐतिहासिक स्रोतों की विश्वसनीयता तथा घटनाओं की क्रमबद्धता के पश्चात् गवेषणा में कलात्मक पुनर्रचना प्रमुख हो जाती है।

2.2.4 अतीत की पुर्नप्राप्ति

वैज्ञानिक इतिहासकारों द्वारा ऐतिहासिक गवेषणा की नवीन विधाओं के प्रतिपादन का एकमात्र उद्देश्य अतीत की पुनर्प्राप्ति था। यह एक गम्भीर विचारणीय प्रश्न है कि क्या अतीत की पुनर्प्राप्ति इन विधाओं द्वारा सम्भव है? 19वीं सदी के जर्मन इतिहासकार यह मानते थे कि अतीत का यथावत् प्रस्तुतीकरण ही गवेषक का कर्तव्य है। उनकी यह मान्यता उस समय मिथ्या सिद्ध हुई जब गवेषकों ने अपने मनोनुकूल तथ्यों का चयन तथा व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से तोड़-मरोड़ कर उनका प्रस्तुतीकरण किया। परिणामस्वरूप हेनरी फोर्ड जैसे प्रख्यात इतिहासकारों

ने इतिहास को "अंधकार कोठरी" की संज्ञान प्रदान की। इस अवधारणा ने कार्लबेकर जैसे इतिहासकार को यह कहने के लिए बाध्य किया कि कोई भी इतिहासकार अतीत की पुनर्प्राप्ति नहीं कर सकता। चार्ल्स बियर्ड ने लिखित इतिहास को विश्वास की प्रक्रिया इंगित किया।

उपर्युक्त विद्वानों के वाक्यांशों मे कुछ सच्चाई अवश्य है क्योंकि इतिहास-गवेषक के पास वैज्ञानिक की तरह कोई ऐसा उपकरण नहीं है जिसके द्वारा वह अपने समसामयिक समाज को अतीत का दिग्दर्शन करा सके अथवा स्वयं कर सके। ऐतिहासिक स्त्रोतों में वर्णित तथ्यों के आधार पर वह अतीत का काल्पनिक पुनर्निर्माण करता है। वह अतीत का प्रत्यक्ष निरीक्षण नहीं कर सकता है। इसलिए अतीत की प्रस्तुति अथवा पुनर्प्राप्ति एक विश्वास मात्र कहा जायेगा। इसे यथातथ्य कहना उचित नहीं प्रतीत होता है। कार्ल बेकर ने इसी सत्य के सदंर्भ मे कहा है कि अतीतकालिक ऐतिहासिक सत्य एक प्रतीक है जो इतिहासकार के मस्तिष्क में विद्यमान रहता है।

इतिहास के संदर्भ में कार्ल बेकर तथा बियर्ड के अभिमत की कुछ लोगों ने कटु आलोचना की है और बताया है कि उन पर ईसाई धर्म का प्रभाव होने से ही इस तरह की निराशावादी बाते कही गयी है। इतिहास न तो 'अंधेरी कोठरी' है और न विश्वासप्रधान। क्या गौतम बुद्ध, अशोक, अकबर आदि ऐतिहासिक तथ्य नही, बल्कि विश्वास के कारण इन्होनें इतिहास में स्थान प्राप्त किया है? इसलिए यह गलत है कि ऐतिहासिक अतीत की पुनर्प्राप्ति सम्भव नहीं है। परन्तु यह शोधकर्ता के दृष्टिकोण पर निर्भर करता है कि वह अतीत की पुनः प्राप्ति किस रूप में चाहता है, क्योंकि अतीत की पुनर्रचना कुछ चुने हुए तथ्यों के आधार पर की जाती है। इतिहासकार सामाजिक आवश्यकता के अनुसार अतीत का प्रस्तुतीकरण करता है। इसलिए प्रत्येक युग में इतिहास-लेखन की आवश्यकता की अनुभूति की गयी है।

ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रतिपादन अतीत की पुनर्प्राप्ति के लिए किया गया है। रेनियर का अभिमत है कि ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रमुख अभिप्राय अतीत सम्बन्धी उस कहानी का प्रस्तुतीकरण होना चाहिए जो वर्तमान को प्रकाशित कर सके तथा समसामयिक समाज को संतुष्ट कर सके। क्रोचे के अनुसार इतिहासकार का उद्देश्य उस अतीत की पुनर्प्राप्ति होनी चाहिए जो गवेषक की आत्मा को स्पदिन्त कर सके। ओकशाट का अभिमत है कि वर्तमान का अविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है जो वर्तमान को प्रभावित तथा नियंत्रित करता है तथा सुखद भविष्य का मार्गदर्शन करता है। ऐसे ही अतीत की पुनर्प्राप्ति ऐतिहासिक गवेषणा की विधाओं का प्रमुख उद्देश्य है। अतीत की पुनर्प्राप्ति विषय में रेनियर लिखता है कि घटना, साक्ष्य, संदेह, क्रमबद्धता, तिथिक्रम, कार्य-कारण सम्बन्ध, अनुमान, वस्तुनिष्ठता, भाषा तथा व्याकरण का ज्ञान और कलात्मक पुनर्रचना आदि के प्रयोग से गवेषणा को अत्यधिक सम्पुष्टता प्राप्त होती है और अतीत की पुनर्प्राप्ति का मार्ग सुगम हो जाता है।

2.2.5 कल्पना-परिकल्पना तथा अनुमान

इतिहास-लेखन में कारणों की व्याख्या में परिकल्पना सहायक होती है। हाल्फन का कहना है कि कल्पना के अभाव में कारणों की क्रमबद्धता कठिन है। इसी सत्य को ध्यान में रखकर क्रोचे तथा कालिंगवुड ने कहा है कि कल्पना ऐतिहासिक ज्ञान की मूलस्रोत है। इसी को भारतीय दर्शन में अनुमान कहा गया है।

इतिहास में अनुमान भी लगाया जाता है। रीतिवादी इतिहासकार किसी रेखांकन के आधर पर घटना का अनुमान कर लेते हैं। वे इस तथ्य को भूल जाते हैं कि इतिहास पूर्ण रूप से काल्पनिक नहीं अपितु साक्ष्यों पर आधृत है। जैसे- किसी स्थान पर खण्डहर को देखकर अनुमान किया जाता है कि यहाँ कभी एक विशाल नगर रहा होगा। किन्तु अनुमान कभी काल्पनिक भी हो सकता है। दो चार भवनों के अवशेष देखकर विशाल नगर के बारे में अनुमान कर लेना बहुत अधिक ठीक नहीं

कहा जा सकता। यही कारण है कि इतिहासकार का निष्कर्ष अनुमानात्मक अथवा सम्भावनात्मक ही होता है, विज्ञान की भाँति निश्चयात्मक नहीं। कालिंगवुड ने इस अनुमान को "साक्ष्यों का प्रस्तुतीकरण" इंगित किया है

2.2.6 समीक्षा

ऐतिहासिक गवेषणा में समीक्षा एक आवश्यक प्रक्रिया है। समीक्षा एक इतिहासकार की एक विशेषता है जो वह इतिहास-लेखन के प्रयोग में लाता है। वह प्राप्त तथ्यों/साक्ष्यों की विविध प्रकार से समीक्षा करता है- उसकी काल्पनिकता और निश्चयात्मकता की जाँच करता है। डा. वी. शेकअली के अनुसार गलतियों तथा भ्रम को दूर करने के लिए और एक दस्तावेज की सत्यता या यथार्थता की गणना करने हेतु 'समीक्षा' विद्वान के हाथ में महत्वपूर्ण हथियार है।

2.2.7 विश्लेषण

समय के साथ ऐतिहासिक अवधारणा बदलती रहती है। पहले इतिहास में प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में जो साक्ष्य प्राप्त होते थे उनको यथावत स्वीकार कर लेने की परम्परा ज्यादा थी। किन्तु वर्तमान वैज्ञानिक युग में इतिहासकार साक्ष्यों का विधिवत विश्लेषण करते हैं, क्योंकि अतीत का चिन्तन कभी पूर्ण नहीं होता और प्रत्येक युग में नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य मे अतीत का चित्रण परिवर्तनशील होता है। इसलिए नवीन साक्ष्य पुरातन साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण के लिए शोधकर्ता को विवश करते हैं। इस प्रकार विश्लेषण ऐतिहासिक गवेषणा का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग है।

2.2.8 प्रश्न-प्रश्नावली

बेकन के अनुसार वैज्ञानिक प्रकृति से प्रश्न करता है तथा वैज्ञानिक विधाओं द्वारा अपने प्रश्न का उत्तर प्राप्त करता है। इतिहास अतीत से प्रश्न पूछता है परन्तु यह इतिहासकार का व्यक्तिगत प्रश्न नहीं बल्कि समसामयिक समाज का प्रश्न होता है। इतिहासकार अतीत के अगाध अन्तस्तल में प्रवेश करके समाज के प्रश्नों का

उत्तर ढूँढता है। प्लेटो ने भी अतीत से अपने प्रश्नों का उत्तर चाहा है। सुकरात की शिक्षा उसके प्रश्नों द्वारा ही दी गयी थी। भारतीय इतिहासकारों के निष्कर्ष भी उनके प्रश्नों के ही उत्तर हैं। इस विचारधारा को हम कल्पना, पूर्वाग्रह अथवा मूलभूत प्रश्नोत्तर कह सकते हैं। प्रश्नोत्तर में सहायक को साक्ष्य कहते हैं। प्रश्नों के अभाव में साक्ष्यों का संकलन कठिन होता है। कालिंगवुड के अनुसार इतिहासकार साक्ष्य पर आधारित अतीत की पुनरावृत्ति करता है।

2.2.9 कथन

ऐतिहासिक गवेषणा में साक्ष्यों की तरह 'कथन' का भी विशेष महत्व है। कथन सत्य और असत्य दोनों से सम्बद्ध हो सकता है। कथन साक्ष्ययुक्त एवं साक्ष्यरहित, दोनों हो सकता है। साक्ष्य सहित कथन अधिक विश्वसनीय होता है। कथन प्रिय एवं अप्रिय दोनों हो सकता है। इतिहास में केवल सत्य किन्तु अप्रिय कथन को महत्व देने वालों की संख्या अब घटती हुयी दर पर प्राप्त होती है, जबकि वैज्ञानिक इतिहासकार यह मानने लगे हैं कि अप्रिय कथन से बचने के लिए इतिहास को असत्य का भी सहारा लेना पड़ सकता है, जो विशेष परिस्थिति में अन्यथा नहीं कहा जा सकता। कथन एक प्रकार के साक्ष्य-स्वरूप होते हैं, जबकि साक्ष्य के रूप में हम कुछ कहते हैं और कुछ प्रदर्शित भी करते हैं। साक्ष्य के सातत्य से ऐतिहासिक आधार पर कैंची तथा गोंद शैली के समर्थक इतिहास के प्राधिकारी के कथन के यथावत स्वीकार कर लेते हैं, किन्तु वैज्ञानिक इतिहासकारों ने इस शैली को मान्यता प्रदान नहीं की। ये लोग प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार न करके अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अपना यथार्थ कथन प्रस्तुत करते हैं। कालिंगवुड के अनुसार प्रायः सिक्कों, इमारतों आदि में उपलब्ध साक्ष्य अधिक विश्वसनीय होते हैं और वैज्ञानिक इतिहासकार को मनोनुकूल परिणाम देते हैं। अतः आधुनिक शोधकर्ता उसी कथन को साक्ष्य के रूप में स्वीकार करता है, जो उसके विचारों की पुष्टि कर सके।

2.2.10 अवलोकन-निरीक्षण एवं परीक्षण

गवेषणा में अतीत की घटना और समसामयिक स्थिति का उचित ढंग से अवलोकन एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। तथ्यों की विश्वसनीयता के लिए उनका सभी प्रकार से निरीक्षण एवं परीक्षण भी किया जाना चाहिए। लेखक कालीन परिस्थितियों की जाँच करके सत्य का अनुमान लगाया जा सकता है कि उसने जिस घटना का वर्णन किया है वह सही है या गलत। हाकेट ने विज्ञान की भाँति इतिहास में भी विश्वसनीयता के निरीक्षण को आवश्यक बताया है। कभी-कभी प्रत्यक्षदर्शी का कथन भी असत्य हो जाता है और वह किन्हीं कारणों से तथ्य को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करता है। इसलिए निरीक्षण-परीक्षण आवश्यक होता है।

2.2.11 तर्क प्रस्तुति

गवेषणा में अपने कथनों को प्रतिष्ठित करने और अन्य विचारों को अपुष्ट सिद्ध करने के लिए तरह-तरह के साक्ष्यों को अपनी तार्किक शक्ति के सहारे प्रस्तुत किया जाता है। तर्क आवश्यक है किन्तु वह विषयान्तर्गत एवं व्यवहारिक होना चाहिए। वह अनावश्यक एवं बिना किसी कारण के नहीं होना चाहिए कि लोग उसे वितर्क की संज्ञा देने पर विवश हो जायें। गवेषक को सदैव रचनात्मक तर्क प्रस्तुत करना चाहिए।

2.2.12 सामान्यीकरण एवं निष्कर्ष प्राप्ति

ऐतिहासिक घटनाओं की क्रमबद्धता के पश्चात इतिहासकार सामान्यीकरण के माध्यम से महत्वपूर्ण निष्कर्ष प्रस्तुत करता है। गवेषणा कार्य में सामान्यीकरण का विशेष महत्व है। गार्डिनर के अनुसार सामान्यीकरण ऐतिहासिक घटना का मार्गदर्शन है। ऐतिहासिक गवेषणा में सामान्यीकरण का अभिप्राय सामान्य ज्ञान तथा बौद्धिक ज्ञान का प्रस्तुतीकरण होता है, जो जटिल विषय को सरल, सुबोध तथा सुगम बना देता है। उदाहरणार्थ-शक्ति भ्रष्ट करती है तथा सर्वशक्तिमान सभी को भ्रष्ट बना देता है (फ्रैंकेल, पृ0414)। इस प्रकार एक भ्रष्ट व्यवस्था की अभिव्यक्ति इतिहासकार

एक वाक्य द्वारा करता है। इसी प्रकार मानसिक प्रक्रिया, व्यक्तिगत योग्यता तथा एक वर्ग को स्पष्ट करने के लिए कुछ विशेष शब्दों का प्रयोग करता है। जैसे- प्यूरिटन मस्तिष्क, प्रशियन अधिकारी, विक्टोरियन व्यापारी आदि। इसी सामान्यीकरण के सिद्धान्त के अन्तर्गत हम 'चाणक्य' शब्द का जब प्रयोग करते हैं तो एक प्रतिशोधयुक्त व्यक्ति का बोध होता है और जब 'विभीषण' का नाम लेते है तो 'घर का भेदी लंका ढाहे' की उक्ति की ओर इंगित करता है। चार्ल्स फैकेल के अनुसार सामान्यीकरण इतिहासकार के वर्ण्य-विषय को सजीवता प्रदान करता है।

प्रत्येक रचना अपने आप में एक स्थान पर चलकर सीमित की जाती है इसलिए उसके अन्त में पूरे लेखन कार्य का निष्कर्ष लिखना पड़ता है। निष्कर्ष के साथ ही किसी गवेषणा की समाप्ति मानी जाती है। रचना यदि सुन्दर प्रासाद या महल हो तो उसे और अधिक सुन्दर बनाने के लिए निष्कर्ष एक बाग-बगीचे, फूल-पौधे और गमले की तरह से है जो कि उस प्रासाद की सुन्दरता में चारचाँद लगाने की तरह। निष्कर्ष का आभरण है जो कि रचना रूपी दुल्हन को सजाने-सवाँरने का कार्य करता है। अपनी रचना को रोचक एवं ग्राह्य बनाने के लिए एक गवेषक कुछ नवीन विधाओं का प्रयोग करता है इसी को निष्कर्ष-प्रक्रिया की संज्ञा दी जाती है। गवेषणा का सम्बन्ध व्यक्ति के व्यक्तिगत विचारों (मानसिक अवस्था) से होता है जिसे वह कल्पना के आधार पर नहीं अपितु साक्ष्यों के आधार पर एक विशिष्ट साहित्यिक शैली से सुशोभित तथा परिष्कृत करता है जिससे कि लोग उसका अध्ययन करने के लिए आकर्षित एंव विवश किये जा सकें। इसी को किसी ऐतिहासिक गवेषणा में निष्कर्ष-प्रक्रिया अथवा निष्कर्षप्राप्ति की संज्ञा दी जा सकती है।

2.2.13 भविष्यवाणी

इतिहास को विज्ञान की श्रेणी से पृथक रखने वाले इतिहासकार यह मानते हैं कि एक वैज्ञानिक की भाँति एक इतिहासकार भविष्यवाणी करने में असमर्थ होता है।

प्रो0 कार ने भी इसे स्वीकृत किया है। वाल्श का कहना है कि वैज्ञानिक एक सफल भविष्यवक्ता है जबकि इतिहासकार में इस गुण का अभाव दिखायी देता है। कार्ल आर. पापर के अनुसार वैज्ञानिक भविष्यवाणी करता है और इतिहासकार परिस्थितियों के संदर्भ में भविष्य के लिए मार्गदर्शन करता है। प्रो0 कार के अनुसार इतिहासकार की भविष्यवाणी तथा भावी मार्गदर्शन का आधार सामान्यीकरण का सिद्धान्त है। इसलिए भविष्यवाणी जैसी बात गवेषणा का विषय हो ही नहीं सकता। परन्तु घटना विशेष की सामयिक पुनरूक्ति के आधार पर गवेषक भविष्यवाणी करने का प्रयास करता है।

2.3 गवेषणा में विशिष्ट कार्य

गवेषणा-कार्य केवल वहीं तक स्थिर नहीं रहता, अपितु उसकी परिणति लेखन-कार्य के रूप में होता है, जिसके फलस्वरूप एक पुस्तक अथवा शोधप्रबन्ध का निर्माण होती है। उसकी रचना में एक इतिहास-लेखक को लेखन की सभी मर्यादाओं को शिरोधार्य करके चलना पड़ता है। लेखन के कई एक नियम होते हैं, किन्तु गवेषणा के नियम कुछ विशेष भी होते हैं। इस इकाई में हमने गवेषणा के कुछ प्रमुख सामान्य कार्यों का उल्लेख किया है। गवेषणा में कुछ विशिष्ट कार्य ऐसे होते हैं, जो गवेषणा की दृष्टि से विशेष ध्यान देने योग्य होते हैं। जैसे- वास्तविक तथ्यों की प्राप्ति (संग्रह), साक्ष्यों की प्रस्तुति, तथ्यों की व्याख्या, उसका स्पष्टीकरण, उसकी आलोचना-समालोचना आदि। विज्ञान तथा सामाजिक विज्ञान के विषयों में गवेषणा अथवा ग्रन्थ-रचना के समय कुछ और विशिष्ट कार्यों (नियमों) को एक लेखक तथा गवेषक सम्पादित करता है। वस्तुतः इतिहास-लेखन एवं ऐतिहासिक गवेषणा में ये कुछ सूत्र एवं सिद्धान्त मुख्य होते हैं: 1- तथ्य, 2-साक्ष्य, 3-व्याख्या, 4-स्पष्टीकरण, 5-आलोचना। इनके बारें में अन्य इकाई में विस्तार से चर्चा की जायेगी।

2.4 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक गवेषणा में गवेषक की सामान्य भूमिका को स्पष्ट कीजिए।

2- शोध-विषय के चयन के लिए गवेषक को किन बातों का ध्यान रखना चाहिए? स्पष्ट कीजिए।

3- ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं का उद्देश्य अतीत की पुनः प्राप्ति है। संक्षिप्त विवेचना कीजिए।

4- सामान्यीकरण क्या है? ऐतिहासिक गवेषणा में इसकी क्रियाविधि तथा महत्व का वर्णन कीजिए।

2.5 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन - झारखण्ड चौबे

2- इतिहास दर्शन - कौलेश्वर राय

3- इतिहास क्या है - ई. एच. कार

4- इतिहास दर्शन - बुद्ध प्रकाश

5- इतिहास दर्शनः उद्देश्य एवं विधिः वी0 शेक अली

इकाई-3

साक्ष्य विश्लेषण के आधार तत्व

इकाई की रूपरेखा

3:0 उद्देश्य

3:1 प्रस्तावना

3:2 ऐतिहासिक साक्ष्य

3:3 ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में तथ्य

3:4 ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण

3:5 इतिहासकार तथा साक्ष्य

3:6 साक्ष्य तथा विश्लेषण

3:7 साक्ष्य-विश्लेषण के आधार-तत्व

3:7.1 दुर्गम छलाँग
3:7.2 घटना का ज्ञान
3:7.3 स्मृति इतिहास नहीं है
3:7.4 प्रमाण
3:7.5 कैंची तथा गोंद इतिहास
3:7.6 ऐतिहासिक अनुमान
3:7.7 कबूतरी कोटर
3:7.8 प्रश्न
3:7.9 कथन और साक्ष्य

3:8 साक्ष्यों की आलोचना

3:9 साक्ष्यों की विश्वसनीयता को परखने के आधार

3:9.1 सत्य कहने की योग्यता

3:9.2 सत्य कहने की इच्छा

3:9.3 सूचना की सत्यता

3:9.4 स्वतंत्र परिपुष्टि

3.10 बोध-प्रश्न

3.11 संदर्भ-ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि –

- साक्ष्य क्या है?
- इतिहासकार तथा साक्ष्य के बीच किस तरह का सम्बन्ध होता है।
- इतिहास-लेखन में साक्ष्यों के विश्लेषण की क्या उपयोगिता होती है।
- किन आधारों पर साक्ष्यों का विश्लेषण किया जाता है?
- साक्ष्यों की विश्वसनीयता के परखने के आधार कौन-कौन से हैं?

3.1 प्रस्तावना :

ऐतिहासिक गवेषणा में साक्ष्य की सहायता से ही किसी घटना का क्रमबद्ध ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इतिहासकार और साक्ष्यों के मध्य अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। वह व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से साक्ष्यों को न केवल क्रमबद्धता प्रदान करता है अपितु उसके प्रभाव का भी विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। वैज्ञानिक विधा में आस्था रखने वाले आधुनिक इतिहासकारों ने निश्चित विश्लेषणात्मक विधियों से साक्ष्यों की आलोचना पर बल दिया है जिससे इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठता की ओर अग्रसर हुआ है। इस इकाई में साक्ष्यों की विश्लेषण-विधियों के साथ-2 उनकी विश्वसनीयता को परखने के विभिन्न आधारों को भी विमर्श का विषय बनाया गया है।

3.2 ऐतिहासिक साक्ष्य :

किसी घटना का क्रमबद्ध ज्ञान प्रदान करने वाले रेखांकन को साक्ष्य कहते हैं। रेखांकन घटना का वह केन्द्र बिन्दु है जहाँ से साक्ष्य का संकलनकर्ता अपना कार्य प्रारम्भ करता है। साक्ष्य का शाब्दिक अर्थ है- सबूत, गवाही, प्रमाण। आक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार साक्ष्य वह रेखांकन है जो अतीत अथवा वर्तमानकालिक घटना से सम्बद्ध ज्ञान की प्राप्ति में सहायक सिद्ध हो सके। जैसे- प्राचीन हिमनदी की प्रक्रिया के साक्ष्य। रेनियर के अनुसार किसी घटना सम्बन्धी जांचकर्ता के प्रश्नोत्तर में

जो भी तथ्य सिद्ध हो सके उसे साक्ष्य कहा जाता सकता है। समाज में साक्ष्यों का प्रयोग वैज्ञानिक, अधिवक्ता तथा इतिहासकार करते हैं। इनके प्रयोग की विधियों में समानतायें तथा विभिन्नतायें होती हैं। साक्ष्यों के आधार पर प्राप्त एक वैज्ञानिक निष्कर्ष सर्वव्यापी तथा सर्वकालिक होता है किन्तु इतिहासकार के साक्ष्यों का निष्कर्ष किसी विशेष घटना तथा विशेष काल से होता है। इसी प्रकार इतिहासकार के साक्ष्य जहाँ एक ओर ऐतिहासिक स्रोतों में निहित होते हैं वहीं अधिवक्ता जीवित व्यक्तियों को साक्ष्य के रूप मे प्रस्तुत करता है।

3.3 ऐतिहासिक साक्ष्य के रूप में तथ्य

सामान्यतः ऐतिहासिक तथ्यों को ही साक्ष्य कहते हैं। साक्ष्यों का अन्वेषण नहीं अपितु खोज की जाती है। डेविड थामसन के अनुसार साक्ष्यों तथा उनकी व्याख्या की अंतर्क्रिया की निरन्तर प्रक्रिया ही इतिहास है। ई.एच. कार के अनुसार सभी तथ्य ऐतिहासिक अध्ययन के आधार हैं परन्तु व्याख्या के अभाव में तथ्य अनुपयोगी तथा नीरस होते हैं। वास्तव में तथ्यों की व्याख्या से तात्पर्य साक्ष्यों पर आधारित क्रमबद्ध वर्णन ही होता है। मानव जाति को पीढ़ी दर पीढ़ी प्रभावित करने वाले वे कार्य जो विशेष समय पर किये जाते हैं, तथ्य कहे जाते हैं। इनका संकलन करके इनके कारणों की खोज की जाती है, तब तथ्यों की व्याख्या करते हैं, क्योंकि तथ्यों की व्याख्या ही मुख्य मानी जाती है। यह व्याख्या तथ्यों पर आधारित तथा क्रमबद्ध होती है। इस तरह साक्ष्यों पर आधारित व्याख्या उत्तम होती है। किट्सन क्लार्क ने इस मत का समर्थन करते हुए कहा है कि तथ्यों को यथावत स्वीकार न करके उनकी पुष्टि साक्ष्यों से करनी चाहिए।

3.4 ऐतिहासिक साक्ष्यों का विश्लेषण

प्रसिद्ध विद्वान कालिंगवुड की धारणा है कि इतिहासकार द्वारा प्रस्तुत अतीत का चित्रण कभी पूर्ण नहीं होता है। क्योंकि प्रत्येक युग का इतिहासकार नये साक्ष्यों की गवेषणा द्वारा इतिहास लिखता है। वर्तमान इतिहासकार के लिए अतीत का जो चित्रण यथार्थ प्रतीत होता है वह नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में भावी पीढ़ी के

इतिहासकार के लिए गलत हो सकता है। अतः अतीत का स्वरूप निरन्तर परिवर्तनशील है। प्रत्येक पीढ़ी समसामयिक इतिहासकारों से कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर चाहती है (डेविड थॉमसन,पेज-39)। समसामयिक इतिहासकार साक्ष्यों के परिवेश में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर अतीत से प्रस्तुत करता है। प्रत्येक युग में साक्ष्य-विश्लेषण की यही परम्परा रही है।

3.5 इतिहासकार तथा साक्ष्य

इतिहासकार तथा साक्ष्य के मध्य अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। इतिहासकार के बिना साक्ष्य मृत एवं अर्थहीन है तथा साक्ष्य के अभाव में इतिहासकार का अस्तित्व अर्थहीन हो जाता है। डेविड थामसन की मान्यता है कि इतिहासकार व्याख्या और विश्लेषण के माध्यम से साक्ष्यों को न केवल क्रमबद्धता प्रदान करता है अपितु उनके प्रभाव का भी विश्लेषणात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। इसीलिए कालिंगवुड ने लिखा है कि साक्ष्यों पर आधारित इतिहास अतीत का विज्ञान है। साक्ष्यों के विश्लेषण में इतिहासकार का यह प्रयास होना चाहिए कि वह इसे अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से अतिरंजित न करे।

साक्ष्य को स्वीकार करने का तात्पर्य विश्वास करना होता है। विश्वास करने वाला व्यक्ति इतिहासकार होता है और जिस पर विश्वास किया जाता है उसे प्राधिकारी अथवा स्रोत कहते हैं। स्रोत के तथ्यों को स्वीकार कर अपने समसामयिकों के समक्ष इतिहासकार का प्रस्तुतीकरण ही इतिहास होता है।

इतिहासकार आलोचनात्मक विधि से प्राधिकारी के प्रत्येक वाक्य की यथार्थता को सिद्ध करता है। इतिहासकार की विश्लेषण-पद्धति के संदर्भ में कालिंगवुड ने लिखा है कि:-

1- ''क्या प्राधिकारी का कथन विश्वसनीय है? घटना सम्बन्धी उसके कथन की पुष्टि अन्य साक्ष्यों द्वारा होती है?''

2- ''क्या प्राधिकारी का कथन इसलिए विश्वसनीय है कि वह घटना का प्रत्यक्षदर्शी रहा है?''

3- ''क्या प्राधिकारी का कथन इसलिए विश्वसनीय है क्योंकि आधुनिक ख्यातिलब्द्ध इतिहासकारों ने उसे स्वीकार किया है?''

4- ''क्या प्राधिकारी कथन इसलिए विश्वसनीय है क्योंकि प्राधिकारी के कथन पर संदेह करने का कोई कारण नहीं है?''

उपरोक्त विश्लेषणात्मक विधियों से साक्ष्यों की आलोचना का अभिप्राय इतिहास में कैंची और गोंद के सिद्धान्त की मान्यता को नकारना है। इस प्रकार साक्ष्यों की व्याख्या में इतिहासकार स्वयमेव प्राधिकारी (स्रोत) बन जाता है। कालिंगवुड ने उचित ही कहा है– साक्ष्य आधरित इतिहास अतीत का विज्ञान है। इस संदर्भ में अकबर द्वारा असीरगढ़ के किले की घटना को तत्कालीन लेखक अबुल फजल एवं पुर्तगाली लेखकों ने अलग-अलग ढंग से लिखा है। दोनों के कथन में सत्यता का अभाव झलकता है। आधुनिक शोधकर्ताओं ने इस विजय का कारण तत्कालीन परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है और रिश्वत देकर किले पर विजय प्राप्त करने के अतिरिक्त मुगलों के पास अन्य कोई विकल्प नहीं था। इतिहास के परिवर्तनशीलता के सम्बन्ध में यह कहना पूर्णतया उचित होगा कि नवीन साक्ष्य पुरातन साक्ष्यों के पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण के लिए सदैव शोधार्थी को बाध्य करते हैं, क्योंकि प्रत्येक पीढ़ी अपनी रूचि और समसामयिक आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में अतीत के चित्रण की माँग करती है।

3.6 साक्ष्य तथा विश्लेषण

आधुनिक वैज्ञानिक शैली के समर्थक इतिहासकारों ने कैंची और गोंद शैली को नकारते हुए साक्ष्यों की सत्यता की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से करने की आवश्कता पर बल दिया है। साक्ष्य विश्लेंषण में नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में कुछ मूलभूत प्रश्नों का उत्तर घटना के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है, जिससे कि अतीत का

अध्ययन समसामयिक तथा उपयोगी बन सके। घटना क्यों, कब, कैसे और किस स्वरूप में हुई, इसी की जानकारी स्रोतों से करते हैं, साक्ष्यों पर पुष्ट करते हैं। इस तरह पुरातन साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन तथा विश्लेषण नवीन साक्ष्यों के आधार पर करते हैं।

3.7 साक्ष्य-विश्लेषण के आधार तत्व

साक्ष्यों का विश्लेषण अत्यन्त आवश्यक है। एक साक्ष्य की प्रामाणिकता को जानने के लिए कई साक्ष्यों का विश्लेषण भी आवश्यक है। इस साक्ष्य-विश्लेषण के कुछ विशेष आधार होते हैं जिनका विवरण निम्नांकित है-

3.7.1- दुर्गम छलांग (Difficult Jump)- एक साक्ष्य की सत्यता की जानकारी हेतु कई साक्ष्यों के विश्लेषण की आवश्यकता होती है। इसलिए साक्ष्यों को ढूंढना अत्यन्त आवश्यक होता है। सम्बद्ध और आवश्यक साक्ष्य बड़ी कठिनता से मिलते हैं। उनकी प्राप्ति के लिए किये जाने वाले प्रयास को कुछ लोग "दुर्गम छलांग" की संज्ञा देते हैं। ऐसा इसलिए कि एक साक्ष्य की पुष्टि में जब एक और साक्ष्य मिल जाता है तो स्थिर नहीं रहा जाता अपितु कई अन्य साक्ष्यों को संग्रहीत करके कठिन परिश्रम करने के लिए तैयार रहा जाता है।

3.7.2- घटना का ज्ञान (Knowledge of the event)- गवेषक को घटना का ज्ञान सम्यक् और सम्पूर्ण रूप से होना चाहिए, अन्यथा न तो अन्य सहायक साक्ष्य ढूंढे जा सकेगें और न ही ठीक से उनका मूल्याँकन हो सकेगा। घटना का यदि ज्ञान हो जाये तो भी कथन पक्ष में निश्चयात्मकता न होकर सम्भाविता ही स्पष्ट होनी चाहिए, भले ही वह सम्भावित कहकर लिखी जाय। घटना की जानकारी चाहे जैसे भी, की जानी चाहिए।

3.7.3- स्मृति इतिहास नहीं है (Memory is not history)- स्मृति को ऐतिहासिक साक्ष्य नहीं स्वीकार किया जा सकता। इब्नबतूता के संस्मरणों का मसविदा मार्ग में कहीं खो गया था। अतः उसने अपनी स्मृति के आधार पर अपने

प्रसिद्ध ग्रन्थ ''रेहला'' की रचना की थी। इसलिए इतिहासकार उसके विवरण को साक्ष्य के रूप में प्रयोग करने में हिचकते हैं। स्मृति के आधार पर व्यक्ति यह तो कह सकता है कि उसने अमुक व्यक्ति को पत्र लिखा था, परन्तु उसका उत्तर आने पर ही उसके कथन की विश्वसनीयता को स्वीकार किया जायेगा। क्योंकि पत्र का उत्तर उसकी सत्यता की प्रामणिकता का साक्ष्य बन जाता है।

3.7.4- प्रमाण (Evidence)- कालिंगवुड का कथन है कि विज्ञान की भाँति इतिहास को भी अपनी समस्याओं को हल करने के लिए वैज्ञानिक विधि के निर्धारण का अधिकार है। यदि घटना का प्रत्यक्षदर्शी, इतिहासकार के प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने में सहयोग नहीं देता है, तो आधुनिक शोधकर्ता उसे पूर्णरूपेण अस्वीकार कर देता है। प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार शोधकर्ता का प्राधिकारी (स्रोत) होता है और उसके कथन को प्रमाण अथवा साक्ष्य (Testimony) कहा जाता है। अतः प्रमाण अथवा साक्ष्य प्राधिकारी का वह कथन है जिसे शोधकर्ता स्वीकार करके अपने इतिहास-लेखन में स्थान देता है। प्राधिकारी के कथन को यथावत स्वीकार करने के पहले शोधकर्ता अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से इसकी पुष्टि करता है। इस प्रकार पुष्टि हो जाने के पश्चात प्रत्यक्षदर्शी का कथन जिसे इतिहासकार स्वीकार करता है वही उसका प्रमाण अथवा साक्ष्य हो जाता है।

3.7.5- कैंची तथा गोंद इतिहास (Scissor & Paste History)- ऐतिहासिक गवेषणा की आधुनिक विधाओं के प्रादुर्भाव के पहले अधिकांश इतिहासकार तथ्यों को यथावत् रख देते थे। सम्भवतः वे विश्लेषण की आधुनिक विधाओं से अपरिचित थे। प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करके इतिहास में स्थान देने को कैंची तथा गोंद की संज्ञा दी गयी है। आधुनिक वैज्ञानिक विधाओं में आस्थावान इतिहासकारों ने इसका विरोध किया तथा इतिहास में तथ्य की अपेक्षा विश्लेषण तथा व्याख्या की प्रधानता को स्वीकार किया। कालिंगवुड का कहना है कि प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करनें की अपेक्षा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों से उसकी पुष्टि की जानी चाहिए। इतिहास के अध्ययन में आलोचनात्मक पद्धति का तात्पर्य

तभी उत्तर एवं निष्कर्ष भी स्पष्ट प्राप्त किये जा सकते हैं। इस प्रश्न-प्रक्रिया को हम परिकल्पना (Hypothesis), पूर्वाग्रह अथवा प्रश्नोत्तर कह सकते हैं।

3.7.9- कथन और साक्ष्य (Statement & history)- वैज्ञानिक सोच का इतिहासकार प्राधिकारी के कथन को यथावत् स्वीकार करने के पहले प्रश्न करता है कि इस कथन का क्या अर्थ है? किन परिस्थितियों में प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार ने इस प्रकार का कथन प्रस्तुत किया है।

वैज्ञानिक इतिहासकार प्रत्यक्षदर्शी की परिस्थिति, उद्देश्य तथा मनःस्थिति का अध्ययन करता है। असीरगढ़ के किले की विजय के सम्बन्ध में प्रत्यक्षदर्शी इतिहासकार अबुल फजल ने मात्र इतना ही कहा है कि किले में महामारी के कारण अनेक सैनिकों की मृत्यु हो गयी। परिणामस्वरूप किले पर विजय हो गयी। आधुनिक शोधकर्ता अबुलफजल की परिस्थिति, उद्देश्य तथा मनःस्थिति का अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि अबुलफजल एक दरबारी इतिहासकार रहा है। वह वास्तविकता का विवरण देकर अपने स्वामी के उज्ज्वल चरित्र पर कलंक का धब्बा नहीं लगाना चाहता था। वास्तविकता यह थी कि अकबर के सैनिक अधिकारियों ने घूस द्वारा किले पर विजय प्राप्त की थी। इसी प्रकार वैज्ञानिक इतिहासकार प्राधिकारी के कथन को यथावत स्वीकार न करके अन्य साक्ष्यों के विश्लेषण के परिप्रेक्ष्य में अपना यथार्थ कथन प्रस्तुत करता है। वह लिपिबद्ध अथवा अन्य ऐतिहासिक स्त्रोतों में उपलब्ध साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्ष प्रस्तुत करता है।

3.8 साक्ष्यों की आलोचना

ऐतिहासिक साक्ष्यों की सत्यता को स्थापित करने के लिए आलोचनात्मक पद्धति को अपनाया जाना नितान्त आवश्यक है। कुछ विद्वानों ने वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा स्त्रोतों की सत्यता को प्रमाणित करने का प्रयास किया है। ऐतिहासिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता के संदेहमय होने के कारण इतिहासकार को सर्वप्रथम वाह्य आलोचना द्वारा उसकी प्रामाणिकता को स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए। अज्ञात लेखकों, पत्र-पत्रिकाओं और भाषणों आदि से प्राप्त किये गये साक्ष्य

इतिहासकार के कथन की यथार्थता को सिद्ध करना है। इस प्रकार इतिहास में कैंची और गोंद शैली के लिए स्थान नहीं है। क्योंकि यह इतिहास के वैज्ञानिक स्वरूप में बाधक है।

3.7.6- ऐतिहासिक अनुमान (Historical Inference)- इतिहास पूर्ण रूप से विज्ञान नही है, क्योंकि इतिहासकार का निष्कर्ष विज्ञान की भाँति निश्चात्मक नहीं अपितु सम्भावनात्मक होता है। इतिहासकार के पास अपने साक्ष्यों को परखने के लिए वैज्ञानिक की भाँति प्रयोगशाला नहीं होती। साक्ष्यों के आधार पर उसका निष्कर्ष अनुमानात्मक अथवा सम्भावनात्मक होता है। कालिंगवुड ने इतिहासकार के साक्ष्यों के प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक अनुमान की संज्ञा दी है।

3.7.7- कबूतरी कोटर (Pigeon holing)- इतिहास की कैंची तथा गोंद शैली से असंतुष्ट विको, कांट, हर्डर, हीगेल, काल-मार्क्स, स्पेंग्लर, तथा टायनबी जैसे वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने ऐतिहासिक स्रोतों के अंतस्थल में प्रवेश करके तथा ऐतिहासिक तथ्यों के विश्लेषण द्वारा ऐसे निष्कर्ष को प्रस्तुत किया जो इतिहास को विज्ञान के समकक्ष ला सका। इन प्रबुद्ध इतिहासकारों ने अतीत में अन्तर्निहित साक्ष्यों का रहस्योद्घाटन किया तथा इतिहास को वैज्ञानिक स्तर प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। कालिंगवुड ने इतिहास गवेषणा की विधि की इस विधा को 'कपोति कोटर' की संज्ञा दी है।

8- प्रश्न (Question)- कैंची तथा गोंद शैली के इतिहासकार अतीत का अध्ययन यथावत् करते हैं। वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकार कुछ प्रश्नों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का अध्ययन करता है। प्लेटो ने स्पष्ट लिखा है कि वह अपने अतीत से अपने प्रश्नों का उत्तर चाहता है। प्रत्येक सफल इतिहासकार अपने प्रश्नों के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्यों का संकलन तथा निष्कर्ष का प्रस्तुतीकरण करता है। इतिहासकार का प्रश्न समसामयिक समाज का प्रश्न होता है। वह समसामयिक सामाजिक रूचि के अनुसार अतीत से प्राप्त उत्तर प्रस्तुत करता है। कालिंगवुड का कहना है कि इस साक्ष्य-विश्लेषण पद्धति में प्रश्न का स्वरूप स्पष्ट होना चाहिए

अविश्वसनीय होने के साथ ही साथ अवास्तविक भी होते हैं। अतः उनकी सत्यता की जाँच किये बिना उनका प्रयोग करना अनुचित है। वाह्य आलोचना के बाद लेखकों द्वारा आन्तिरक आलोचना के माध्यम से मूल लेख के कथन की विश्वसनीयता को परखा जाता है क्योंकि कभी-कभी प्रत्यक्षदर्शी का कथन भी परिस्थितिवश गलत हो सकता है।

इतिहासकार से यह अपेक्षा की जाती है कि वाह्य और आन्तिरक आलोचना के बाद ही वह तथ्यों के संकलन, व्याख्या और प्रस्तुतीकरण की ओर ध्यान दे। साक्ष्य की आलोचना संशयवादी होने के स्थान पर बौद्धिक होनी चाहिए। बौद्धिक परिपक्वता के अभाव में इतिहासकार साक्ष्यों को क्रमबद्ध करके अतीत की मानसिक पुनर्रचना नहीं कर सकता है। कालिंगवुड, रांके, डिल्थे तथा बेकर आदि विद्वानों ने तथ्य और साक्ष्य की विश्वसनीयता पर विशेष बल दिया है। उसके अभाव में इतिहास-लेखन सम्भव नहीं है।

3.9 साक्ष्यों की विश्वनीयता के परखने के आधार- (Basis of Recognition of credibility of evidence) प्रो0 गोसचाक के अनुसार ऐतिहासिक साक्ष्यों की विश्वसनीयता चार जाँचों पर निर्भर करती हैः

3.9.1- सत्य कहने की योग्यता- सर्वप्रथम इतिहासकार में सत्य कहने की योग्यता का होना आवश्यक है, जो निम्नांकित तथ्यों पर निर्भर करती हैः - (1) घटना का समय, (2) स्थान की निकटता, (3) पर्यवेक्षक की योग्यता। सत्य को प्रकट करने की योग्यता के अभाव में साक्ष्यों की विश्वसनीयता असंदिग्ध रहती है। अतः इतिहासकार से आशा की जाती है कि साक्ष्य के प्रयोग के पहले उसकी जाँच करें और विश्वसनीयता की स्थापना के बाद ही उन्हें स्वीकार करें।

3.9.2- सत्य कहने की इच्छा- साक्ष्य की विश्वसनीयता की जाँच के लिए केवल सत्य कहने की योग्यता का होना ही अनिवार्य नहीं है अपितु उस सत्य को कहने अथवा प्रस्तुत करने की भावना का इतिहासकार में होना अत्यन्त आवश्यक है। इसके अभाव में साक्ष्य की सत्यता-असत्यता की जाँच कदापि सम्भव नहीं है।

सत्य को न कहने के भी कई कारण हो सकते हैं, जिनमें से निम्नलिखित तीन अधिक महत्वपूर्ण हैं-

(क) साक्ष्य के प्रति पूर्वाग्रही विचार

(ख) सत्य को कहने पर किसी के अप्रसन्न होने का भय

(ग) दूसरे के हित के उद्देश्य को ध्यान में रखकर सत्य न कहना

3.9.3- सूचना की सत्यता- सूचना की सत्यता के आधार पर साक्ष्यों की विश्वसनीयता की जाँच की जा सकती है। यदि किसी सूचना के विरूद्ध कोई अन्य सूचना प्राप्त नहीं होती है तो पूर्व सूचना को ही विश्वसनीय स्वीकार किया जाता है। परन्तु कभी-कभी भय के कारण भी अन्य सूचना प्राप्त नहीं होती है और सत्य पर पर्दा पड़ा रहता है। ऐसी स्थिति में असत्य को ही विश्वसनीय मानने की विवशता रहती है, क्योंकि पूर्व सूचना के विरूद्ध कोई अन्य प्रमाण प्राप्त नहीं हुआ रहता है। अतः साक्ष्यों की विश्वसनीयता संदेहजनक बनी रहती है।

3.9.4- स्वतंत्र परिपुष्टि- जब किन्हीं विद्वानों को दो स्वतंत्र साक्ष्यों की प्राप्ति होती है तो वे दोनों किसी तथ्य की पुष्टि करते हैं, तब उन दोनों तथ्यों की विश्वसनीयता, सत्यता और प्रामाणिकता को स्वीकार कर लिया जाता है। परन्तु दोनों साक्ष्य न तो एक दूसरे से प्रभावित होने चाहिए और न ही उनमें स्वतंत्र परिपुष्टि का अभाव होना चाहिए। कभी-कभी यह भी सम्भव है कि भिन्न-भिन्न दस्तावेजों से जानकारी और तथ्य समान तो होते है, परन्तु उनकी सत्यता की पुष्टि नहीं की जा सकती है, जिसके लिए तथ्य का एक-दूसरे से सम्बद्ध और समन्वित होना अनिवार्य होता है।

वास्तव में इतिहास साक्ष्य तथा इतिहासकार के बीच की अंतर्क्रिया की अविच्छिन्न प्रक्रिया है। साक्ष्य तथा इतिहास का उतना ही घनिष्ठ सम्बन्ध है जितना तथ्य तथा इतिहासकार के बीच होता है। इतिहासकार साक्ष्यों की व्याख्या करता है। उसकी व्याख्या का स्वरूप विषयनिष्ट न होकर वस्तुनिष्ट होना चाहिए। इतिहासकार

को चाहिए कि वह व्याख्या को अपने व्यक्तित्व तथा व्यक्तिगत विचारों से अतिरंजित न करे। यह सत्य है कि वैज्ञानिक तथा इतिहासकार को निष्कर्ष कभी पूर्ण नहीं होते। नवीन साक्ष्यों के परिप्रेक्ष्य में अतीत का चित्रण परिवर्तनशील होता है। अतः किसी भी निष्कर्ष को साक्ष्य के आधार पर अन्तिम स्वीकार कर लेना उचित नहीं है।

3.10 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक साक्ष्य से आप क्या समझते हैं? उनके विश्लेषण के आधार-तत्वों का वर्णन कीजिए।

2- साक्ष्यों की विश्लेषण-प्रक्रिया पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3- साक्ष्यों की विश्वसनीयता को परखने के प्रमुख आधार कौन से हैं? बताइए।

4- साक्ष्य की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

5- इतिहासकार और साक्ष्य के परस्पर सम्बन्ध पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

3.11 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन- झारखण्ड चौबे

2- इतिहास दर्शन- बुद्ध प्रकाश

3- इतिहास क्या है- ई. एच. कार

4- इतिहास दर्शन- परमानन्द सिंह

यूनिट-4:
इतिहास में तथ्य

इकाई की रूपरेखा-

4:0 उद्देश्य

4:1 प्रस्तावना

4:2 ऐतिहासिक तथ्य/परिभाषा

4:3 तथ्यों का निर्माण

4:4 सभी घटनायें तथ्य नहीं होती है?

4:5 तथ्यों का चयन तथा संकलन

4:6 तथ्यों का परीक्षण

4:7 तथ्यों का स्वरूप एवं विभेद

4:8 तथ्य और इतिहास

4:9 तथ्य और इतिहासकार

4:10 तथ्यगत अवधारणायें

4:11 ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त-

- 4:11.1 इतिहासगत- तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त
- 4:11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त
- 4:11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त
- 4:11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त
- 4:11.5 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त
- 4:11.6 समस्यावादी तथा मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त

4:12 बोध-प्रश्न

4:13 संदर्भ-ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि -

- ऐतिहासिक तथ्य क्या है?
- अतीतकालीन घटनायें किस प्रकार से ऐतिहासिक तथ्य बन जाती है।
- ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन/चयन में किन-किन बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है?
- तथ्यों के परीक्षण की क्या प्रक्रिया होती है?
- तथ्य किस प्रकार से इतिहास-सृजन में सहायक होते हैं।
- ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त कौन-कौन से हैं।

4.1 प्रस्तावना :

आधुनिक ऐतिहासिक गवेषणा में तथ्यों की विशिष्ट भूमिका होती है। तथ्य ही अनुसंधानकर्ता के अध्ययन के पवित्र तथा महत्वपूर्ण आधार होते हैं। गवेषक का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार तथ्यों पर ही आधारित होता है। इतिहासकार सावधानीपूर्वक इनका संकलन करता है तथा आधुनिक वैज्ञानिक विधियों के सहयोग से इनका परिष्कार करता है। तदुपरान्त इनके सहयोग से इतिहास-सृजन करता है। इतिहासकार तथ्यों के चयन में सामाजिक रूचि की उपेक्षा किये बिना, सावधानीपूर्वक संकलित, अभिप्राययुक्त, प्रमाणित तथा विश्वसनीय महत्वपूर्ण तथ्यों से अतीत का परिकल्पनात्मक पुनर्निर्माण करता है। इस इकाई में इतिहास-लेखन में ऐतिहासिक तथ्यों की भूमिका की विशद विवेचना की गयी है।

4.2 ऐतिहासिक तथ्य

आधुनिक गवेषणा पद्धति में तथ्य अपना विशेष महत्व रखते हैं। गवेषक का सम्पूर्ण कार्य-व्यापार तथा अध्ययन-निष्कर्ष तथ्यों पर ही आधारित होता है। आधुनिक

ऐतिहासिक गवेषणा में ऐतिहासिक तथ्यों की नई भूमिका की विवेचना करने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि ऐतिहासिक तथ्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर सरल नहीं है। इतिहासकार उन सभी वस्तुओं में रूचि रखता है जो अतीतकालिक मनुष्य से सम्बद्ध हैं। कोई कार्य अथवा घटना, कोई भी संवेग जिसकी उसने अभिव्यक्ति की है, कोई भी विचार चाहे वे यथार्थ हों या मिथ्या, किन्तु वह अतीतकालिक घटना का साक्षात्कार नहीं करता, उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस घटना के विषय में प्राप्त विवरण से होता है।

ऐतिहासिक तथ्य को विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने दृष्टिकोण से देखने का प्रयास किया है, जिनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक है। तथ्य को परिभाषित करते हुए प्रो0 वाल्स कहते हैं कि ''एक तथ्य साधारणतः स्वयं व्यवस्थित सिद्धान्त होता है जिसकी विश्वसनीयता के विषय में गम्भीर संदेह न हो।'' तथ्यों के सम्बन्ध में इस प्रकार की अवधारणा विज्ञान में सम्भव हो सकती है, इतिहास में नहीं। इतिहास को पूर्णरूपेण विज्ञान मानकर ही वाल्श ने तथ्य के विषय में यह बात कही है। 19वीं शताब्दी के चौथे दशक में विज्ञानवादी, रांके ने इसी आशय से कहा कि- ''इतिहास का कार्य सिर्फ इतना है कि वह वस्तुस्थिति से सबको परिचित करा दे''। रांके ने ऐसा इसलिए कहा था कि वह इतिहास को उपदेशात्मक नहीं बनाना चाहता था। डेविड थामसन के अनुसार ''सम्पूर्ण समष्टि तथ्य ऐतिहासिक तथ्य होता है।'' (डेविड थामसन, द एम आफ हिस्ट्री, लन्दन-1972, पृ04)। हेनरी पिरेन ने एक साधारण घटना और समाज में रहने वाले सभी मनुष्यों के कार्यो एवं उपलब्धियों को ऐतिहासिक तथ्य स्वीकार किया है (थामसन, पृ037 और रेनियर पृ034)। परन्तु वास्तविकता तो यह है कि इतिहास में सभी मनुष्यों में कार्यों एवं उपलब्धियों को ऐतिहासिक तथ्य के रूप में स्थान नहीं दिया जा सकता। ऐलन बुलाक ने भी यह स्वीकार किया हैं कि ऐतिहासिक तथ्य एक प्रकार का अनुमान होता है। अनुभववादी सम्प्रदाय के इतिहासकारों द्वारा लिखी गयी अच्छी पुस्तक ''आक्सफोर्ड सार्टर इंग्लिश डिक्सनरी'' में तथ्य को इस तरह परिभाषित किया गया है- ''अनुभव के वो

आंकड़े जो निष्कर्ष से भिन्न होते हैं, इसे हम इतिहास का सामान्य दृष्टिकोण कह सकते हैं। इतिहास में हमें जांचे परखे तथ्यों का एक संग्रहीत रूप मिलता है। इतिहासकार को ये तथ्य दस्तावेजों, हस्तलेखों आदि से मिलते हैं। ये सब तथ्य मछुआरे की पटिया पर पड़ी हुई मछलियों की तरह होते हैं। इतिहासकार इन्हें एकत्रित करता है, घर ले जाता है, पकाता है और अपनी पसन्द की शैली में परोस देता है (ई0एच0कार पृ03)।''

अनुभववादी तथा सामान्य ज्ञान सम्प्रदाय के इतिहासकारों का अन्तिम ज्ञान यह है कि पहले सीधे तथ्य अपनाइये फिर उसकी व्याख्या के दलदल में कूद पड़िए। सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण के अनुसार कुछ मूलभूत तथ्य होते हैं, जो सभी इतिहासकारों के लिए समान होते हैं, और ऐसे तथ्य ही इतिहास की रीढ़ होते हैं। इतिहास में तथ्यों का ठीक-ठीक विवरण उपस्थित करना हमारा कर्तव्य है। तथ्य की विशेषता यह है कि वे अपनी कथा स्वयं ही कहते हैं। किन्तु आजकल के तथ्य वही कहानी कहते हैं जो उनसे विभिन्न विचारधाराओं के इतिहसकार विभिन्न रूप से कहलवाया करते हैं। इनकी दूसरी विशेषता यह है कि यह चयनात्मक भी होते हैं। महान उदारवादी पत्रकार श्री सी. पी. स्काट के अनुसार ''तथ्य पवित्र हैं'', मन्तव्यों पर कोई बन्धन नहीं है।''

4.3 तथ्यों का निर्माण

हम जानते है कि इतिहासकार अतीतकालिक घटना का साक्षात्कार नहीं करता है। उसका प्रत्यक्ष सम्बन्ध इस घटना के विषय में प्राप्त विवरण से होता है। सभी व्यवहारिक प्रयोजनों के लिए घटना के विषय में प्राप्त विवरण ही ऐतिहासिक तथ्य को बनाता है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य अतीतकालिक घटना नहीं है, अपितु एक प्रतीक हैं, जो हमें कल्पना द्वारा उसके पुनर्निमाण में समर्थ बनाती हैं। जहाँ तक ऐतिहासिक तथ्य के स्थान का प्रश्न है, यह किसी व्यक्ति के मस्तिष्क में होता है अथवा फिर यह कहीं नहीं होता। हम एक सुविज्ञात घटना के उदाहरण से समझें।

14 अप्रैल 1965 में वाशिंगटन में फोर्ड नाट्यशाला में आब्राहम लिंकन की हत्या हुई। जिस समय यह हत्या घटित हुई, यह एक वास्तविक घटना थी, परन्तु अब इसके विषय में कहते हैं कि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है।

वास्तविक वृतान्त और तथ्य इनमें चाहे जितना घनिष्ट सम्बन्ध क्यों न हो- दो भिन्न वस्तुएँ हैं। फिर यदि लिंकन की हत्या एक ऐतिहासिक तथ्य है तो यह कहाँ है, वास्तविक घटना तो विलुप्त हो चुकी है और उसका पुनर्प्रत्यक्षीकरण सम्भव नहीं है। इस प्रकार की घटनाओं के धूमिल चित्र बचे रहते हैं जो इतिहासकार के उपादान बनते हैं। कुछ और न पा सकने के कारण वह इनसे ही संतुष्ट होता है और यह धूमिल चित्र अथवा तथ्य इतिहासकार के मस्तिष्क में होते हैं। यहाँ यह कहा जा सकता है कि वे लेखों अथवा साक्ष्यों में होते हैं। उदाहरणार्थ- लिंकन की हत्या का विवरण समसामयिक समाचारपत्रों, दैनिन्दियों तथा पत्रों आदि में प्राप्त होता है। किन्तु साक्ष्य अथवा लेख स्वयं किसी व्यक्ति द्वारा प्रणीत हुए हैं, जिसके मस्तिष्क में लिंकन की घटना का चित्रण बना था। कोई भी व्यक्ति द्वारा छोड़े गये साक्ष्य के आधार पर अपने मन में उसी प्रकार के विचार अथवा चित्र बना सकता है जैसा उस व्यक्ति के मस्तिक में बना था। यदि आज कोई भी उन साक्ष्यों अथवा लेखों का अर्थ नहीं जान पाता तो लिंकन की हत्या ऐतिहासिक तथ्य नहीं रह जायेगी।

4.4 सभी घटनायें तथ्य नहीं होती हैं?

तथ्यों के निर्माण में अतीतकालिक घटनाओं के मध्य बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है। हेनरी पिरेन के अनुसार ये घटनायें ही ऐतिहसिक तथ्य होती हैं। कार्ल बेकर, सेबोस, ऐनेन बुलाक, आदि विद्वानों के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य अतीतकालिक घटना नही, अपितु एक प्रतीक है, जो इतिहासकार को कल्पना द्वारा घटना के पुननिर्माण में समर्थ बनाते हैं। समाज में प्रतिदिन जो घटनायें हुआ करती है वे सबकी सब तथ्य नही होती। जब कभी महान व्यक्ति या इतिहासकार छोटी घटना का उल्लेख कर देता है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है। उदाहरण के लिए यदि

हम यह कहें कि साधारण लोग प्रायः वृद्ध, मृत तथा दुखी लोगों को देखते रहते हैं जिसे उनके लिए एक घटना कहा जा सकता है, किन्तु जब इसे गौतम बुद्ध ने देखा और उससे प्रभावित होकर उन्होंने वैराग्य ले लिया तो वह घटना एक ऐतिहासिक तथ्य बन गयी। इसीलिए यह भी का जाता है कि यदि महान व्यक्ति या इतिहासकार किसी छोटी घटना को लिख देता है तो वह ऐतिहासिक तथ्य बन जाती है। इस तरह भूतकालीन घटना के परिकल्पनात्मक पुनर्निर्माण के लिए ऐतिहासिक तथ्य इतिहासकार के उपादान होते हैं।

4.5 तथ्यों का चयन तथा संकलन

ई0 एच0 कार के अनुसार ऐतिहासिक तथ्य मछली विक्रेता के शिलापट्ट पर सजायी गयी मछलियों की भाँति नहीं हैं, वे अगाध समुद्र में तैरती हुई मछलियों की भाँति होते हैं। यह भाग्य पर निर्भर करता है कि मछुआरा रूपी इतिहासकार समुद्र के किस भाग का चयन करता है तथा किस यंत्र का प्रयोग करता है। ये दोनों कारक उसके चयन को निर्धारित करते हैं कि इतिहासकार किस प्रकार के तथ्यों का संकलन करना चाहता है।

इतिहासकार केवल उन्हीं तथ्यों का संकलन करता है जिसने अतीत की घटना को प्रभावित किया है। ऐतिहासिक तथ्य सामाजिक होता है क्योंकि उसने समसामयिक अतीत में सामाजिक व्यक्तियों के विचारों को प्रभावित किया है। सी. एल. बेकर का कहना है कि व्यक्तियों का विचार ऐतिहासिक तथ्य के परिवर्तन की सामर्थ्य रखता है। इस प्रकार एक सामान्य तथ्य भी ऐतिहासिक तथ्य बन जाता है। किसी महान इतिहासकार द्वारा उसका प्रयोग किया जाता है।इतिहासकार अगाध तथ्यों में केवल उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जो उसके वर्णन को सरल और सुबोध बना सके (ई. एच. कार., पृ014)। इस प्रकार इतिहासवाद में कोई भी तथ्य निरपेक्ष नही होता है।

ई. एच. कार का ऐतिहासिक तथ्य के सम्बन्ध में निष्कर्ष है कि ऐतिहासिक तथ्य शुद्ध नहीं होता और इतिहासकार को कभी शुद्ध तथ्य भी प्राप्त नहीं होता। ऐतिहासिक तथ्य-सम्बन्धी अपने निष्कर्ष में एडम स्कैफ ने प्रख्यात विद्वान विटोल्ड कुला को उध्रित करते हुए कहा है कि प्रत्येक तथ्य का संकलन तथा चयन समाज सम्बन्धी ज्ञान तथा उसकी प्रक्रिया को प्रस्तुत करता है। परन्तु सापेक्षवादी विचारकों ने तथ्यों की प्रामाणिकता को स्पष्ट रूप से अस्वीकार कर दिया है। उनका तर्क है कि इतिहासकार द्वारा संकलित तथ्यों का चयन तथा परित्याग और उनके द्वारा रचित इतिहास सामाजिक रूचि तथा आवश्यकता मात्र की पूर्ति करता है। ऐसी रचना में इतिहासकार की व्यक्तिगत रूचि तथा सामाजिक अकांक्षाओं का प्रस्तुतीकरण निर्णायक होता है।

4.6 तथ्यों का परीक्षण

सर्वथा ज्ञात है कि तथ्य पूर्ण रूपेण शुद्ध नही होते हैं। इसलिए इनको स्वीकार करने के पूर्व इनकी सत्यता की जाँच आलोचनात्मक विधि से कर लेनी चाहिए। यह आलोचना दो प्रकार से हो सकती है- वाह्य प्रकार से और आन्तरिक प्रकार से। तथ्यों की प्राप्ति हमें मुख्यतः अभिलेखों, शिलालेखों तथा मुद्राओं आदि से होती है। इसमें कोई दो राय नहीं कि ये प्रलेख आदि भी किसी न किसी इतिहासकार के मस्तिष्क की ही उपज होगें। अतः इन्हें तथ्य मान लेना हमारी भूल होगी। ये प्रलेख सहायक सामग्री के रूप में इतिहास के साधन ही कहे जा सकते हैं, इतिहास नहीं। परन्तु इतना सच है कि ये इतिहास को जानने में सहायक होते हैं, बाधक नहीं। प्रो. ई. एच. कार के अनुसार– ''तथ्य और दस्तावेज निश्चय ही इतिहासकार के लिए आवश्यक होते हैं परन्तु उसके लिए वे अन्धश्रद्धा की वस्तु नहीं होते। दस्तावेज और तथ्य अपने आप में इतिहास नही होते, और न ही इतिहास क्या है? जैसे थका देने वाले प्रश्न के वे बने-बनाये उत्तर ही होते हैं''। इसीलिए वार वाल्क ने कहा है कि हम जो भी इतिहास-ग्रन्थ पढ़ते हैं वह यद्यपि तथ्यों पर

आश्रित हैं, किन्तु तथ्यात्मक तो नहीं ही है, वे तो इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का एक संग्रहालय है। ये ही ऐतिहासिक तथ्य के साधन कहलाते हैं।

4.7 तथ्यों का स्वरूप एवं विभेद

तथ्यों का स्वरूप प्रायः दो प्रकार का होता है- सामान्य तथ्य और ऐतिहासिक तथ्य। ऐतिहासिक तथ्य चयनात्मक भी होते हैं। सामान्य तथ्य किस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य बनते हैं, उसे पहले देखा जा चुका है। बेवर का कहना है कि प्रत्येक ऐतिहासिक तथ्य में कुछ ऐसे तत्व होते हैं जिनके उद्‌गम-स्रोत अनेक होते हैं। इतिहासकार द्वारा चयन किया हुआ तथ्य ऐतिहासिक होता है। इस प्रकार ऐतिहासिक तथ्य दो श्रेणी के होते हैं। प्रथम वे जो अतिसामान्य होते हुए भी इतिहासकारों के कारण ऐतिहासिक तथ्य के रूप में प्रसिद्ध जो जाते हैं और दूसरे वे जो कालान्तर में स्वयं प्रसिद्धि पाकर महत्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य बन जाते हैं। ये तथ्य कोमल और कठोर भी होते हैं। कठोर तथ्यों को इतिहासकार अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकता। जैसे- 15 अगस्त सन् 1947 को भारत आजाद हुआ, कहने पर हम पायेगें कि 15 अगस्त सन् 1947, भारत और स्वतंत्रता ये कठोर ऐतिहासिक तथ्य हैं जिनका न तो चयन और न ही परिवर्तन सम्भव है। कोमल तथ्य वे होतें हैं जिनका व्याख्यात्मक वर्णन हो सकता है। जैसे- आजादी की लड़ाई में महात्मा गांधी की विजय और अंग्रेजों की पराजय का व्याख्यात्मक ढंग से वर्णन कर सकते हैं। प्रो0 कार के अनुसार कठोर तथ्य बुलवायें नहीं जा सकते, जबकि कोमल तथ्य बुलवाये जा सकते हैं। रेनियर ने कठोर तथ्य को 'सुस्थित' अथवा 'सुनिश्चित' तथ्य कहकर सम्बोधित किया है और उसमें घट-बढ़ को असम्भव बतलाया है।

पूर्वोक्त प्रकार के कोमल और कठोर तथ्यों को अन्य प्रकार से हम स्वरूप वाला घोषित कर सकते हैं, यथा- व्यक्तिवादी तथ्य, समस्यावादी तथ्य, समाजवादी तथ्य, अनुदारवादी तथ्य, सामाजिक नैतिक तथ्य, मनोविज्ञानवादी तथ्य, औपन्यासिक तथ्य, संख्यात्मक तथ्य, भाग्यवादी तथ्य, विद्रोही तथ्य इत्यादि।

4.8 तथ्य और इतिहास

तथ्य और इतिहास के बीच अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध है। तथ्य सदैव इतिहास से जुड़े हुए होते हैं। इसीलिए इतिहास को निश्चित तथ्यों का क्रमबद्ध संग्रह कहा जाता है। सर जॉन क्लार्क ने इतिहास की तुलना एक गूदेदार फल से की है जिसमें उन्होनें ने तथ्यों को गुठली कहा है, जिसमें फल का बीज निहित होता है तथा उन तथ्यों से निकाले गये विभिन्न निष्कर्षों को फल का गूदा कहा है जो जायकेदार होता है, हालांकि उसमें उत्पादन क्षमता का अभाव होता है। इतिहास के तथ्यों को वह निश्चित और निष्कर्षों को अनिश्चित मानते हैं। तथ्य अपरिवर्तनशील होते हैं क्योंकि वे पवित्र होते हैं। इतिहासकार स्वतंत्रतापूर्वक मत-निर्माण कर सकते हैं और किसी भी तथ्य से किसी प्रकार का निष्कर्ष भी निकाल सकते हैं। इसी आधार पर कहा जाता है कि हम जो भी इतिहास-ग्रन्थ पढ़ते हैं वह यद्यपि तथ्यों पर आधारित होता है किन्तु वह तथ्यात्मक तो नहीं ही है, वह तो इतिहासकारों द्वारा स्वीकृत मान्यताओं का संग्रह मात्र है। बैर क्लाफ के अनुसार यद्यपि इतिहास तथ्य पर आश्रित होता है परन्तु कुछ तथ्य ऐतिहासिक तथ्य न होकर मान्यताप्रदत्त विचार होते हैं। इतिहास में यथातथ्य होना एक दायित्व है, कोई गुण नहीं। तथ्य इतिहास की रीढ़ होते हैं इसलिए इतिहास में अधिकाधिक तथ्यों को संकलित करने की बात कही जाती है। परन्तु फिर भी इतिहास केवल तथ्यों का संकलन नहीं है।

4.9 तथ्य और इतिहासकार

इतिहास-लेखन में यह बात सर्वदा सत्य है कि ऐतिहासिक तथ्य और इतिहासकार दोनों एक ही गाड़ी के दो पहिये हैं। बिना तथ्य के इतिहासकार अपंग है तथा इतिहासकार के अभाव में तथ्य निर्जीव हैं। तथ्य इतिहासकार से अन्योन्याश्रित रूप से सम्बद्ध होते हैं। इतिहासकार उन्हें एक निश्चित विधि से प्रस्तुत करता है। वह पहले तथ्यों का संग्रह करता है, कालक्रमानुसार क्रमबद्ध करता है और फिर उसे व्यवस्थित रूप में पाठकों के सम्मुख रखता है। समुचित तथ्यों को समुचित रूप में

व्यवस्थित करके लोगों के सम्मुख प्रस्तुत करने में उनका आकर्षण एवं महत्व भी बढ़ जाता है। इतिहास के तथ्य भी वहीं कहानी कहते दिखायी देते हैं जो इतिहासकार उनसे कहलवाना चाहता है। किसी घटना को कितना महत्व दिया जाय और उससे कितना और कहलवाया जाय यह निश्चय करना एक इतिहासकार का ही कार्य है।

ऐतिहासिक गवेषणा में इतिहासकार वैज्ञानिक-पद्धति का अनुश्रवण करते हुए सर्वप्रथम तथ्यों को खोज निकालता है, उन्हें ऐतिहासिक स्वरूप प्रदान करता है और कुछ को इतिहासगत तथ्यों के समान पाकर भी उन्हें अनैतिहासिक करते हुए छोड़ता चला जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि इतिहासकार प्रधान होता है और तथ्य उसकी तुलना में गौड़ स्थान रखते हैं । परन्तु यह स्पष्टतः नही कहा जा सकता, क्योंकि ऐतिहासिक तथ्यों तथा इतिहासकार में प्रधानता का विचार करना बहुत कठिन कार्य है। इस प्रकार तथ्य तथा इतिहास के बीच अन्योन्याश्रित सम्बन्ध ही दिखायी पड़ता है।

इतिहास-लेखन में सामान्य ज्ञान दृष्टिकोण से यदि देखा जाये तो हमें कुछ मूलभूत तथ्य ऐसे दिखायी पड़ते हैं जो सभी इतिहासकारों के लिए समान हैं। ये कच्चे माल की तरह होते हैं, जिनका प्रयोग इतिहासकार इतिहास-निर्माण में करता है। जनभावना के अनुरूप चुने हुए तथ्यों को उचित विधि से प्रस्तुत किया जाता है। तथ्यों को प्रस्तुत करना ही इतिहासकार का कार्य है। इतिहास स्वयं को स्वतः ही प्रस्तुत नहीं कर पाता है। इतिहास के तथ्य किसी भी इतिहासकार के लिए तब तक अस्तित्व में नही आते जब तक वह इनका निर्माण नहीं करता। प्रो. ई. एच. कार के अनुसार इतिहासकार न तो अपने तथ्यों का क्रीतदास होता है, न ही उनका निरंकुश शासक। प्रो. जी. सी. पाण्डेय ने लिखा है कि इतिहासकार का अपने तथ्यों के साथ बराकर का स्तर होता है। दोनों एक दूसरे के लिए आवश्यक होते हैं। तथ्यों के बारे

में तो यहाँ तक कहा गया है कि हमें तथ्यों की खोज है और जीवन में केवल तथ्यों की ही आवश्यकता है।

4.10 तथ्यगत अवधारणायें

तथ्यों के संदर्भ में कुछ इतिहासकारों की भी अपनी अवधारणायें है। इतिहास के निर्माण में टायनबी ने समाज से सम्बद्ध सभी तथ्यों को नहीं अपितु केवल क्रमशः विकसित समाज की सभ्यताओं से सम्बद्ध ऐतिहासिक तथ्यों को अंगीकार करने की सहमति दी है। उनके अनुसार ऐतिहासिक स्रोतों की संकलित सूची होने पर इतिहासकार के लिए तथ्य संकलन-कार्य सरल हो जाता है, किन्तु नैतिकता तथा निहितार्थता के परिप्रेक्ष्य में ही तथ्यों का अन्वेषण किया जाना उचित होता है। उनका यह विचार उचित लगता है क्योंकि इतिहास के ऐतिहासिक तथ्यों के पीछे व्याख्या होती है और ऐतिहासिक व्याख्या में नैतिक निर्णय संयुक्त रहते हैं (ई0 एच0 कार पृ079-823)।

इतिहासकार को अपना निर्णय भी देना होता है। इसे ही नैतिक-न्याय भी कहते हैं। टायनबी ने तथ्य-संकलन में वैज्ञानिक तकनीक प्रयोग करने पर बल दिया है। उनकी परामर्श है कि तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके विश्वसनीय तथा आवश्यक तथ्यों को ग्रहण करके अनावश्यक एवं अविश्वसनीय तथ्यों का त्याग कर देना चाहिए।

आर. जी. कालिंगवुड की मान्यता है कि सभी इतिहास विचारों का इतिहास है, अतएव तथ्य कुछ नहीं होते अपितु सब कुछ उनकी व्याख्या ही होती है। अतः इतिहास तथ्यों का इतिवृत्तात्मक विवरण मात्र न होकर विचारों की अभिव्यक्ति है। इनका अध्ययन एक अनुभूति है, वाह्य तथ्यों का निरूपण नहीं। अन्यत्र वह इतिहास को कतिपय तथ्यों का संकलन मात्र मानते हैं। प्रो0 कार ने तथ्य को विज्ञान से सम्बद्ध करते हुए उसकी तरह-तरह की व्याख्या की है, जिसे पहले बतलाया जा चुका है।

4.11 ऐतिहासिक तथ्यों के विविध सिद्धान्त

इतिहास दर्शन में ऐतिहासिक तथ्यों पर विविध सिद्धान्त मिलते है-

4.11.1 इतिहासगत-तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त

4.11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त

4.11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त

4.11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त

4.11.5 सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त

4.11.6 समस्यावादी तथा मनोविज्ञानवादी सिद्धान्त

4.11.1 इतिहासगत-तथ्यात्मक वैचारिक सिद्धान्त

इतिहास में हमें तथ्यों के संदर्भ में जो विविध सिद्धान्त मिलतें हैं उनमें यह सिद्धान्त विशेष महत्व रखता है। 19वीं शताब्दी में जब इतिहास में तथ्यों की बहुलता थी और उनके विषय में किसी प्रकार की शंका भी न थी तो उन्हें इस बात पर विचार करने की आवश्यकता ही समझ में नहीं आती थी कि इतिहास क्या है? इधर 50-60 वर्ष पूर्व इतिहास विषय में सर्वप्रथम जर्मनी के लोगों का ध्यान गया और उन्होंने तथ्यों पर विचार करना प्रारम्भ किया। फिर इटली के क्रोसे ने ध्यान दिया और इतिहास में अतीत को वर्तमान के संदर्भ में प्रस्तुत किया। इसके बाद 1910 ई0 में अमेरिका के कार्ल बेकर ने भी इधर यह शब्द मुखरित किया कि इतिहास में तथ्यों की स्वयं कोई स्थिति नही होती बल्कि वे तभी हमारे सामने आ सकते हैं जब कोई इतिहासकार उन्हें सामने लाता है।

4.11.2 ऐतिहासिक तथ्यों का व्यक्तिवाद का सिद्धान्त

सम्प्रति इतिहास में व्यक्तिवाद का बहुत प्राबल्य हैं। जीवन की विकास-यात्रा के प्रारम्भिक चरण में मानव ने अपने को जाति, परिवार, संघ, समाज के रूप में

देखा था किन्तु अब वह अपने को व्यक्ति के रूप में देखता है। व्यक्तिवाद को पूंजीवाद तथा प्रोटेक्टिज्म ने अधिक प्रसारित किया। औद्योगिक क्रान्ति ने इसे सम्बल दिया। फ्रांस की राज्यक्रान्ति होने पर व्यक्ति के अधिकारों की घोषणा की गयी। तत्कालीन उपयोगितावादी दार्शनिकों ने भी अपने तर्कों के आधार पर इस सिद्धान्त को सम्मान दिलाया।

4.11.3 ऐतिहासिक तथ्यों का समाजवादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का विकास मुख्यतः परतंत्र देशों के हित में हुआ और व्यक्तिवाद के स्थान पर प्रजातंत्रीय समाजवाद की स्थापना की गयी। इस सिद्धान्त की मान्यता है कि व्यक्ति प्रत्येक दशा में एक सामाजिक व्यक्ति होता है और समाज से पृथक और उसका कोई अस्तित्व नहीं है।

4.11.4 ऐतिहासिक तथ्यों का अनुदारवादी सिद्धान्त

इस सिद्धान्त का प्रतिपादन ब्रिटिश इतिहासकार सॅर लेविस नेवियर ने उस समय किया जब वह स्वयं अनुदारवादी थे और संसार में जो भी उस समय सत्ता परिवर्तन का कार्य होता था वह ब्रिटिशजन के हित में होता था। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद उदारवादी विचारधारा को आघात् पहुँचा था अतएव ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन स्वाभाविक था।

4.11.5 सामाजिक ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का सिद्धान्त

इस सिद्धान्त के अनुसार इतिहासकार उन्हीं तथ्यों का चयन करता है जो उसके देश और समाज की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि से सम्बद्ध होते हैं। जर्मनी के मेने ने यही किया था और जर्मनी के पतन तक की कहानी को जब तीन खण्डों में प्रकाशित कराया तो उसमें सामाजिक-ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का ही प्रभाव पाया गया। तभी से इस सिद्धान्त को लोगों ने स्वीकार किया कि व्यक्ति अपने समाज और इतिहास की उपेक्षा नहीं कर सकता।

ऐसे ही समस्यावादी, मनोविज्ञानवादी आदि सिद्धान्त भी हैं जिन्हें हम आधुनिक युग का तथ्यगत सिद्धान्त कह सकते हैं। कुछ लोगों ने इतिहास में संख्यात्मक तथ्य एवं भाग्यवादी तथ्यों को लेकर सिद्धान्तों का सजृन कर डाला है। कुछ ने तथ्यगत असंतुष्ट दल (विद्रोहियों) के विचारों को भी सिद्धान्तों के रूप में मान्य किया है।

उपरोक्त विमर्श से स्पष्ट होता है कि इतिहास में तथ्यों का सूक्ष्म अध्ययन बड़ी तेजी से हो रहा है और इसमें लोग तरह-तरह से चिन्तन-मनन करके एक नये सिद्धान्त का सजृन करते जा रहे हैं। ज्ञान-विज्ञान के विकास के साथ-साथ यदि ऐसा होता जा रहा है तो हमें इस पर आश्चर्य करने की आवश्यकता नहीं है।

4.12 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक तथ्यों पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- ऐतिहासिक तथ्य को परिभाषित कीजिए तथा इनके बारे में विविध इतिहासकारों के विचारों का वर्णन कीजिए।

3- ऐतिहासिक तथ्य क्या हैं? क्या सभी घटनाएँ ऐतिहासिक तथ्य हो सकती हैं। समझाइए।

4- तथ्यों के संकलन तथा परीक्षण-प्रक्रिया पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

5- इतिहास में तथ्यों के सम्बन्ध में मिलने वाले विविध सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

4.13 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन : ई. एच. कार
2- इतिहास : स्वरूप एवं सिंद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय
3- इतिहास दर्शन : परमानन्द सिंह
4- इतिहास दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई-5

इतिहास में वस्तुनिष्ठता

इकाई की रूपरेखा

5:0 उद्देश्य

5:1 प्रस्तावना

5:2 वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय

5:3 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

5:4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्यायें-

5:4.1 निष्पक्षता का अभाव

5:4.2 सामाजिक परिवेश का प्रभाव

5:4.3 इतिहास में परिवर्तनशीलता

5:4.4 मान्यताओं में परिवर्तन

5:4.5 व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव

5:4.6 युगयुगीन सामाजिक आवश्यकताएँ

5:4.7 पूर्वाग्रह की भावना

5:4.8भावों की प्रधानता

5:4.9 इतिहास का चयनात्मक स्वरूप

5:4.10 धर्म तथा जाति की समस्या

5:4.11 राजनीतिक दृष्किोण

5:4.12 परिवर्तनशील सामाजिक मूल्य

5:5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

5:6 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समीक्षा

5:7 बोध-प्रश्न

5:8 संदर्भ-ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि-

- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का क्या अभिप्राय है?
- वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में मूलभूत क्या अन्तर है?
- क्या इतिहास-लेखन में वस्तुनिष्ठता आवश्यक है?
- क्या ऐतिहासिक निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ हो सकता है?
- क्या हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इतिहास विज्ञान की भाँति वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता।
- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधायें कौन हैं?
- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली बाधायें को कैसे दूर किया जा सकता है?

5.1 प्रस्तावना

वस्तुनिष्ठता आधुनिक वैज्ञानिक विधा की विशेषता है। इसका अभिप्राय यह है कि कोई वैज्ञानिक समुचित विधि तथा नियमों के आधर पर प्रयोगशाला में सिद्ध निष्कर्ष को प्रस्तुत करता है तो सभी वैज्ञानिक उस गवेषणा को स्वीकार करेगें। ऐतिहासिक अध्ययन में वस्तुनिष्ठता की अवधारणा का अधार आधुनिक वैज्ञानिक सोच है। भौतिक विज्ञान की आश्चर्यजनक उपलब्धियों ने अर्धशताब्दी पूर्व अनेक इतिहासकारों को विचार-विमर्श के लिए बाध्य किया कि अन्य विधियों का परित्याग कर इतिहास को वैज्ञानिक उपादानों से परिष्कृत किया जाय तो इतिहास की उपादेयता एवं महत्व में बृद्धि होगी। यहीं पर इतिहास-सम्बन्धी वैज्ञानिक अवधारणा जन्म लेती

है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक-इतिहास की प्रथम प्रसूति है जिसका उद्देश्य ऐतिहासिक निष्कर्षों को सार्वभौम तथा सार्वकालीन बनाने के अतिरिक्त इतिहास की उपयोगिता एवं उसके महत्व में बृद्धि करना है। इस इकाई में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के व्यवहारिक स्वरूप को समझने का प्रयास किया गया है।

5.2 वस्तुनिष्ठता का अभिप्राय

किसी भी अध्ययन का निष्कर्ष तथा ज्ञान का स्वरूप प्रायः दो प्रकार का होता है- वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ। वस्तुनिष्ठता एक प्रकार का ऐसा ज्ञान है जिसमें ज्ञान का स्वरूप पूर्णतया वस्तु द्वारा निर्धारित होता है। जिस ज्ञान में वस्तु के अतिरिक्त कोई दूसरा प्रभावीकारक प्रभाव नहीं डाल पाता, उसे वस्तुनिष्ठ ज्ञान कहते हैं। इस ज्ञान में उस व्यक्ति का जिसके मन में ज्ञान की उत्पत्ति होती है; उसका ज्ञान के स्वरूप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। ज्ञान के लिए वस्तु और व्यक्ति दोनों आवश्यक है। इसीलिए ज्ञान दो प्रकार (वस्तुनिष्ठ और व्यक्तिनिष्ठ) का होता है। यदि व्यक्ति अपने आप वस्तु के स्वरूप मे कुछ जोड़ नहीं रहा है तो ऐसे ज्ञान को वस्तुनिष्ठ ज्ञान कहते हैं। जैसे- जब आकाश में बादल छा जाने पर वैज्ञानिक कहता है कि बादल वास्तव में पानी की बूदें हैं और वह H_2O के सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है तो यह ज्ञान वस्तुनिष्ठ ज्ञान है। लेकिन यदि उस बादल को व्यक्ति अपनी बातों से युक्त करता है तो वह ज्ञान व्यक्तिनिष्ठ माना जायेगा।

वस्तुनिष्ठ ज्ञान गणित के नियमों की भाँति सदैव एक होता है। इसमें मतों की विभिन्नता नहीं पायी जाती और वस्तुनिष्ठ ज्ञान का निष्कर्ष स्वयं निकल आता है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान के स्वरूप पर स्थान, काल, पात्र आदि का कोई प्रभाव नहीं पड़ता है। वस्तुनिष्ठ ज्ञान के सर्वोत्तम उदाहरण गणित के नियम हैं।

5.3 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता

इतिहास में वस्तुनिष्ठता की खोज आधुनिक वैज्ञानिक सोच का परिणाम है। विगत तथा वर्तमान सदी के अधिकांश इतिहासकारों ने इतिहास को विज्ञान स्वीकार

किया है। वैज्ञानिक विधा में निष्ठावान इतिहासकारों की अवधारणा है कि वे इतिहास के स्वरूप के निष्कर्ष को सार्वभौमिक तथा सर्वकालीन बनाने के लिए प्रत्यनशील हैं। यदि इतिहास को विज्ञान स्वीकार कर लिया जाय तो इसमें वस्तुनिष्ठता अपेक्षित है।

परन्तु वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों के प्रयास के बावजूद ऐतिहासिक निष्कर्ष वस्तुनिष्ठ नहीं बन सका है, क्योंकि इतिहास मानवीय उपलब्धियों का विवरण है। मानवीय क्रियाकलापों के सम्बन्ध में सभी का एकमत होना सम्भव नहीं है।

5.4 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ

इतिहास में वस्तुनिष्ठता के सम्बन्ध में यह निर्विवाद है कि इतिहास में विज्ञान जैसी वस्तुनिष्ठता नहीं हो सकती, क्योंकि इतिहास में विज्ञान की तरह एकरूपता नहीं मिलती और इतिहास में मत-मतान्तर मिलता है। ऐतिहासिक ज्ञान में स्थान, काल और पात्र का भी प्रभाव पाया जाता है और घटनाओं के सम्बन्ध में पर्याप्त विभिन्नता पायी जाती है। जैसे – फ्रांस की क्रान्ति के कारणों के सम्बन्ध में फ्रांस और ब्रिटेन के इतिहासकारों में मतभेद है।

इतिहासकार को इतिहास-लेखन के लिए साक्ष्यों का संग्रह, चयन, जाँच और व्याख्या करना आवश्यक है जिसमें इतिहासकार को स्वतंत्र निर्णय लेने की आवश्यकता पड़ती है। इतिहास की परिकल्पनाओं के अनुसार इतिहासकार को अपना मत भी प्रतिपादित करना पड़ता है। इस तरह इतिहास पर इतिहासकार के व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। इसलिए इतिहास मे विज्ञान या गणित की भाँति वस्तुनिष्ठता सम्भव नहीं है।

इतिहास-अध्ययन की वैज्ञानिक विधा में आस्था रखने वाले इतिहासकारों ने ऐतिहासिक अध्ययन के निष्कर्ष को सर्वकालिक तथा विश्वजनीन बनाने में सर्वथा प्रयासरत हैं। किन्तु ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याएँ अद्यतन गम्भीर और

जटिल बनी हुई हैं। इनके समाधान के पश्चात ही ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता से सम्बन्धित वैज्ञानिक इतिहासकारों के प्रयास को मान्यता प्रदान की जा सकती है। नीचे की पंक्तियों में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में आने वाली समस्याओं के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

5.4.1 निष्पक्षता का अभाव

डार्डेल का मत है कि कोई भी पदार्थ स्वयं वस्तुनिष्ठ नहीं होता अपितु उसमें वस्तुनिष्ठता को स्थापित किया जाता है। आधुनिक विद्वान वाह्य विधाओं से इतिहास को वस्तुनिष्ठ बनाना चाहते हैं जिसके कारण वस्तुनिष्ठता का प्रश्न विद्वानों, लेखकों तथा दार्शनिकों के बीच विवाद का विषय बन गया है। अपने मत को स्थापित करने के लिए आधुनिक इतिहासकार अतीत का वर्णन किसी विशेष दृष्टिकोण, अवधारणा, संस्कार, व्यक्तिगत ईर्ष्या, द्वेष अथवा भ्रान्ति के संदर्भ में प्रस्तुत करता है जो कभी भी निष्पक्ष नहीं होता है। इस पक्षपातपूर्ण वर्णन के कारण ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता विद्वानों के बीच विवादास्पद बनी हुई है। कार्ल मार्क्स, स्पेंग्लर, तथा कार्ल मेनहीम ने विशेष दृष्टिकोण से अतीतकालीन घटनाओं की व्याख्या की है। प्रो0 वाल्श ने तो स्पष्ट लिखा है कि इतिहास का अध्ययन दृष्टि विशेष से करना चाहिए। अतः यदि इतिहास-अध्ययन में दृष्टिविशेष को प्रधानता दी जायगी तो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना करना व्यर्थ है।

5.4.2 सामाजिक परिवेश का प्रभाव

कार्ल मार्क्स का कहना है कि मनुष्य सामाजिक प्राणी है । इतिहासकार का भी जन्म, पालन-पोषण तथा विकास समाज, संस्कार तथा धार्मिक परिवेश में होता है। उस समाज, संस्कार तथा धार्मिक परिवेश का प्रभाव स्वाभाविक है। अतः कोई भी इतिहासकार अपने को इन प्रभावों से मुक्त नहीं कर पाता है। कार्ल मार्क्स ने स्पष्ट लिखा है कि वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों को समाज के बाहर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता ढूँढनी चाहिए। मार्क्स का कथन यथार्थ प्रतीत होता है-

"संस्कार तथा सामाजिक वातावरण के कारण ही अरब-यहूदी, हिन्दू-मुस्लिम, रूसी-अमेरिकी इतिहासकारों में मतभेद है।"

5.4.3 इतिहास में परिवर्तनशीलता

निःसंदेह इतिहास अतीत की घटनाओं का अध्ययन है जिसे अलग-अलग युग के इतिहासकारों ने अपने-अपने ढंग से प्रस्तुत किया है। मैडलबॉम की भी मान्यता है कि प्रत्येक पीढ़ी का इतिहासकार अपने युग की आवश्यकता के अनुसार इतिहास लिखता है । दास प्रथा को यदि किसी युग में वरदान लिखा गया है तो वर्तमान में उसे अभिशाप माना जाता है। अतः इतिहास में परिवर्तनशीलता के कारण वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना एक दुःस्वप्न है।

5.4.4 मान्यताओं में परिवर्तन

इतिहास में किंवदंत्तियाँ किसी युग में प्रमाणिक तथा मान्य थीं, किन्तु अब वे मानव-इतिहास की उपेक्षित वस्तुसामग्री बन गयी हैं। उसी प्रकार वर्तमान कालिक ऐतिहासिक प्रामाणिकता तथा मान्य तथ्य भविष्य में उपेक्षित हो जायेगें। ऐसी परिस्थिति में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की तुलना में सार्वभौमिक तथा सर्वयुगीन नहीं हो सकती। 2+2=4 सार्वभौमिक तथा सर्वकालिक तथ्य है। विशेष परिस्थिति में सूर्य तथा चन्द्र-ग्रहण होता है। अतः वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता को चुनौती नहीं दी जा सकती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का स्वरूप सार्वभौमिक तथा सर्वयुगीन नही हो सकता।

5.4.5 व्यक्तिगत भावनाओं का प्रभाव

बियर्ड से स्पष्ट लिखा है कि ऐतिहासिक तथ्यों के चयन में इतिहासकार का दृष्टिकोण, व्यक्तिगत भावनाओं, सामाजिक वातावरण तथा आर्थिक परिस्थितियों से प्रभावित होता है। ऐसी स्थिति में यह स्वाभाविक है कि उसके द्वारा ऐतिहासिक नियमों की अवहेलना हो जाये, जिसके कारण उससे वस्तुनिष्ठता की आशा करना

कहा है जबकि भारतीय इतिहासकार उसे स्वतंत्रता-संग्राम की संज्ञा देते हैं। जी. एम. ट्रेवेलियन ने इसी आधार पर यह उल्लेख किया है कि इतिहास में द्वेष तथा सहानुभूति का होना स्वाभाविक है। वह अपनी तथा सामाजिक रूचि के संदर्भ में अतीत के व्यक्तियों, उनके कार्यों तथा उपलब्धियों का वर्णन करता है। इस प्रकार उसका प्रस्तुतीकरण विषयनिष्ठ होता है । बेवर का भी कथन है कि वस्तुनिष्ठता एक दोष है क्योंकि इतिहास में इस उद्देश्य की प्राप्ति अत्यन्त जटिल है।

5.4.8 भावों की प्रधानता

इतिहास-लेखन तर्कप्रधान न होकर भावप्रधान होता है। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान् रांके ने कहा है कि इतिहास-लेखन अन्तश्चेतना का विषय है, जिसका भावप्रधान होना स्वाभाविक है। इतिहास में तर्क तथा विवेक के लिए स्थान नहीं हैं। जी. पी. गूच ने इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कहा है कि- हाड़-मांस से बने लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति मुद्रित पृष्ठों में होती है। अतः व्यक्तिगत भावनाओं को इतिहास-लेखन से अलग कर वस्तुनिष्ठ बनाना एक असम्भव प्रयास होगा। हेनरी पिरेन के अनुसार इतिहासकार का विषय स्वयं समाज होता है। उसका कार्य अपने ही तरह के मनुष्यों से सम्बन्धित घटनाओं को समझना तथा उसका विवरण प्रस्तुत करना है। वह कितना ही निष्पक्ष क्यों न हो पूर्ण रूप से वस्तुनिष्ठ नही हो सकता है। उसकी रचना में समय की अभिव्यक्ति अपने आप होती रहती है। समसामयिक संस्कृतियाँ उसके दृष्टिकोण का निर्धारण करती हैं। रेनियर के अनुसार इतिहासकार अपनी रचना के माध्यम से अपने युग के व्यक्तियों को सम्बोधित करता है, जिसका वह स्वयं सदस्य है। इससे तो स्पष्ट हो जाता है कि इतिहासकार की रचना को समसामयिक समाज, संस्कृति तथा वातावरण प्रभावित करते हैं। इतिहासकार भी परिस्थितियों की उपज होते हैं। समय लेखक को तथा लेखक समसामयिक समाज को प्रभावित करता है। हिन्दी साहित्य में वीरगाथा काल, भक्ति काल तथा रीतिकाल की रचनाएँ इसका स्पष्ट प्रमाण हैं (मैडलबाम, पृ0-1)।

उचित नहीं है। कार्ल बेकर ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास की पुनर्रचना प्रत्येक मनुष्य की आन्तरिक भावनाओं के अनुकूल की जाती है। औरंगजेब के सम्बन्ध में सर यदुनाथ सरकार तथा फारूखी की रचनाएँ व्यक्तिगत भावनाओं से प्रभावित हैं। इतिहास में व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता देने का तात्पर्य ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करना है। जब इतिहासकार अपनी भावनाओं के अनुकूल तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास करता है तो इतिहास में वस्तुनिष्ठता का प्रयास संदिग्ध हो जाता है।

5.4.6 युग-युगीन सामाजिक आवश्यकताएँ

जे. ए. राबिन्स का मत है कि इतिहास की पुनर्रचना अपने युग की सामाजिक आवश्यकता के अनुसार होती है। एडवर्ड मेयर ने तो इतिहास-लेखन में समसामयिक सामाजिक आवश्यकता को प्रधान माना है। महान दार्शनिक क्रोचे ने समसामयिक सामाजिक आवश्यकता को दृष्टिगत करते हुए ही सम्पूर्ण इतिहास को समसामयिक कहा था। उसका विचार था कि मनुष्य की आत्मा अपने युग के प्रति संवेदनशील होनी चाहिए। पी. गार्डिनर ने भी उल्लेख किया है कि एक ही ऐतिहासिक तथ्य की उपयोगिता तथा अनुपयोगिता विभिन्न युगों में बदलती रहती है। चूँकि मानव-जीवन की रूचियाँ तथा निहित स्वार्थ का स्वरूप प्रत्येक युग में बदलता रहा है, इसलिए प्रत्येक युग का इतिहास दूसरे से भिन्न होता है। अतः युग की सामाजिक आवश्यकता इतिहास के दृष्टिकोंण को सदैव प्रभावित करती रही है जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के मार्ग में कठिन बाधा है।

5.4.7 पूर्वाग्रह की भावना

ओकशाट के अनुसार इतिहास का पूर्वाग्रही होना स्वाभाविक है। साम्राज्यवादी ब्रिटिश इतिहासकारों ने सन् 1857 के भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम को सैनिक विद्रोह

5.4.9 इतिहास का चयनात्मक स्वरूप

वाल्श का अभिमत है कि इतिहास का स्वरूप चयनात्मक होता है। प्रायः इतिहासकार अतीत के किसी एक पक्ष का ही वर्णन करता है। अतीत का विस्तृत क्षेत्र इतिहासकार को किसी एक पक्ष के मनोनुकूल चयन करने के लिए विवश करता ही है। इस प्रकार का चयन इतिहासकार को पूर्वाग्रही बना देता है। पूर्वाग्रही विचार के कारण एक घटना को इतिहासकार अलग-अलग ढंग से प्रस्तुत करते हैं। गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु आकस्मिक घटना के कारण हुई थी। डॉ. ईश्वरी प्रसाद के अनुसार सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक की मृत्यु राजकुमार उलुग खाँ के सुनियोजित षड़यंत्र का परिणाम थी। डॉ मेहंदी हसन ने उलुग खाँ को निर्दोष सिद्ध करते हुए कहा है कि अचानक बिजली गिरने के कारण गयासुद्दीन की मृत्यु हुई थी। दोनों इतिहासकारों में मतभेद का कारण उनके पूर्वाग्रही विचार हैं। पूर्वाग्रही विचार के कारण दोनों इतिहासकारों ने अपने तर्क के समर्थन में तथ्यों का चयन किया है। इतिहास में इस प्रकार का चयन ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए बाधक है।

5.4.10 धर्म तथा जाति की समस्या

वस्तुनिष्ठता की एक अन्य समस्या धर्म तथा जाति से सम्बन्धित है। इतिहासकार चाहते हुए भी अपने को धार्मिक तथा जातिगत आग्रहों से मुक्त नहीं कर पाता। मध्ययुगीन इतिहास के इतिहासकारों ने धर्म तथा जातिगत भावनाओं से प्रभावित होकर तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। सर यदुनाथ सरकार ने औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मन्दिरों को ध्वस्त करने की कटु आलोचना की है। परन्तु फारूखी औरंगजेब की धार्मिक नीति तथा मन्दिरों के गिराने के औचित्य को सिद्ध किया है। इसी प्रकार प्रोटेस्टेन्ट तथा कैथोलिक, अरब तथा यहूदी इतिहासकारों में तीव्र मतभेद स्पष्ट दिखायी देते हैं।

5.4.11 राजनीतिक दृष्टिकोण

सभ्य समाज में रहने वाले मनुष्यों का सम्बन्ध विभिन्न राजनीतिक दलों से रहता है। जैसे मार्क्सवादी, लिबरल्स, कैथोलिक, प्रोटेस्टेन्ट, पूँजीवादी, प्रजातंत्रवादी, राजतंत्रवादी, साम्यवादी आदि। इतिहासकार भी इन राजनीतिक दलों के सिद्धान्तों से प्रभावित होता है। वह अपनी दृष्टि से ऐतिहासिक घटनाओं की व्याख्या करता है। ऐसे इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठता की अपेक्षा करना उचित नही प्रतीत होता। ये यथार्थ तथ्य को अपनी दृष्टि से देखते तथा व्याख्या करते हैं। ऐसे इतिहासकारों की रचनाओं में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सर्वत्र अभाव दिखायी देता है।

5.4.12 परिवर्तनशील सामाजिक मूल्य

सामाजिक मूल्यों का स्वरूप अस्थायी तथा स्थिर न होकर प्रत्येक युग में परिवर्तित होता रहता है। दास प्रथा, उपनिवेशवाद के किसी युग में सामाजिक उपयोगिता थी। परन्तु वर्तमान में इसकी सामाजिक उपयोगिता नहीं है। परिवर्तित सामाजिक मूल्यों का प्रभाव इतिहासकार के दृष्टिकोण पर पड़ता है। रिकर्ड ने स्पष्ट लिखा है कि ऐतिहासिक विवरण का सम्पूर्ण स्वरूप मूल्यों द्वारा निर्धारित होता है। मैडलबाम के अनुसार ऐतिहासिक व्याख्याओं का आधार साँस्कृतिक मूल्यों की वैध मान्यताएँ होती हैं। इन तथ्यों के अतिरिक्त उपयोगितावादी दृष्टिकोण भी इतिहासकार के व्यक्तिगत दृष्टिकोण को प्रभावित करता है। इन कारणों से ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या बनी हुई है।

5.5 ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं के सूक्ष्म विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता एक जटिल समस्या है। परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि इतिहास का स्वरूप वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता। यदि ऐसा है तो इतिहास

मात्र व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित हो जायेगा। साक्ष्यों का कोई महत्व नहीं रह जायगा और किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता है।

वर्तमान समय में ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है ताकि ऐतिहासिक अध्ययन को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया जा सके। वस्तुनिष्ठता के अभाव में उसके वैज्ञानिक स्वरूप को मान्यता नही दी जा सकती। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता के विशेष संदर्भ में कुछ मूलभूत प्रश्नों पर विचार करना अनिवार्य है-

(1) इतिहासकार से किस प्रकार की वस्तुनिष्ठता की आशा की जाती है?

(2) क्या इतिहास में विषयनिष्ठता तथा वस्तुनिष्ठता की गवेषणा आवश्यक है?

(3) दार्शनिक एवं इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को एक समस्या के रूप में क्यों देखते हैं?

(4) क्या हम इस तथ्य को स्वीकार कर सकते हैं कि इतिहास विज्ञान की भाँति वस्तुनिष्ठ नहीं हो सकता?

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की आवश्यकता को सिद्ध करने के लिए इन मूलभूत प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर आवश्यक प्रतीत होता है-

(1) बटरफील्ड का मत है कि इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश से पहले यह आवश्यक है कि हम सामान्य इतिहास और शोध-इतिहास के मध्य अन्तर को जान लें। सामान्य इतिहास संक्षिप्त होने के कारण वस्तुनिष्ठ हो सकता है। परन्तु शोध-इतिहास में इसका स्पष्ट अभाव दिखायी पड़ता है। क्योंकि शोध इतिहास में इतिहासकार मनोनुकूल तथ्यों का चयन कर व्यक्तिगत एवं सामाजिक रूचि के अनुसार उनकी व्याख्या करता है। झारखण्ड चौबे के अनुसार ऐतिहासिक प्रस्तुतीकरण में वस्तुनिष्ठता का

प्रतिष्ठापन इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करता है। व्यक्तिगत योग्यता से ही वह चरित नायकों तथा घटनाओं का यथार्थ सम्बन्ध प्रस्तुत करता है। अतः इतिहास में वस्तुनिष्ठता के समावेश के लिए इतिहासकार की व्यक्तिगत योग्यता पूर्णतया अपेक्षित है।

(2) ऐतिहासिक तथ्य वस्तुनिष्ठ इतिहास के आधार हैं। वर्तमान समाज इतिहासकारों से तथ्यप्रधान विवरण की अपेक्षा करता है। तथ्य को प्रधानता देकर वस्तुनिष्ठता की रक्षा की जा सकती है। जी. एन. क्लार्क का भी अभिमत है कि इतिहास की वस्तु-सामग्री तथ्य होते हैं। अतः ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए यथार्थ तथ्यों का प्रस्तुतीकरण आवश्यक है। वाल्श का मत है कि ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सिद्धान्त द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा प्रतिष्ठापित की जा सकती है। वास्तव में यथार्थ तथ्यों का वर्णन ही वस्तुनिष्ठता है।

(3) कुछ इतिहासकारों ने इतिहास को अपने प्रचार का माध्यम बनाया है। इन लोगों ने तथ्यों को तोड़-मरोड़ कर द्वेष तथा व्यक्तिगत भावनाओं को प्रधानता दी है। ऐसे इतिहासकारों की सर्वत्र निन्दा होनी चाहिए। वाल्श का कहना है कि स्थान तथा व्यक्तियों के प्रति उदासीनता द्वारा इतिहास में वस्तुनिष्ठता का प्रवेश सम्भव है। गार्डिनर के अनुसार इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता का परित्याग करके अपनी व्यक्तिगत रूचि के अनुसार इतिहास को अतिरंजित नहीं करना चाहिए तथा जिन इतिहासकारों ने अतीत के पुनर्निर्माण को प्रचार का साधन स्वीकार किया है, उन्हें इतिहासकारों की श्रेणी से बहिष्कृत करना चाहिए।

(4) ऐतिहासिक घटनाएँ महापुरूषों के जीवन से सम्बन्धित होती हैं। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए आवश्यक है कि उनका वर्णन यथार्थ रूप में किया जाय। इतिहासकार को अत्यधिक प्रशंसा तथा द्वेष की

भावना से प्रभावित नहीं होना चाहिए। डिल्थे ने स्पष्ट लिखा है कि वस्तुनिष्ठ इतिहास का आधार मानव-स्वभाव का वस्तुनिष्ठ अध्ययन होना चाहिए। रेनियर ने भी व्यक्तित्व तथा वरीयता को इतिहास के बाहर रखने पर जोर दिया है। वस्तुनिष्ठता में आस्थावान इतिहासकारों को इस बात का ध्यान देना चाहिए कि इतिहास तथ्यप्रधान है, व्यक्तित्वप्रधान नहीं। अतः स्पष्ट है व्यक्तित्व को इतिहास से पृथक कर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के महत्व को सुरक्षित रखा जा सकता है।

(5) इतिहासकार का स्वतंत्र एवं निष्पक्ष दृष्टिकोण उसे एक तथ्य से दूसरे तथ्य की ओर स्वयं ले जाता है। इतिहासकार अपनी रूचि के अनुसार तथ्यों के चयन में स्वतंत्र नहीं है। ऐतिहासिक तथ्यों का स्वरूप वस्तुनिष्ठ होता है। इतिहासकार का पुनीत कर्तव्य वस्तुनिष्ठता का निर्वाह करते हुए तथ्यों का आदर करना है। पी. गार्डिनर ने भी संकेत किया है कि इतिहासकार को रहस्यवाद की उलझनों से मुक्त होकर वर्णित तथ्यों को ही सत्य मानते हुए अतीत का समुचित वर्णन करना चाहिए।

(6) सामान्यतः मनुष्य का धर्म से घनिष्ट सम्बन्ध होता है। परन्तु एक इतिहासकार के लिए आवश्यक है कि वह अपने को धार्मिक प्रभावों से मुक्त रखे। इतिहासकार सामाज का प्रतिनिधि होता है। सम्पूर्ण समाज का नेतृत्व करके ही इतिहासकार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को सुरक्षित रख सकता है। इसी प्रकार समाज में नैतिकता एक अन्धविश्वास है। घटना अथवा व्यक्ति के सम्बन्ध में नैतिक न्याय देना इतिहासकार का कार्य नहीं है। बटर फील्ड ने उचित ही कहा है कि इतिहासकार न्यायाधीश नहीं अपितु समाजसेवकों का सेवक है। इतिहासकार अपनी इस अवधारणा से ही इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है।

(7) ऐतिहासिक व्याख्या पर अनेक सिद्धान्तों एवं दृष्टिकोणों का प्रभाव पड़ा है। वाल्श के अनुसार ऐतिहासिक व्याख्या के विभिन्न सिद्धान्त ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्या नहीं हैं। इतिहासकारों में सैद्धान्तिक मतभेद स्वाभाविक है। विभिन्न सिद्धान्तों का सूक्ष्म विवेचन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि अनेक इतिहासकार एक ही तथ्य को अपने-अपने दृष्टिकोण से देखते हैं। सभी सिद्धान्तों का मूल उद्देश्य अपने-अपने ढंग से ऐतिहासिक यथार्थता का अन्वेषण करना है।

(8) ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में दार्शनिक मतभेद को भी बाधक माना गया है। वाल्श का कथन है कि कार्य-व्यापार सम्बन्धी तथ्यों का अध्ययन किसी विशेष दृष्टिकोण से नहीं अपितु निष्पक्ष होकर वस्तुनिष्ठ भाव से करना चाहिए, अन्यथा इतिहास के दूषित होने की सम्भावना हो सकती है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए सिद्धान्त की अपेक्षा अभ्यास की आवश्यकता है।

(9) सिमेल ने ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के लिए पुनर्मनन को आवश्यक बताया है। पुनर्मनन एक प्रकार की मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा इतिहासकार विषयनिष्ठ यथार्थता को वस्तुनिष्ठ बना सकता है। इससे इतिहास में वस्तुनिष्ठता का समावेश सरल हो सकता है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता उस समय अधिक सरल हो सकती है जब विभिन्न सिद्धान्तों अवधारणाओं तथा दृष्टिकोणों को सार्वभौमिक मान्यता प्रदान की जाये।

(10) वाल्श का कहना है कि इतिहास का अपना अनुशासन तथा नियम है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहास-अनुशासन का अंग है तथा निष्पक्षता इतिहास की आवश्यकता है। अनुशासित इतिहासकारों को ही इतिहास लिखना चाहिए। जी. पी. गूच ने लिखा है कि अतीतकालिक जीवन तथा आदर्शों को समझाने के लिए हमें निष्पक्ष दृष्टिकोण अपनाना

चाहिए। कुछ इतिहासकारों का विश्वास है कि मानवीय अनुशासन में इतनी स्वतंत्रता है कि उनका कथन मतभेद के बावजूद सत्य है, तो ऐसे व्यक्तियों को इतिहाससमाज से निष्कासित करना चाहिए जो स्वतंत्रता के नाम पर सब कुछ कहने का दावा करते हैं।

(11) ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की अवधारणा वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता से भिन्न है। ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में निष्ठावान इतिहासकार भी स्वीकार करते हैं कि इतिहासकार की रचना में इतिहासकार के व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति एक कलाकार की भाँति होती है। वाल्श के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता का सर्वोत्तम उपाय एक कलाकार की विधियों का अनुकरण है। एक इतिहासकार को ऐतिहासिक चिन्तन का प्रस्तुतीकरण कलाकार की भाँति करना चाहिए। यद्यपि कलाकार प्राकृतिक चित्र को अपने मनोनुकूल दृष्टिकोण से प्रस्तुत करता है, फिर भी वह उसकी वस्तुनिष्ठयर्थातता के विषय में आश्वस्त रहता है। इसी प्रकार इतिहासकार भी अपने दृष्टिकोण से अतीत का वर्णन करता है। उसका विश्वास अपने वर्णन की वस्तुनिष्ठयथार्थता में रहता है। अन्य व्यक्तियों द्वारा इस यथार्थता की मान्यता का तात्पर्य ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता को स्वीकार करना है।

5.6 वस्तुनिष्ठता की समीक्षा

ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं की जटिलता के बावजूद भी इतिहासकारों ने उनके कुछ समाधान प्रस्तुत किये हैं। वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता की भाँति ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की कल्पना भी एक भूल है। वैज्ञानिक सामान्य तथा इतिहासकार विशेष का अध्ययन करता है। वैज्ञानिक विधा में आस्थावान इतिहासकारों ने भी इतिहास में वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता का अनुमोदन नहीं किया है। डेविड थामसन के अनुसार इतिहास न तो वाल्टेरियन दृष्टिकोण की प्रगाढ़

विषयनिष्ठा और न गणित की निर्वैयक्तिक निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठता को प्रस्तुत करता है। इस प्रकार इतिहास में न तो प्रगाढ़ विषयनिष्ठता है और न निर्वैयक्तिक निश्चयात्मक वस्तुनिष्ठता।

वाल्श का विचार है कि इतिहास में दो प्रधान तत्व होते हैं: इतिहासकार द्वारा प्रदत्त विषयनिष्ठ तत्व तथा साक्ष्य। इतिहासकार साक्ष्यों को प्रधानता देकर इतिहास को वस्तुनिष्ठ बना सकता है क्योंकि इतिहासकार का प्रत्येक वाक्य साक्ष्यों पर आधारित होता है। मैडलबाम के अनुसार ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता इतिहासकार की योग्यता मे निहित है। इतिहासकार की योग्यता का विकास सिद्धान्त द्वारा नहीं अपितु अभ्यास द्वारा सम्भव है। वाल्श ने ठीक ही कहा है कि वस्तुनिष्ठ ऐतिहासिक अन्तश्चेतना इतिहास में एक बुद्धिजीवी विचारधारा का ढाँचा प्रदान करेगी, जो ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता में सहायक होगी।

रेनियर के अनुसार इतिहास-लेखन की आचारसंहिता इतिहास में निहित रहती है, इतिहासकार में नही। कोई भी व्यक्ति इतिहास-लेखन को व्यवसाय के रूप में चयन करने को बाध्य नहीं है। जो इनका चयन करते हैं, उन्हें नियमों तथा अनुशासन को भी स्वीकार करना चाहिए। बौद्धिक निष्ठा के अभाव में इतिहास अपने स्वाभाविक स्वरूप को खोकर उपन्यास अथवा काल्पनिक रचना बन जाता है। इतिहास के नियम और अनुशासन सदैव इतिहासकार को वस्तुनिष्ठता की प्रेरणा प्रदान करते हैं और उपेक्षा करने वाले गिबन जैसे इतिहासकार इतिहास-क्षितिज से लुप्त होते जा रहे हैं।

सर॔ चार्ल्स ओमन के अनुसार यह सत्य है कि इतिहास-रचना लेखक के व्यक्तित्व को प्रतिबिम्बित करती है। इतिहासकार अपने ग्रन्थ में व्यक्तिगत प्रभाव से मुक्त करने का प्रयास करते हुए भी कुछ ठोस तथ्यों को नकार नहीं सकता है। इतिहास में तथ्य को प्रधानता देकर ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता सुरक्षित की जा सकती है। वर्तमान, इतिहासकारों से वस्तुनिष्ठ रचना की अपेक्षा करता है।

5.7 बोध-प्रश्न

1- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता के तात्पर्य को स्पष्ट कीजिए तथा उसकी आवश्कता के आधार बताइए।

2- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समस्याओं का वर्णन कीजिए।

3- क्या इतिहास में वस्तुनिष्ठता सम्भव है? स्पष्ट कीजिए।

4- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की समीक्षा कीजिए।

5- ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता वैज्ञानिक वस्तुनिष्ठता से किस तरह भिन्न है?

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास-दर्शन : झारखण्ड चौबे

2- इतिहास-दर्शन : कौलेश्वर राय

3- इतिहास के बारे में : लाल बहादुर वर्मा

4- इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY-112

इतिहास दर्शन एवं लेखन

सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ

(भाग–दो)

खण्ड

2

भारतीय इतिहास लेखन की परम्पराएँ

इकाई– 1

महाकाव्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रों की विवेचना

इकाई– 2

अभिलेखों, स्मारकों की विवेचना

इकाई– 3

विदेशी यात्रियों के वृतांत

इकाई– 4

क्षेत्रीय साहित्यों एवं लोक साहित्यों का ऐतिहासिक महत्व (मौखिक परंपरा) 271

इकाई– 5

दरबारी साहित्यों का ऐतिहासिक महत्व

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

इतिहास दर्शन एवं लेखन : सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह	माननीया कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
कर्नल विनय कुमार	कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार	निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी	आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
प्रो0 संजय श्रीवास्तव	आचार्य,इतिहास विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (खण्ड 1,2,3)
प्रो0 एम0 पी0 अहिरवार	आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी इकाई- 1,2,3,4,5, (खण्ड 5)
डॉ0 रमाकान्त	सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (खण्ड 4, 6)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव	आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (इकाई 1 - 30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार	सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष - 2023

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट :पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायी नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित **2024.**

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

महाकाव्य, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्रों की विवेचना

इकाई–01 रामायण की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 रामायण

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.7 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

महाकाव्य लेखन का प्रथम आधार ग्रंथ बाल्मिकी कृत रामायण को माना जाता है। मर्यादा पुरूषोत्तम भगवान राम को आराध्य मानकर उनकी जीवनी पर आधारित यह ग्रंथ भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इस ग्रंथ में सत्य का असत्य पर विजय का जयघोष दिखाई पड़ती है।

1.1 प्रस्तावना

रामायण आदिकवि महर्षि बाल्मिकी द्वारा रचित संस्कृत का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 7 काण्ड, 645 सर्ग एवं 24,000 श्लोक है। यह हिन्दू स्मृति का वह अंग है जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा गयी गई है। इसे आदिकाव्य भी कहा गया है। बाल्मिकी रामायण स्वर और ताल के साथ वीणा आदि बाध्य यन्त्रों के साथ गाया जा

सकने बाला प्रथम महाकाव्य है। इसका सर्वप्रथम गान राम द्वारा कराए गए अश्वमेध यज्ञ में लव और कुश द्वारा किया गया था। रामायण लेखन कार्य की प्रेरणा ब्रह्मर्षि नारद द्वारा बाल्मिकी को दी गई, तथा ब्रह्मा जी ने वरदान दिया, प्रेम में निमग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े को एक शिकारी द्वारा हत्या करने के परिणामस्वरुप क्रौंची के विलाप से अनुष्टुप छन्द की उत्पत्ति हुई, इस छंद का प्रयोग बाल्मिकी द्वारा रामायण में की गई।

1.2 रामायण

रामायण आदिकवि महर्षि बाल्मिकी द्वारा रचित संस्कृत का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 7 काण्ड, 645 सर्ग एवं 24,000 श्लोक है। यह हिन्दू स्मृति का वह अंग है जिसके माध्यम से रघुवंश के राजा राम की गाथा गयी गई है। इसे आदिकाव्य भी कहा गया है। बाल्मिकी रामायण स्वर और ताल के साथ वीणा आदि बाध्य यन्त्रों के साथ गाया जा सकने बाला प्रथम महाकाव्य है। इसका सर्वप्रथम गान राम द्वारा कराए गए अश्वमेध यज्ञ में लव और कुश द्वारा किया गया था। रामायण लेखन कार्य की प्रेरणा ब्रह्मर्षि नारद द्वारा बाल्मिकी को दी गई, तथा ब्रह्मा जी ने वरदान दिया, प्रेम में निमग्न क्रौंच पक्षी के जोड़े को एक शिकारी द्वारा हत्या करने के परिणामस्वरुप क्रौंची के विलाप से अनुष्टुप छन्द की उत्पत्ति हुई, इस छंद का प्रयोग बाल्मिकी द्वारा रामायण में की गई।

रामायण में वर्णित विषय–वस्तु के विभाग–

1. **बाल काण्डम्**– बाल्मिकी रामायण का आरंम्भ बालकाण्ड से होता है। 77 सर्गो में इसका वर्णन किया गया है। नारदजी ने बाल्मिकी को श्रीराम का चरित्र सुनाकर इस काण्ड को प्रारम्भ किया है, इसके पश्चात् रामायण महाकाव्य लिखने का उपक्रम, बाल्मिकी द्वारा रामायण में वर्णित विषयों का संक्षेप में उल्लेख, लव–कुश द्वारा राम दरबार में रामायण का गान करना, अयोध्या का वर्णन, राजमन्त्रियों और राजा की नीति एवं गुणों का वर्णन, राजा दशरथ द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन देवताओं के अनुरोध पर ब्रह्माजी द्वारा रावणवध का उपाय तलाश करना, राम, लक्ष्मण, भरत एवं

शत्रुध्न की जन्म पर आधारित कथावस्तु, अंशुमान और भगीरथ की तपस्या का वर्णन, देवताओं और दैत्यों द्वारा क्षीरसागर का मंथन, धन्वन्तरि, अप्सरा, वारुणी, उच्चैःश्रवा, कौस्तुभ एवं अमृत की उत्पत्ति, शिवजी का विषपान करना, श्रीरामादि चार भाईयों का विवाह, वशिष्ठजी की आज्ञा से काम–धेनु गाय एवं विश्वामित्रजी के संहार के लिए शक, यवन, पल्लव आदि वीरों का सृष्टि करना, सीता एवं राम के पारस्परिक प्रेम इत्यादि का वर्णन विस्तृत रुप में बाल्मिकी रामायण में किया गया है।

2. **अयोध्याकाण्डम्**– रामायण का दूसरा काण्ड अयोध्याकाण्ड है, 119 सर्गों में रामायण की प्रारम्भिक विषय वस्तु का वर्णन किया गया है। आयोध्याकाण्ड में श्रीराम के सद्‌गुणों, राम का राज्याभिषेक करने पर विचार करना, दशरथ द्वारा श्रीराम को राजनीति की बातें बतलाना, मंथरा का कैकेयी को बहाना, कैकेयी द्वारा भरत का राज्याभिषेक एवं राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास वर रुप में दशरथ से माँगना, दशरथ का प्राण–त्याग, श्रीराम–लक्ष्मण, सीता का वनबास करना, भरत को राम द्वारा राजनीति का उपदेश देना, जावालि के द्वारा नास्तिक मत का अवलम्बन करने के लिए श्रीराम को समझाना, अयोध्या की दुरवस्था, भरत द्वारा श्रीराम की चरण पदुकाओं पर राज्याभिषेक स्वीकार करना, सीता,अनसूया संवाद एवं अन्य विषयों का विस्तृत रुप में वर्णन किया गया है।

3. **अरण्यकाण्डम्**–बाल्मिकी रामायण के तीसरे काण्ड आरण्यकाण्ड में 75 सर्गों में रामकथा का वर्णन किया गया है। इसमें श्रीराम द्वारा विराध बध, वाानप्रस्थ मुनियों द्वारा राक्षसों द्वारा किए जा रहे अत्याचारों से रक्षा करने के लिए राम से प्रार्थना करना, सीता द्वारा श्रीराम से अहिंसा धर्म का पालन करने का अनुरोध, पस्चाप्सर तीर्थ एवं माण्डकर्णि मुनि की कथा, अगस्त्य ऋषि के प्रभाव का वर्णन, शूर्पनखा का लक्ष्मण से प्रणय निवेदन करना, खरदूषण का राम से युद्ध, श्रीराम द्वारा दूषण एवं खर सहित चौदह सहस्र राक्षसों का वध करना, रावण के द्वारा सीता का अपहरण करना, रावण द्वारा सीता को अपनी पत्नी बनने के लिए बाध्य करना, सीता को रावण द्वारा अपने अन्तःपुर में

रखना, श्रीराम का सीता के विरह में विलाप करना, जटायु का प्राण त्याग करना और श्रीराम द्वारा दाह संस्कार करना, कबन्ध की कथा, श्रीराम–लक्ष्मण द्वारा सीता को खोजना, शबरी के आश्रम में राम और लक्ष्मण का जाना, सुग्रीव से मित्रता के लिए पम्पापुर की ओर गमन करना एवं अन्य विषयों का विश्लेषणात्मक वर्णन आरण्यकाण्ड में किया गया है।

4. **किष्किन्धा काण्ड**– किष्किंधा काण्ड रामायण का चौथा काण्ड है 67 सर्गो में इस काण्ड को रचित किया गया है। इस काण्ड के अन्तर्गत पम्पा सरोवर की सुन्दरता का वर्णन, श्रीराम का हनुमादि वानरों से परिचय, सुग्रीव और श्रीराम की मैत्री, सुग्रीव द्वारा सीता जी के आभूषण दिखलाने पर शोकग्रस्त होना, बाली का राम के द्वारा वध करना, सुग्रीव और अंगद का हनुमानजी द्वारा अभिषेक करना, श्रीराम का वर्षा ऋतु का वर्णन करना, शरद ऋतु का वर्णन, लक्ष्मण और सुग्रीव के बीच मतभेद, वानरों का विभिन्न दिशाओं में भ्रमण कर सीता को खोजना, सुग्रीव द्वारा भूमण्डल वृतान्त श्रीराम को बतलाना, सम्पत्ति द्वारा रावण और सीता का पता बतलाना, सम्पत्ति की आत्मकथा, हनुमान जी का समुद्र लंघन करने के लिए महेन्द्र पर्वत पर चढ़ना इत्यादि विषयों का विस्तृत वर्णन किया गया है।

5. **सुन्दरकाण्डम्**– 68 सर्गो में सुन्दरकाण्ड की विषयवस्तुवर्णित की गई है। इस काण्ड में हनुमान जी द्वारा समुद्र का लंघन करना, लंका में हनुमानजी का पहुँचना, लंकापुरी, रावण के अन्तःपुर, पुष्पक विमान एवं चद्रोदय का वर्णन, सीता को अशोक वाटिका में खोजना, सीताजी की दुरावस्था का वर्णन, सीता, का विलाप, हनुमान जी द्वारा सीता से वार्तालाप करना एवं आश्वासन देना, हनुमानजी का सीताजी को चूड़ामणि प्रदान करना, हनुमानजी द्वारा लंकापुरी का दहन, हनुमानजी का लंका से लौटना, जामवन्त, अंगद, आदि को हनुमानजी द्वारा लंका यात्रा का समस्त विवरण सुनाना, श्रीराम को हनुमानजी द्वारा सीता के सामाचार सुनाना एवं अन्य विषयों पर विस्तृत साम्रगी को वर्णित किया गया है।

6. **युद्धकाण्डम्**— 128 सर्गों में राम एवं रावणादि राक्षसों के मध्य युद्ध का विस्तृत वर्णन है। श्रीराम के साथ बानर सेना का लंका की तरफ प्रस्थान करना, श्रीराम का सीता के लिए बिलाप करना, विभीषण, मन्दोदरी एवं अन्य राक्षसों के द्वारा रावण को समझाना एवं सीता जी को लौटाने की सलाह देना, विभीषण द्वारा राम के शरण में जाना, समुद्र में नल—नील द्वारा सौ योजन पुल का निर्माण करना, उस पुल को पारकर बानर सेना एवं श्रीराम का दूसरी तरफ पहुंचना, सुग्रीव और रावण का मल्लयुद्ध, बानरों द्वारा लंका पर चढ़ाई करना, श्रीराम और लक्ष्मण को नागपाश में इन्द्रजीत द्वारा बांधना, गरुड़ द्वारा श्रीराम—लक्ष्मण को नागपाश बंधन से मुक्त करना, कुम्भकर्ण को जगाया जाना, उसे देखकर बानरों का भयभीत होना, कुम्भकर्ण द्वारा रावण को समझाना, बानरों एवं श्रीराम से युद्ध करते हुए कुम्भकर्णादि कई राक्षसों का मारा जाना, लक्ष्मण का मूर्च्छित होना, हनुमान द्वारा पर्वत उठाकर लाना, लक्ष्मण का स्वस्थ होना, लक्ष्मण द्वारा इन्द्रजीत का वध करना, श्रीराम को विजय प्राप्ति के लिए अगस्त्य मुनि द्वारा 'आदित्य हृदय' के पाठ करने की सलाह देना, श्रीराम द्वारा रावण का बध करना, रावण का दाह संस्कार करना, विभीषण का राज्यभिषेक करना, सीता से राम की भेंट, सीता का परित्याग करना, सीता की अग्नि परीक्षा, सीता की पवित्रता की पुष्टि होने पर राम द्वारा स्वीकार करना, भरत से रामादि से मुलाकात, श्रीराम का अयोध्या में गमन कर राज्याभिषेक एवं शासन सँभालना, एवं रामायण का महात्म्य काव्यशैली में वाल्मिकी ने वर्णित किया है।

7. **उत्तरकाण्डम्**— रामायण की अन्तिम उपसंहारात्मक विषय—वस्तु 111 सर्गों में उत्तरकाण्ड में वर्णित की गई है। उत्तरकाण्ड में श्रीराम के दरबार में महर्षियों का आगमन, विश्रवामुनि की उत्पत्ति, पुलस्त्य की तपस्या, कुबेर की उत्पत्ति, राक्षस वंश का वर्ण, भगवान विष्णु द्वारा राक्षसों का संहार, रावण का जन्म होना और गोकर्ण आश्रम में तप के लिए जाना, लंका में रावण का राज्याभिषेक, सुर्पणखा तथा रावणादि तीन भाईयों का विवाह, मेघनाद का जन्म, नन्दीश्वर द्वारा रावण को श्राप देना, हनुमानादि वानरों की उत्पत्ति,

सीता को त्यागे जाने पर वाल्मिकी आश्रम में शरण लेना, कल्माषपाद की कथा, विभिन्न ऋषियों एवं मर्हिषियों के शाप एवं पूर्वजन्मों की कथा, सीता के दो पुत्रों का जन्म, श्रीराम का अश्वमेध यज्ञ करना, यज्ञ में आमन्त्रित वाल्मिकी के साथ आए लव–कुश का रामायण का गान करना, सीता का शपथ ग्रहण कर रसातल में प्रवेश करना, भरत द्वारा गन्धर्वों पर आक्रमण किया जाना, लक्ष्मण का सशरीर स्वर्गगमन करना, श्रीराम का परमलोक में गमन करना एवं रामायण काव्य का उपसंहार एवं महिमा बेहद उत्कृष्टतम् तरीके से वर्णित की गई है।

रामायण में ऐतिहासिक तथ्य– रामायण का रचनाकाल के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। प्रो0 रामशरण शर्मा के अनुसार, रामायण की रचना बारहवीं शताब्दी ई0पू0 में प्रारंम्भ हुई और पाँचवी शताब्दी ई0पू0 तक पांच चरणों में पूर्ण हुई। किन्तु स्वीकार रुप में रामायण का प्रारम्भिक रचनाकाल 500ई0पू0 एवं अन्तिम रुप में संकलन 400 ई0पू0 माना जाता है।

वाल्मीकी रामायण में उल्लिखित तथ्यों के अनुसार तत्कालीन समाज में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चार पुरुषार्थो की प्रधानता, ब्रह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्रों का जन्मानुसार अपने–अपने कर्मों में रत रहने, चार आश्रमों में जीवन व्यतीत करने का उल्लेख किया गया हे। पुत्रादि प्राप्ति के लिए पुरोहितों द्वारा विधिजन्य तरीकों से अश्वमेघादि यज्ञों का प्रचलन जोरों पर था। विधिहीन यज्ञ को यजमान को नष्ट करने वाला माना गया था।

सामाज में ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया जाता था। ब्रह्मचर्य पालन के दो रुप माने जाते थे– पहला दण्ड मेखलादि धारण कर मुख्य रुप से ब्रह्मचर्य पालन करना और दूसरा ऋतुकाल में पत्नी समागम करते हुए गौण ब्रह्मचर्य का पालन करना। स्त्रियों द्वारा पतिव्रत को सर्वस्व मानने की प्रथा थी। स्त्रियों द्वारा विभिन्न प्रकार के आभूषण धारण करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त समाज में वेश्यावृत्ति, जुआ आदि भी व्याप्त थी। राजाओं द्वारा अपने कार्यसिद्धि के लिए वेश्याओं के माध्यम से तपस्वियों के तप भंग करने का उल्लेख भी मिलता है। रामायण में सेवको, शिल्पकारों, बढ़ईयों, भूमि

खोदने वालो, कारीगरों, नटो, ज्योतिषियों, नर्तको, रजको इत्यादि विभिन्न व्यवसायी वर्गो का उल्लेख मिलता है। सम्मानपूर्वक दान देने की परम्परा विद्यमान थी। दान में अन्न, आभूषण, वस्त्र, धन, सम्पदा एवं रत्न, अश्वादि दिए जाने का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण षड़ांगो के ज्ञाता,, ब्रह्मचर्य व्रतधारी, बहुश्रुत, विधि, मीमांसा और कल्पसूत्र के जानकार होते थे। तत्कालीन समाज में तन्त्र, मंत्र, ज्योतिष, कर्मकाण्ड, शकुन, अपशकुन का अत्यधिक प्रचलन था। बेल, खैर, पलाश एवं बिल्वादि वृक्षों को धार्मिक एवं पूजनीय वृक्ष माना जाता था। अयोध्या का नामकरण का आधार था, जहाँ पर पहुंचकर कोई युद्ध न कर सकें। वशिष्ठ और वामदेव दशरथ के पुरोहित (जत्विष), धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, सुमन्त, काश्यप, जावालि सुयज्ञ, गौतम, मार्कण्डेय, कात्यायन इत्यादि महाराज दशरथ के विद्वान मंत्री थे। मंत्रियों का कार्य चतुरंगिणी सेना का संग्रह, गुप्तचरों द्वारा अन्य राजाओं के कार्य की जानकारी लेना, कोष का संचय करना, अपराधी को बलाबल के आधार पर दंड देना इत्यादि होते थे। तत्कालीन शासक केपास वैतनिक एवं अवैतनिक दोनों प्रकार को कार्यकर्ताओं एवं सेवकों के होने का उल्लेख मिलता है। सेना में घोड़े, बैलगाड़ियों, रथ आदि प्रयोग में लाए जाते थे। हाथी, घुड़सवार, एवं धर्नुधर सेना में प्रमुख रुप से आवश्यक होते थे।

1.3 सारांश

रामायण प्राचीन भारत का प्रमुख महाकाव्य है। इसे आदिकाल के नाम से भी जाना जाता है। भारतीयों के लिए इस महाकाव्य का सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से ऐतिहासिक महत्व है। मैक्डॉनल के अनुसार ''विश्व साहित्य की कई भी रचना सम्भवतः जनता के जीवन एवं विचारों को उतना प्रभावित नहीं करती जितना की रामायण''। महर्षि बल्मिकी कृत रामायण में 7 काण्ड 645 सर्ग एवं 24000 श्लोक है। आज की भारतीय सांस्कृति चेतना की केन्द्र बिन्दु रामायण है।

1.4 शब्दावली

अन्तःपुर – राजमहल

किष्किन्धा – वानर जाति

अरण्यक– जंगल, वन

चर्तुश्रम– ब्रह्मचर्य, गृहस्थ वानप्रस्थ एवं संन्यास नामक चार आश्रम

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – रामायण के विभिन्न कांडो की संक्षिप्त व्याख्या करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास दर्शन ,डा.परमानन्द सिंह,मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी, 2010

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–01 महाभारत की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 महाभाररत

1.3 सारांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.7 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

महाकालों में महाभारत का अत्यंत महत्व है। महर्षि कृष्ण द्वैपायन कृत महाभारत भारतीय संस्कृति का प्राणस्तंभ है। इस ग्रंथ की प्रसिद्ध उक्ति है कि जो कृछ भी इस संसार में है, सबका वर्णन महाभारत में है, जो इस ग्रंथ में नहीं है, वों सर्वत्र संसार में कही नहीं है।

1.1 प्रस्तावना

कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास प्रणीत महाभारत भारतीय साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। इस 'महाकाव्य' का आधार कौरव–पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति का महान् विश्वकोष है। न केवल इतिहास और प्राचीन उपाख्यानों की दृष्टि से, बल्कि धर्म संहिता, आचार–व्यवहार, राजनीति, दर्शन एवं जीवन की नानाविध समस्याओं के लिए भी इसका अनन्य महत्त्व है। अपने आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक विषयों के कारण यह हिन्दुओं की सर्वप्रतिष्ठित धर्म–पुस्तक है। इसी कारण इसे 'पंचम वेद' की

संज्ञा दी गई। साहित्य की प्रायः सभी शैलियों की उपस्थापना जैसे– काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य, कथा, आख्यायिका, स्तव महाभारत में मिलती है। स्वयं व्यास ने महाभारत के महत्त्व को बडे सुन्दर ढंग से बताया है– 'जो कुछ इस ग्रंथ में है, वह अन्यत्र है, किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

1.2 महाभारत

कृष्ण द्वैपायन वेद व्यास प्रणीत महाभारत भारतीय साहित्य का अनुपम ग्रंथ है। इस 'महाकाव्य' का आधार कौरव–पाण्डवों का ऐतिहासिक आख्यान है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति का महान् विश्वकोष है। न केवल इतिहास और प्राचीन उपाख्यानों की दृष्टि से, बल्कि धर्म संहिता, आचार–व्यवहार, राजनीति, दर्शन एवं जीवन की नानाविध समस्याओं के लिए भी इसका अनन्य महत्त्व है। अपने आध्यात्मिक एवं भक्तिपरक विषयों के कारण यह हिन्दुओं की सर्वप्रतिष्ठित धर्म–पुस्तक है। इसी कारण इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा दी गई। साहित्य की प्रायः सभी शैलियों की उपस्थापना जैसे– काव्य, नाटक, चम्पू, गद्य, कथा, आख्यायिका, स्तव महाभारत में मिलती है। स्वयं व्यास ने महाभारत के महत्त्व को बडे सुन्दर ढंग से बताया है– 'जो कुछ इस ग्रंथ में है, वह अन्यत्र है, किन्तु जो यहाँ नहीं है, वह अन्यत्र कहीं भी नहीं है।

वर्तमान उपलब्ध महाभारत में लगभग एक लाख श्लोक है। अतः यह शत–साहस्री संहिता नाम से प्रसिद्ध है। यह नाम गुप्तकालीन एक शिलालेख में प्रयुक्त होने से सिद्ध है कि महाभारत का यह स्वरुप प्रायः 15 सौ वर्षो से वर्तमान है। किन्तु इसमें संदेह नही कि महाभारत का यह विशाल कलेवर मूल रुप में नहीं था। इसमें नाना उपाख्यान और वर्णन विभिन्नि युगों में जोड़े जाते रहे। कौरव–पाण्डवों के गाथा–सम्बंधी उद्धरण वैदिक साहित्य में भी प्राप्त हैं। महर्षि व्यास ने इसी गाथा को महाकाव्य का रुप दिया। प्रारंम्भ में महाभारत का नाम 'जय' था। उसका परिवर्धित रुप 'भारत' कहलाया।

उस समय तक इस ग्रंथ में 24 हजार छंद ही थे, और यही संस्करण वैशम्पायन के मुख से जनमेजय ने सुना था। तीसरा था अंतिम स्वरुप 'महाभारत' नाम से प्रसिद्ध हुआ। जिसमें हरिवंश को सम्मिलित करके छंद संख्या एक लाख हो चुकी थी। प्रतीत होता है कि काफी समय तक ग्रन्थ के दोनों स्वरुप लोकप्रिय थे, क्योंकि अश्वलायन गृहसूत्र (ई0पू0 5वीं शती) में 'भारत' तथा 'महाभारत' दोनों नाम मिलते है। पाणिनी ने भी उनका पृथक उल्लेख किया है। अतः शतसाहस्री संहिता ईसा से पाँच सौ वर्ष पूर्व अस्तित्व में आ चुकी थी।

महाभारत के अध्यायः– महाभारत की सम्पूर्ण कथा अद्वितीय काव्य–शैली में 18 पर्वों में समाहित है। महाभारत के 18 पर्व अग्रलिखित हैं–

1. आदिपूर्व– इसमें प्रथम से 19 अध्यायों में महाभारत की प्रारंम्भिक कथावस्तु समाहित है।
2. सभापर्व– इसमें 20 से 28 अध्यायों में राज्य, सभाओं इत्यादि पर केन्द्रित कथा–वस्तु महाभारत में वर्णित है।
3. अरण्य पर्व– इसमें 29 से 44 अध्यायों में महाभारत में निर्वासन की विषय को समाहित किया गया है।
4. विराट पर्व– इसमें 45 से 48 अध्याय तक भारवंशीय राजाओं के अर्न्तकलह को मुख्य कथावस्तु बनाकर महाभारत में समाहित किया गया है।
5. उद्योग पर्व– इस पर्व में 49 से 60 अध्याय तक विभिन्न योजनाएं क्रियान्वित की विषयवस्तु को महाभारत में समाहित किया गया है।
6. भीष्म पर्व– इसमें 61 से 64 अध्याय तक महाभारत के युद्ध का वर्णन है।
7. द्रोण पर्व– इसमें 65 से 72 अध्याय तक महाभारत युद्ध का वर्णन है।
8. कर्ण–पर्व – इसमें मात्र एक 73 वें अध्याय में युद्ध का वर्णन है।
9. शल्य पर्व–इसमें 74 से 77 अध्याय तक महाभारत के युद्ध का वर्णन है।

10. सौप्तिक पर्व– इसमें 78 से 79 अध्याय में जनसंहार का चित्रण किया गया है।

11. स्त्री पर्व– इसमें 80 से 83 अध्याय तक जनंसहार के उपरान्त होने वाले क्रन्दन एवं अन्य विषयवस्तु का वर्णन किया है।

12. शान्ति पर्व– इसमें 84 से 86 अध्याय तक की विषयवस्तु में समाहित इस पर्व में शान्तिजन्य तथ्यों को उल्लिखित किया गया है।

13. अनुशासन–पर्व– इसमें 87 से 88 अध्याय तक विधिजन्य तथ्यों को समाहित किया गया है।

14. अश्वमेधिक पर्व– इसमें मात्र एक 89 अध्याय में पूर्व घटित तथ्यों के सामान्यीकरण का उल्लेख हुआ है।

15. आश्रमवासिक पर्व– इसमें 90 से 92 तक अध्याय में वैराग्य प्रवृत्ति का चित्रण हुआ है।

16. मौषल पर्व– इसमें मात्र 93वें अध्याय में वैनाशिक तथ्यें को प्रस्तुत किया गया है।

17. महाप्रस्थानिक पर्व– इसमें 94वें अध्याय में महाभारत की विषयवस्तु को समाप्ति की ओर अग्रसर किया है।

18. स्वर्गारोहण पर्व– इसमें 95वें अध्याय में महाभारत की कथावस्तु समाप्त हो जाती है और भारतवंशी स्वर्ग के लिए प्रस्थान कर जाते है।

1.2.1 महाभारत का ऐतिहासिक महत्व

महाभारत चंद्रवंशियों के दो परिवारों कौरवों और पाण्डवों के बीच हुए युद्ध का वृतांत है। 100 कौरव और पाँच पाण्डव भाईयों के बीच भूमि के लिए जो संघर्ष हुआ, उससे अंततः महाभारत युद्ध का सृजन हुआ। इस युद्ध की भारतीय और पश्चिमी विद्वानों द्वारा कई भिन्न–भिन्न तिथियों निर्धारित की गई। भारतीय खगोलविद् एवं गणितज्ञ बराहमिहिर के अनुसार महाभारत युद्ध 2449ई0पू0 में हुआ था। वहीं आर्यभट्ट का मत है कि महाभारत युद्ध 18 फरवरी 3102ई0पू0 में हुआ था। पुलकेशिन II के 5वीं शताब्दी के ऐहोल अभिलेख में यह बताया गया है कि भारत युद्ध को हुए 3735 वर्ष बीत गए

है। इस दृष्टिकोण से महाभारत का युद्ध 3100 ई0पू0 में लड़ा गया प्रतीत होता है। अधिकतर पश्चिमी विद्वानों के अनुसार भारत युद्ध 1200 ई0पू0 में हुआ था, जो इसे भारत में लौह युग (1200–800ई0पू0) से जोड़कर देखते है।

महाभारत में मगध, विदेह आदि राज्य, सीधियन, यूनानी आदि विदेशी जातियो के राज्य राजा से सम्बन्धित सिद्धान्त तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, परिस्थिति एवं धार्मिक क्रियाकलापों का विस्तार से वर्णन किया गया है। निश्चय ही महाभारत भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सर्वांगीण विकास का प्रदर्शन एवं विशाल विश्वकोश है। इसमें उस समय के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शो का अमूल्य और अक्षय संग्रह है। महाभारत की इस उक्ति में लेशमात्र संदेह नहीं है कि वह सर्वप्रधान काव्य, सभी दर्शनों का सार, स्मृति इतिहास और चरित्र–चित्रण की खान तथा पंचम वेद है। मानव जीवन का कोई ऐसा पहलू या समस्या नहीं जिस पर इसमें विस्तार से विचार न किया गया हो। उक्ति है कि जैसे दही में मक्खन मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, दवाओं में अमृत, जलाशयों में समुद्र था चौपायों में गाय श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इतिहासों में 'भारत श्रेष्ठ है। महाभारत का अनन्य धार्मिक महत्व इसी बात में हैं कि 'भगवतगीता' उसी का एक अंश है विष्णु सहस्रनाम, भीष्मस्वतन, अनुगीता, गजेन्द्रमोक्ष आदि भतिपरक रचनाएं महाभारत से ही उद्धत की गई है। राजनीति तथा नीति के प्राचीन ग्रंथों और विचार–धाराओं का तो मानो सार महाभारत में संकालित है विदुरनीति तथा शान्ति पर्व में भीष्म का उपदेश तद्विषयक स्वतंत्र ग्रंथ ही महाभारत में एक साथ ही अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र का प्रतिपादन है।

1.3 सारांश

महाभारत भारतीय संस्कृति और हिन्दू धर्म के सर्वांगीण विकास का प्रदर्शन एवं विशाल विश्वकोश है। इसमें उस समय के धार्मिक, नैतिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक आदर्शो का अमूल्य और अक्षय संग्रह है। महाभारत की इस उक्ति में लेशमात्र संदेह नहीं है कि वह सर्वप्रधान काव्य, सभी दर्शनों

का सार, स्मृति इतिहास और चरित्र–चित्रण की खान तथा पंचम वेद है। मानव जीवन का कोई ऐसा पहलू या समस्या नहीं जिस पर इसमें विस्तार से विचार न किया गया हो। उक्ति है कि जैसे दही में मक्खन मनुष्यों में ब्राह्मण, वेदों में आरण्यक, दवाओं में अमृत, जलाशयों में समुद्र तथा चौपायों में गाय श्रेष्ठ है, उसी प्रकार इतिहासों में 'भारत श्रेष्ठ है। महाभारत का अनन्य धार्मिक महत्व इसी बात में हैं कि 'भगवतगीता' उसी का एक अंश है विष्णु सहस्रनाम, भीष्मस्वतन, अनुगीता, गजेन्द्रमोक्ष आदि भक्तिपरक रचनाएं महाभारत से ही उद्धत की गई है। राजनीति तथा नीति के प्राचीन ग्रंथों और विचार–धाराओं का तो मानो सार महाभारत में संकलित है विदुरनीति तथा शान्ति पर्व में भीष्म का उपदेश तद्विषयक स्वतंत्र ग्रंथ ही महाभारत में एक साथ ही अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र तथा कामशास्त्र का प्रतिपादन है।

1.4 शब्दावली

स्तबल – अभ्यंथना, प्रार्थना, गुणगान।

सहस्रनाम– हजार नाम, जिसके हजार नाम हो

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – महाभारत का ऐतिहासिक महत्व निरूपित करे।

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास दर्शन ,डा.परमानन्द सिंह,मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी, 2010

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–01 कौटिल्य का अर्थशास्त्र

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 अर्थशास्त्र

1.3 सारांश

1.4 शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.7 सहायक ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

प्राचीन भारतीय इतिहास को जानने के लिए अर्थशास्त्र का अध्ययन आवश्यक है। चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानतंत्री आचार्य चाणक्य ने इस ग्रंथ का प्रणययन राजकीय कार्यो को सुचारू रूप से चलाने के लिए किया था। इस ग्रंथ में राजा के कर्तव्यों के साथ के दायित्व की व्यवस्था की गई है। यह ग्रंथ छह वृजार श्लोकों में निबद्ध है।

1.1 प्रस्तावना

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय, एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य–प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक है। यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका पूरा नाम 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' है। लेखक का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटित्य (कुटिल से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (तक्षशिला

के पास चणक नामक स्थान का रहने वाला) था। अर्थशास्त्र में लेखक का स्पष्ट कथन है इस ग्रंथ की रचना उस आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नंदों के हाथ में गए हुए शस्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

1.2 अर्थशास्त्र

अर्थशास्त्र, कौटिल्य या चाणक्य (चौथी शती ईसापूर्व) द्वारा रचित संस्कृत का एक ग्रन्थ है। इसमें राज्यव्यवस्था, कृषि, न्याय, एवं राजनीति आदि के विभिन्न पहलुओं पर विचार किया गया है। अपने तरह का (राज्य–प्रबन्धन विषयक) यह प्राचीनतम ग्रन्थ है। इसकी शैली उपदेशात्मक और सलाहात्मक है।

यह प्राचीन भारतीय राजनीति का प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसका पूरा नाम 'कौटिल्य अर्थशास्त्र' है। लेखक का व्यक्तिनाम विष्णुगुप्त, गोत्रनाम कौटित्य (कुटिल से व्युत्पन्न) और स्थानीय नाम चाणक्य (तक्षशिला के पास चणक नामक स्थान का रहने वाला) था। अर्थशास्त्र (15.431) में लेखक का स्पष्ट कथन है इस ग्रंथ की रचना उस आचार्य ने की जिन्होंने अन्याय तथा कुशासन से क्रुद्ध होकर नंदों के हाथ में गए हुए शस्त्र एवं पृथ्वी का शीघ्रता से उद्धार किया था।

चाणक्य सम्राट चंदगुप्त मौर्य (321–298 ई0) के महामंत्री थे। उन्होंने चंद्रगुप्त के प्रशासकीय उपयोग के लिए इस ग्रंथ की रचना की थी। यह मुख्यतः सूत्रशैली में लिखा हुआ है और संस्कृत के सूत्रसाहित्य के काल और परंपरा में रखा जा सकता है। यह शास्त्र अनावश्यक विस्तार से रहित, समझने और ग्रहण करने में सरल एवं कौटिल्य द्वारा शब्दों में रचा गया है जिनका अर्थ सुनिश्चित हो चुका है। (अर्थशास्त्र 15.6) यद्यपि कतिपय प्राचीन लेखकों ने अपने ग्रंथों में अर्थशास्त्र से अवतरण दिए हैं और कौटिल्य का उल्लेख किया है, तथापि यह ग्रंथ लुप्त हो चुका था। 1904 ई0 में तंजोर के एक पंडित ने भट्टस्वामी के अपूर्ण भाष्य के साथ अर्थशास्त्र का हस्तलेख मैसूर राज्य पुस्तकालय के अध्यक्ष श्री आर. शाम शास्त्री को दिया। श्री शास्त्री ने

पहले इसका अंशतः अंग्रेजी भाषांतर 1905 ई0 में 'इंडियन ऐंटिक्वेरी' तथा 'मैसूर रिव्यू' (1906–1909) में प्रकाशित किया। इसके पश्चात् इस ग्रंथ के दो हस्तलेख म्यूनिख लाइब्रेरी में प्राप्त हुए और एक संभवतः कलकत्ता में। तदनंतर शाम शास्त्री, गणपति शास्त्री, यदुवीर शास्त्री आदि द्वारा अर्थशास्त्र के कई संस्करण प्रकाशित हुए। शाम शास्त्री द्वारा अंग्रेजी भाषांतर का चतुर्थ संस्करण (1929 ई0) प्रामाणिक माना जाता है।

संरचना

ग्रंथ के अंत में दिए चाणक्यसूत्र (15.1) में अर्थशास्त्र की परिभाषा इस प्रकार हुई हैं, मनुष्यों की वृत्ति को अर्थ कहते हैं। मनुष्यों से संयुक्त भूमि ही अर्थ है। उसकी प्राप्ति तथा पालन के उपायों की विवेचना करनेवाले शास्त्र को अर्थशास्त्र कहते हैं।

इसके मुख्य विभाग है–

1. विनयाधिकरण
2. अध्यक्षप्रचार
3. धर्मस्थीयाधिकरण
4. कंटकशोधन
5. वृत्ताधिकरण
6. योन्यधिकरण
7. षाड्गुण्य
8. व्यसनाधिकरण
9. अभियास्त्कर्माधिकरणा
10. संग्रामाधिकरण
11. संघवृत्ताधिकरण
12. आबलीयसाधिकरण
13. दुर्गलम्भोपायाधिकरण
14. औपनिषदिकाधिकरण और
15. तंत्रयुक्तयधिकरण

इन अधिकरणों के अनेक उपविभाग (15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 उपविभाग तथा 6,000 श्लोक है।

वर्ण्यविषय एवं ग्रन्थ का महत्व

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है (अर्थशास्त्र, 15.431)।

इस ग्रंथ की महत्ता को देखते हुए कई विद्वानों ने इसके पाठ, भाषांतर, व्याख्या और विवेचन पर बड़े परिश्रम के साथ बहुमूल्य कार्य किया है। शाम शास्त्री और गणपति शास्त्र का उल्लेख किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त यूरोपीय विद्वानों में हर्मान जकोबी (ऑन दि अथॉरिटी ऑफ कौटिलीय इं0 ए0, 1918), ए. हिलेब्रांइट, डॉ0 जॉली, प्रो0 ए0बी0 कीथ (ज0रा0ए0सी0) आदि के नाम आद के साथ लिए जा सकते हें। अन्य भारतीय विद्वानों में डा0 नरेंद्रनाथ ला (स्टडीज न ऐंशेंट हिंदू पॉलिटी, 1914), श्री प्रेमथनाथ बनर्जी (पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ऐंशेंट इंडिया), डॉ0 काशीप्रसाद जायसवाल (हिंदू पॉलिटी), प्रो0 विनयकुमार सरकार (दि पाजिटिव बैकग्राउंड ऑव् हिंदू सोशियोलॉजी), पो0 नारायणचंद्र वंधोपाध्याय, डा0 प्राणनाथ विद्यालंकार आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीतिक सिद्धान्तों की एक महत्वपूर्ण कृति है। इस संबंध में यह प्रश्न उठता है कि कौटिल्य ने अपनी पुस्तक का नाम 'अर्थशास्त्र' क्यों रखा? उस समय अर्थशास्त्र' क्यों राजनीति और प्रशासन का शास्त्र माना जाता था। महाभारत में इस संबंध में एक प्रसंग है, जिसमें अर्जुन को अर्थशास्त्र का विशेषज्ञ माना गया है।

समाप्तवचने तस्मिन्नर्थशास्त्र विशारदः।

पार्थो धर्मार्थतत्वज्ञो जगौ वाक्यमनन्द्रितः।।

निश्चित रुप से कौटिल्य का अर्थशास्त्र के रुप में लिया गया होगा, यों उसने अर्थ की गई व्याख्याएँ की हैं। कौटिल्य ने कहा हैं– मनुष्याणां वृतिरर्थः 4 अर्थात् मनुष्यों की जीविका को अर्थ कहते हैं। अर्थशास्त्र की व्याख्या करते हुए उसने कहा है– तस्या पृथिव्या लाभपालनोपायः शास्त्रमर्थ–शास्त्रमिति।5 (मनुष्यों से युक्त भूमि को प्राप्त करने और उसकी रक्षा करने वाले उपयायों का निरुपण करने वाला शास्त्र कहलाता है।) इस प्रकार यह भी स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' के अन्तर्गत राजव्यवस्था और अर्थव्यवस्था दोनों से सबंधित सिद्धांतों का समावेश है। वस्तुतः कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' को केवल राजव्यवस्था और अर्थवयवस्था का शास्त्र कहना उपयुक्त नहीं होगा। वास्तव में यह अर्थव्यवस्था, राजव्यस्था, विधि व्यवस्था, समाज व्यवस्था और धर्म व्यवस्था से सबंधित शास्त्र हैं।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और भी कई अर्थशास्त्रों की रचना की गयी थी, यद्यपि उनकी पांडुलिपियां उपलब्ध नहीं हैं। भारत में प्राचीन काल से ही अर्थ, काम और धर्म के संयोग और सम्मिलन के लिए प्रयास किये जाते रहे हैं और उसके लिये शास्त्रों, स्मृतियों और पुराणों में विशद् चर्चाएँ की गयी हैं। कौटिल्य ने भी 'अर्थशास्त्र' में अर्थ, काम और धर्म की प्राप्ति के उपायों की व्याख्या की है। वात्स्यायन के 'कामसूत्र' में भी अर्थ, धर्म और काम के संबंध में सूत्रों की रचना की गयी है।

अपने पूर्व अर्थशास्त्रों की रचना की बात स्वयं कौटिल्य ने भी स्वीकार किया है। अपने 'अर्थशास्त्र' में कई संदर्भो में उसने आचार्य वृहस्पति, भारद्वाज, शुक्राचार्य, पराशर, पिशुन, विशालाक्ष आदि आचार्यों का उल्लेख किया है। कौटिल्य के पूर्व अनेक आचार्यो के ग्रंथों का नामकरण दंडनीति के रुप में किया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कौटिल्य के पूर्व शास्त्र दंडनीति कहे जाते थे और वे अर्थशास्त्र के समरुप होते थे। परन्तु जैसा कि अनेक विद्वानों ने स्वीकार किया है कि दंडनीति और अर्थशास्त्र दोनों समरुप नहीं हैं। यू0एन0 घोषाल के कथनानुसार अर्थशास्त्र ज्यादा व्यापक शास्त्र है, जबकि दंडनीति मात्र उसकी शाखा है।

कौटिल्य के पश्चात् लिखे गये शास्त्र नीतिशास्त्र के नाम से विख्यात हुए, जैसे कामंदक नीतिसार। वैसे कई विद्वानों ने अर्थशास्त्र को नीतिशास्त्र की अपेक्षा ज्यादा व्यापक माना है। परन्तु, अधिकांश विद्वानों की राय में नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र दोनों समरुप हैं तथा दोनों के विषय क्षेत्र भी एक ही हैं। स्वयं कामंदक ने नीतिशास्त्र और अर्थशास्त्र को समरुप माना है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के पूर्व और उसके बाद भी 'अर्थशास्त्रों की रचना की गयी।

इस संबंध में ऐसे विद्वानों की अच्छी–खासी संख्या है जो यह मानते हैं कि कौटिल्य 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार नहीं था। ऐसे विद्वानों में पाश्चात्य विद्वानों की संख्या ज्यादा हें स्टेन, जॉली, विंटत्नीज व कीथ इस प्रकार के विचार के प्रतिपादक हैं। भारतीय विद्वान आर.जी. भण्डारकर ने भी इसका समर्थन किया है। भंडारकर ने कहा कि पतंजलि ने महाभाष्य में कौटिल्य का उल्लेख नहीं किया है। 'अर्थशास्त्र' के रचयिता के रुप में कौटिल्य को नहीं मान्यता देनेवालों ने अपने मत के समर्थन में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किये हैं–

1. अर्थशास्त्र' में मौर्य या पाटलिपुत्र का कहीं कोई जिक्र नहीं मिलता है। यदि चन्द्रगुप्त का मंत्री कौटिल्य अर्थशास्त्र का रचनाकार होता तो 'अर्थशास्त्र' में उसका कहीं–न–कहीं कुछ जिक्र करता ही।
2. इस संबंध में यह कहा जाता है कि ' अर्थशास्त्र' की विषय–वस्तु जिस प्रकार की है, उससे यह नहीं प्रतीत होता है कि इसका रचनाकार कोई व्यवहारिक राजनीतिज्ञ होगा। निःसन्देह कोई शास्त्रीय पंडित ने ही इसकी रचना की होगी। कौटिल्य फर्जी नाम प्रतीत होता है।
3. चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य यदि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार होता तो उसके सूत्र एवं उक्तियाँ बड़े राज्यों के संबंध में होते, परन्तु 'अर्थशास्त्र' के उद्धरण एवं उक्तियाँ लघु एवं मध्यम राज्यों के लिये सम्बोधित हैं। अतः स्पष्ट है कि 'अर्थशास्त्र' का रचनाकार कौटिल्य नहीं था। डॉ0 बेनी प्रसाद के अनुसार 'अर्थशास्त्र' में जिस आकार या

स्वरुप के राज्य का जिक्र किया गया है, निःसन्देह वह मौर्य, कलिंग या आंध्र साम्राज्य के आधार से मेल नहीं खाता है।7

4. विंटरनीज ने कहा है कि मेगास्थनीज ने, जो लम्बे अरसे तक चन्द्रगुप्त के दरबार में रहा और जिसने अपनी पुस्तक 'इंडिका' में चन्द्रगुप्त के दरबार के संबंध में बहुत कुछ लिखा है, कौटिल्य के बारे में कुछ नहीं लिखा है, और नही उसकी पुस्तक 'अर्थशास्त्र' की कहीं कोई चर्चा की हैं। यदि 'अर्थशास्त्र' जेसे विख्यात शास्त्र का लेखक कौटिल्य चन्द्रगुप्त का मंत्री होता तो मेगास्थनीज की 'इंडिका' में उसका जिक्र अवश्य किया जाता है।
5. मेगास्थनीज और कौटिल्य के कई विवरण में मेल नहीं खाता। उदाहरण के लिए मेगास्थनीज के अनुसार उस समय भारतीय रासायनिक प्रक्रिया से अवगत नहीं थे, भारतवासियों को केवल पाँच धातुओं की जानकारी थी, जबकि 'अर्थशास्त्र' में इन सभी का वर्णन मिलता है। इसके अतिरिक्त प्रशासकीय संरचना, उद्योग–व्यवस्था, वित्त–व्यवस्था आदि के संबंध में भी मेगास्थनीज और 'अर्थशास्त्र' का लेखक चन्द्रगुप्त मौर्य का मंत्री कौटिल्य नहीं हो सकता है।

1.3 सारांश

अर्थशास्त्र में समसामयिक राजनीति, अर्थनीति, विधि, समाजनीति, तथा धर्मादि पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इस विषय के जितने ग्रंथ अभी तक उपलब्ध हैं उनमें से वास्तविक जीवन का चित्रण करने के कारण यह सबसे अधिक मूल्यवान है। इस शास्त्र के प्रकाश में न केवल धर्म, अर्थ और काम का प्रणयन और पालन होता है अपितु अधर्म, अनर्थ तथा अवांछनीय का शमन भी होता है।

1.4 शब्दावली

पांडूलिपि — हस्तलिखित लिपिबद्ध कागजात

प्रणयन — निर्माण, रचना कृति

दंडनीति — अपराध के लिए दण्ड का धर्मयुक्त निर्धारण

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न — अर्थशास्त्र की विशद् व्यवस्था करें?

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर— देखे 1.2

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास दर्शन ,डा.परमानन्द सिंह,मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी, 2010

3. इतिहास—दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–01 धर्मशास्त्रों की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2धर्मशास्त्र

1.3 सरांश

1.4शब्दावली

1.5 बोध प्रश्न

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

1.0 उद्देश्य

प्राचीन भारतीय विधि निषेधों का समझने के लिए धर्मशास्त्र का अध्ययन किया जाता है, जो तत्कालीन समय की जीवनचर्चा का हिस्सा था। धर्मशास्त्रों से सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सामग्रता के साथ सांस्कृतिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। धर्मशास्त्रो की संख्या समय–समय पर बढ़ती चली गई, आगे जाकर लगभग संपूर्ण वैदोत्तर साहित्य को भी धर्मशास्त्र के अंतर्गत सामाहित किया जाने लगा।

1.1 प्रस्तावना

धर्म शास्त्र के अर्न्तगत हम वैदिक संहिताओं से लेकर भाष्य उपनिषद् निबंध आदि सभी धार्मिक रचनाएं की जा सकती है। एवं उनकों दृष्टि में रखते हुये ही हम ऐतिहासिक महत्व की चर्चा करेगे। धर्म शास्त्रों में सूत्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूत्र साहित्य को कल्प सूत्र के रुप में भी जाना जाता है। समाजोपयोगी बनाने का कार्य संहिताओं को सूत्र साहित्य ने किया। विषय वस्तु की दृष्टि से कल्प सूत्र साहित्य को तीन भागों में बाटा गया है। धर्म सूत्र, गृह सुत्र, एवं श्रौत सूत्र।

1.2 धर्मशास्त्र

धर्म शास्त्र के अर्न्तगत हम वैदिक संहिताओं से लेकर भाष्य उपनिषद् निबंध आदि सभी धार्मिक रचनाएं की जा सकती है। एवं उनकों दृष्टि में रखते हुये ही हम ऐतिहासिक महत्व की चर्चा करेगे। धर्म शास्त्रों में सूत्र साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सूत्र साहित्य को कल्प सूत्र के रुप में भी जाना जाता है। समाजोपयोगी बनाने का कार्य संहिताओं को सूत्र साहित्य ने किया। विषय वस्तु की दृष्टि से कल्प सूत्र साहित्य को तीन भागों में बाटा गया है। धर्म सूत्र, गृह सुत्र, एवं श्रौत सूत्र।

श्रौत सूत्र–इस साहित्य में यज्ञ से संबंधित विषय सामग्री दी गयी है। इसमें ऋग्वैदिक काल से चली आ रही, याज्ञिक क्रियाओं के आकार प्रकार एवं विधि–निषेध की विस्तार से चर्चा की गयी है।

गृह सूत्र–इसका विषय गृहस्थ जीवन से संबंधित है। इसका मूल विषय आचार, कर्तव्य दैनिक उपासना, संस्कार इत्यादि है।

धर्मसूत्र–जिनकी विषय सामग्री गृह सुत्रों के काफी करीब है। गृह सुत्रों में जहाँ जीवन से सम्बन्धित विधि और निषेधों का विस्तार से वर्णन किया गया है। वही इनका संक्षिप्त विवरण धर्म सूत्रों में प्राप्त होता है। गृह सूत्रों की अपेक्षा विवाह, उपनयन, संस्कार, ब्रह्मचर्य, आश्रम, श्राद्ध इत्यादि का वर्ण धर्म सूत्रों में अधिक विस्तार से हुआ है। कालान्तर में इन्हीं सूत्रों साहित्यों को ध्यान में रख कर स्मृति ग्रंथ लिखे गये थे। दूसरे शब्दों में सुत्र साहित्य को आधार बनाकर स्मृति ग्रंथ लिखे गये और यही परंपरा भाष्यऔर निबंध के रुप में 18वीं शताब्दी तक चलती रही। सूत्र साहित्य गद्य और पद्य दोनों में लिखे गये हे। यद्यपि इनके वाक्य छोटे है जबकि स्मृति साहित्य की रचना पद्य में ही की गई है। भाषा साहित्यों के अनुसार इन सूत्रों की भाषा स्मृतियों की भाषा से प्राचीन एवं अविकसित है। धर्म सूत्रों में गौतम, आपस्तम्भ, वसिष्ठ, बौद्यायन, प्रमुख है। जिनकी रचना का समय 600 ई0पू0 से 500 ई0पू0 के बीच रखा जाता है।

जहाँ तक धर्मशास्त्र का प्रश्न है। इसमें अध्ययन की सुगमता व दृष्टि से सूत्र परंपरा के ग्रंथ स्मृति परंपरा के ग्रंथ, और उन पर लिखे जाने वाले भाष्य एवं निबंध लिए गये है। जबकि धर्मशास्त्र में वे सभी ग्रंथ होने चाहिए जिनमें धर्म की सामग्री दी गई है। चाहे वे वैदिक परंपरा के ग्रंथ हो पुराण परंपरा के ग्रंथ होया महाकाव्य परंपरा के। परंतु यें सीमांकन प्राचीन भारतीय मनीषियों द्वारा किया गया है। स्मृति संहिता परंपरा के ग्रंथों से मूलतः तीन विषयों का प्रतिपादन हुआ है। आचार, व्यवहार एवं प्रायश्चित।

आचार–

आचार का तात्पर्यउन नियमों से था, जो व्यक्ति और समाज से संबंधित थे। जैसे वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, आश्रम व्यवस्था इत्यादि।

व्यवहार– का अर्थ है कानून इसके अन्तर्गत जिन विषयों का प्रतिपादन किया गया है, उनमें उत्तराधिकारी, पारिवारिक संपत्ति, संपत्ति का विभाजन इत्यादि इसके अतिरिक्त कुछ अन्य जिनका संबंध सामाजिक संस्थाओं से है। जैसे विवाह की स्थिति, स्त्री की स्थिति, दण्ड प्रक्रिया, कानून व्यवहार की सीमा के अन्तर्गत लिया गया है।

प्रायश्चित का संबंध पाप–कर्म से है। इसमें पाप और प्रायश्चित की व्याख्या की गयी है। गृह सुत्रों में व्यवहार और प्रायश्चित का उल्लेख नहीं है। आठवीं शताब्दी ई0 से धर्मशास्त्र परंपरा से संबंधित एक नई परंपरा की शुरुआत हुई। जिसके आधार ग्रंथ थे। जिन्हें हम भाष्य या निबंध के नाम से जानते है– स्मृतियों से संबंधित भाष्य लेखन की परंपरा आठवीं शताब्दी तक नही थी। कुछ में यह परंपरा इस समय तक प्राप्त होती है। सबसे अधिक भाष्य मनुस्मृति पर लिखे गये हैं। मनुस्मृति भाष्य व्याख्याकारों के नाम है। मेधातिथि, अपर्राक, इसी प्रकार याज्ञवल्क्य, स्मृति के भाष्यकारों में विश्वरुप और विज्ञानेश्वर के नाम प्रमुख है। इन्हीं स्मृतियों पर लिखे गये भाष्य आज उपलब्ध है। ये भाष्य स्मृतियों से संबंधित है, अतः विषय सामग्री की दृष्टि से इनमें कोई अन्तर नहीं है। इस कड़ी में 18वीं शताब्दी तक निबंधों को लिखने की परंपरा चलती रही। अधिकांश निबंधकारों ने प्रायः यह दावा प्रस्तुत किया

किया कि उनके निबंधों में पूर्ववर्ती ग्रंथों का सार प्रस्तुत किया गया है अधिकांश निबंध ग्रंथ सामाजिक एवं विशिष्ट लोगों द्वारा लिखे गये है।

प्रश्न विचारणीय है कि जब इतनी बड़ी मात्रा में सूत्र ग्रंथो के बाद स्मृति परंपरा के ग्रंथ लिखे गये तो इन भाष्य निबन्ध ग्रंथों की आवश्यकता क्या थी? ऐसा प्रतीत होता है कि समय के साथ–साथ भाष्य की सोच में उनके साहित्य सरंचना में साहित्यक नियमों और मान्यताओं में परिवर्तन आया क्योंकि इनसे पहले जो ग्रंथ लिखे गये थे, उनका संबंध पूर्व के समाज व्यवस्था तथा समाज के समस्याओं से था। अब आवश्यकता इस बात की थी कि इन परंपराओं के बदले हुय परिवेश में कैसे स्वीकार किया जायें। और कैसे महत्वपूर्ण बनाया जायें। संस्कृति परिवर्तनशील है। इसी आधार पर भाष्य एवं निबंध ग्रंथों के द्वारा तत्कालीन विचारकों ने नवीन मान्यताओं को वैधानिक जामा पहनाने का काम किया। भाष्यकारों ने कुछ नीतियों को निर्धारित भी किया। प्रथम नीति थी, वेदों एवं स्मृतियों की व्याख्या, इनमें तथ्यों को काफी तोड़ मरोड़कर प्रस्तुत किया गया है। नारद स्मृति में उल्लिखित है कि स्त्री, मृत पति के सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी नही होगी। पूर्व मध्यकाल का समाज पत्नि का सम्पत्ति का उत्तरधिकारी मानता था। अतः नारद स्मृति ने अपनी व्याख्या में तथ्य की व्याख्या तोड़ मरोड़कर की है। यहां पत्नी के स्थान पर स्त्री शब्द प्रयुक्त हुआ है। यहां नारद ने स्त्री शब्द का प्रयोग अवैधानिक स्त्री के लिये किया है। और उसे उत्तराधिकार से वंचित किया है।

भाष्यों, निबन्धों एवं स्मृतियों में एक ओर महत्त्वपूर्ण बात कही गयी है कि प्राचीन स्मृतियों में जो कुछ भी कहा गया है वह सतयुग के लिये है। वह कलियुग के लिये अनुकरणीय नहीं है। यहां यह प्रश्न विचारणीय हो सकती है कि क्या इन ग्रंथों को भी धर्मशास्त्रों के अन्तर्गत रखा जाना चाहिए इसमें विद्वानों के एक मत नही हैं। विद्वानों का एक पक्ष जहां इन्हें धर्म शास्त्र की सीमा में रखने का समर्थन करता है। वही दूसरी पक्ष इसका विरोधी है। विरोधी पक्ष यह स्वीकार करता है कि इन ग्रंथों को आंशिक धर्मशास्त्र स्वीकार

करते हुये वृहद धर्मशास्त्र की सीमा में रख सकते है। इसी तरह पुराणों को भी इस सीमा में रखा जा सकता है।

इस प्रकार उपरोक्त ग्रंथ आंशिक रुप से धर्मशास्त्र है।यद्यपि प्रो0 आर0एस0 शर्मा मानते है कि सम्पूर्ण साहित्य जो धर्म का प्रतिपादन करते हैं, इनके अन्तर्गत आते हैं। इनमें प्राचीन भारतीय कानून संबंधी सूचनायें मिलती है। जैसे राज्य और राजा की अवधारणा साहित्यकारों ने इस महत्त्वपूर्ण विषय को स्थान दिया हे।

स्मृति साहित्य की रचना का कार्य मनुस्मृति से माना जाता है तथा उसका समय दूसरी शताब्दी ई0पू0 रखा गया है। इसी के साथ याज्ञावल्क्य स्मृति का समय प्रथम शताब्दी ई0, बृहस्पति स्मृति का तीसरी–चौथी ई0 नारद स्मृति पाँचवी छठी शताब्दी ई0 तथा काव्यायन स्मृति का काल छठी–सातवी शताब्दी ई0 माना जाता है।

कुछ स्मृतियाँ जो अनुपलब्ध है उनके भाष्य एवं निबंध प्राप्त होते है। जिनके आधार पर उनकी विषय वस्तु की सूचनाएं प्राप्त होती है।

धर्मशास्त्र जिसके साहित्य की चर्चा की जा सकती है वे इतिहास के प्रमाणिक श्रोत माने जाते हैं। प्राचीन भारत के सामाजिक इतिहास के सन्दर्भ में धर्मशास्त्र विशेष महत्व रखते हैं। वैसे तो इतिहास तिथि युक्त होना चाहिए किन्तु वैदिक ग्रंथों की तरह धर्मशास्त्रों में भी एक ओर जहां तिथि का अभाव है, वही इसकी विषय वस्तु में बहुत से उद्धरण पारंपरिक है। धर्मशास्त्र के ग्रंथों में भी विषय वस्तु की दृष्टिकोण से एकरूपता दृष्टिगत होती है। जहां तक भाषा शैली का प्रश्न है धर्मशास्त्र में आदर्शात्मक दृष्टिकोण अपनाया गया है। धर्मशास्त्रों में कही ऐसा उल्लेख नहीं प्राप्त होता है कि ऐसा हुआ करता था, या ऐसा होता था। बल्कि धर्मशास्त्र कहते हैं कि ऐसा होना चाहिए।

इस सन्दर्भ में मानव शास्त्रियों के विचार उद्धत किये जा सकते है। जहां वे सांस्कृतिक प्रतिमान को दो भागों में विभक्त करते हैं।

(1) आदर्श प्रतिमान (2) व्यवहार प्रतिमान।

समाज के सम्मुख कुछ आदर्श होते हैं। जिसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि आदर्श व्यवहार में परिणत हो। धर्मशास्त्र सदैव आदर्श की बात करता है। इस सन्दर्भ में यह भी कहना कठिन है कि आदर्श जिनका उल्लेख धर्मशास्त्र कहते है, तत्कालीन समाज में वे व्यवहार रुप में किस सीमा तक स्वीकार थे। सम्पूर्ण धर्मशास्त्र निवृति मार्ग की पोषक है। धर्मशास्त्र में वर्णित घटनायें भी आदर्शात्मक ही है। धर्मशास्त्र में प्राप्त होता है कि वर्णाश्रम धर्म, हिन्दू धर्म का मूल है और जिस क्षण विभिन्न जातियों का उदय हुआ वर्णाश्रम व्यवस्था समाप्त हो गया। आश्रम व्यवस्था की भी चर्चा लगभग सभी धर्मशास्त्रों में की गयी है। यद्यपि आश्रम व्यवस्था के स्वीकार्यता को लेकर धर्मशास्त्रों में बड़ा विवाद रहा है। विवाद की चर्चा धर्मशास्त्रों में मिलती है। स्मृतियां भी इसकी चर्चा करती है।

दोनों ही प्रकार के साहित्य एक बात पर बार–बार जोड़े दिया गया है कि विवाह सजातीय होना चाहिए, बाल विवाह का प्रचलन इस काल में नहीं था।

नारी शिक्षा के सम्बन्ध में स्त्रियों का समावर्तन संस्कार का उल्लेख है। यद्यपि नारी की स्थिति पराधीनता जैसी स्थिति में पहुँच चुकी थी। धार्मिक क्रिया कलापों के लिये स्त्रीयाँ स्वतंत्र नहीं थी। प्रर्दा प्रथा का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है इस काल तक कृषि प्रमुख व्यवसाय है। सांख्यायन गृह सुत्र में बैलों द्वारा खेतो में हल चलाने और यंत्रों के साथ कृषि कार्यो को आरम्भ किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। यद्यपि पशुपालन व्यवस्था इस काल में विद्यमान थी राजा और कृषक के बीच क्षेत्रपति जैसे शब्दों का उल्लेख विद्वानों द्वारा सामन्तवादी व्यवस्था के शुरुआत के रुप में स्वीकार किया जाता है।

1.3 सारांश

धर्मशास्त्र भारतीय इतिहास निर्माण में अत्यंत सहायक हो। धर्मशास्त्रों से संपूर्ण भारतीय अचार–विचार, व्यवहार, कर्मकांड निधि–निषेधों को समझा जा सकता है। इसके अंतर्गत सूत्र साहित्य भी समाहित किए जाते है।

गृहोपयोगी, धार्मिक नियम–कानून धर्मशास्त्रों में दिए गए हो। सामपत्विक अधिकार एवं उनके जुड़े विभिन्न पहलूओं पर विचार एवं नियम धर्मशास्त्रों में मिलते है। धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीय इतिहास का सर्वांगिण एवं सम्पूर्ण रूप लिपिबद्ध है।

1.4 शब्दावली

श्रौत सूत्र –वैदिक याज्ञिक क्रियाओं से संबंधित निबंधों का वर्णन हो।

गृह सूत्र – गृहस्थ जीवन से संबंधित आचार–नियमों का वर्णन है।

1.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – धर्मशास्त्रों की विशद् वर्णन करे।

1.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास दर्शन ,डा.परमानन्द सिंह,मोतीलाल बनारसीदास,वाराणसी, 2010

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–02 अभिलेखा, स्मारकों की विवेचना

इकाई–02 अभिलेखों की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 अभिलेख

2.3 सारांश

2.4 शब्दावली

2.5 बोध प्रश्न

2.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

2.7 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इतिहास के स्रोतों के रूप में अभिलेखों का अत्यंत महत्व है। अभिलेख किसी कागज, चमड़ा धातु, फलक, मृण्य–फलक, पाषाण खंडो पर ही नहीं वरन् कही भी हो सकती है। मनुष्य अपने भावनाओं विचारों को लिपि के माध्यम से जब व्यक्त करता है तो उससे कई प्रकार की जानकारियाँ जाने अनजाने मिलती है। ठीक उसी प्रकार प्राचीन काल में राजाओं की आज्ञा चत्र पाषाण खंडो पर उकेरे जाते थे, एवं अन्य माध्यमों के जरिये भी व्यक्त किये जाते थे, जिनका इतिहास के स्रोतों के रूप में अन्यनतम महत्व है।

2.1 प्रस्तावना

वे लिखित साक्ष्य जो किसी वस्तु के ऊपर मान्य संकेतों द्वारा लिखे गए हैं। अभिलेखशास्त्र (epigraph)–वह विज्ञान जो लिखित साक्ष्य अर्थात् अभिलेखों का अध्ययन करता है।

अभिलेख हमें दो तरह के साक्ष्यों के रुप में उपलब्ध होते हैं–

1. मूर्त साक्ष्य के रुप में– प्राप्त वास्तु अवशेष।
2. अमूर्त साक्ष्य के रुप में– अभिलेखों में वर्णित तथ्यों से समकालीन समाज तथा संस्कृति के उन पक्षों का आभास होता है जो अमूर्त रुप से विद्यमान होते हैं जैसे–धार्मिक मान्यताएँ, राजनैतिक प्रबंधन या इसी प्रकार की अन्य सूचनाएं।

2.2 अभिलेख

अभिलेख (**Epigraph**)–

वे लिखित साक्ष्य जो किसी वस्तु के ऊपर मान्य संकेतों द्वारा लिखे गए हैं। अभिलेखशास्त्र (epigraph)–वह विज्ञान जो लिखित साक्ष्य अर्थात् अभिलेखों का अध्ययन करता है।

अभिलेखों से उपलब्ध साक्ष्य–

अभिलेख हमें दो तरह के साक्ष्यों के रुप में उपलब्ध होते हैं–

3. मूर्त साक्ष्य के रुप में– प्राप्त वास्तु अवशेष।
4. अमूर्त साक्ष्य के रुप में– अभिलेखों में वर्णित तथ्यों से समकालीन समाज तथा संस्कृति के उन पक्षों का आभास होता है जो अमूर्त रुप से विद्यमान होते हैं जैसे–धार्मिक मान्यताएँ, राजनैतिक प्रबंधन या इसी प्रकार की अन्य सूचनाएं।

अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा और लिपि का पृथक इतिहास–

अभिलेखों में प्रयुक्त भाषा और उसका लेखन अर्थात् लिपि–दोनों का पृथक इतिहास रहा है। मानव speech की शुरुआत होमा–इरेक्ट्स (homoerectus)से होती है जो 11 लाख वर्ष पूर्व अस्तित्व में था।

Note- जानवर की आवाजें–call

मानव की आवाजें. speech

प्राचीनतम मानव australopithecus को माना जाता है क्योंकि यह उपकरण बनाने लगा था, यद्यपि शरीर से व वनमानुष ही था।

धीरे–धीरे मानव के बोलने की अभिव्यक्ति विकसित होती गई और इस अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में एकरुपता लाने के लिए कुछ ऐसे नियम विकसित होने लगे जो languages के रुप में कई वर्गों में बंटने लगे और भाषा अभिव्यक्ति, दिनचर्या तथा विभिन्न क्रियाकलापों के लिए आवश्यक हो गई।

भाषा को लिपिबद्ध करने का प्रयास तुलनात्मक रुप से बहुत बाद का है और लेखन की प्रथा विश्व के अलग–अलग क्षेत्रों में अलग–अलग समय तथा अलग–अलग स्वरूप में प्रारंम्भ हुई। भारतीय उपमहाद्वीप की अगर बात करें तो एक लम्बा काल ऐसा था जब भाषा का विकास और उसके आधार पर एक बहुत सम्पन्न साहित्य की संरचना हो गई थी लेकिन लेखन की प्रथा तथा भाषा को लिपिगत करने का प्रयास बहुत बाद में शुरु हुआ।

दरअसल भाषा का प्रचलन सांस्कृतिक आवश्यकता के रुप में स्वतः विकसित होने लगता है और लेखन की आवश्यकता तब होती है जब समाज का स्वरुप काफी जटिल हो जाता है और ऐसे समाज में जब विशेष नियम की स्थापना करनी होती है तो आदेशों, नियमों और नैतिक मूल्यों को लिखित रुप में समाज में रखा जाता है। लिपि के विकास को हम अर्थव्यवस्था से भी जोड़ सकते हैं।

इस प्रकार, लेखन का इतिहास भाषा के इतिहास से सर्वथा भिन्न है। अतः इसके विकास के विभिन्न चरणों पर अलग से विचार किया जाना चाहिए।

अभिलेखों में प्रयुक्त माध्यम–

भारतीय उपमहाद्वीप में प्राचीन लेखों के जो अस्तित्व प्राप्त हुए हैं, उनमें दो तरह के माध्यम का प्रयोग किया गया है–

(1) ऐसे माध्यम जो लम्बे समय तक सुरखित रहते हैं। जैसे– पाषाण, धातु के पत्रों यथा सोना, चाँदी, पीतल और कभी–कभी टिन (ब्रिटिश संग्रहालय में सुरक्षित) के ऊपर लिखित अवशेष। इसके अतिरिक्त मिट्टी खासतौर पर teracota (बही मिट्टी) जिसमें मृदापात्र, ईंटें और मिट्टी के ऊपर

बनी मुद्राएँ– ये सब वस्तुएँ आती हैं– के ऊपर अंकित लेख भी काफी लंबे समय तक सुरक्षित रह जाते हैं।

(2) यह ऐसा माध्यम है जिस पर लिखे बहुत जल्द नष्ट हो जाते हैं। जैसे– लकड़ी, चमड़ा, कपड़ा, भोजपत्र और मध्यकाल में कागज। ये कभी–कभी तो सुरक्षित रह जाते हैं मगर इसका विघटन बहुत जल्दी हो जाता है।

अभिलेख जिन माध्यमों पर बने मिलते हैं, उनमें एक ऐतिहासिक क्रम देखा जा सकता है। सिन्धु–सम्यता जहाँ से सबसे प्रारंभिक लेखन के प्रमाण मिले हैं, वहाँ तीन प्रकार के माध्यमों पर लेख मिलते हैं–

(1) प्रस्तर या पाषाण– घौलावीरा में हड़प्पन अभिलेख

(2) सेलखड़ी की मुद्राएँ

(3) मिट्टी के बर्तनों के ऊपर खुरच कर बनाए गए हैं। ऐतिहासिक काल में जब लेखन के प्रमाण मिलने शुरु होते हैं तो सबसे प्रमाणिक प्रमाण premauryan मिट्टी के बर्तन तथा अत्यल्प पाषाण के कुछ पात्र हैं जो श्रीलंका के अनुराधापुर से प्राप्त हुए हैं। मौर्यकाल मेंअभिलेखन हेतु बहुत बड़े स्तर पर पाषाण का प्रयोग हुआ। गुप्तकाल तथा गुप्तोत्तर काल में पाषाण के साथ–साथ धातु खासकर ताँबें का प्रयोग (दानपत्र वगैरह के रुप में) देखने को मिलता है।

विषयवस्तु के आधार पर अभिलेखों का वर्गीकरण–

विषयवस्तु के आधार पर अभिलेखों को दो मुख्य वर्गो में विभाजित किया जा सकता है– 1. शासक वर्ग के अभिलेख– जहाँ तक शासकीय व्यक्तियों के अभिलेखों का प्रश्न है तो इन्हें प्राचीन साहित्य में भी विशेष रुप से महत्व दिया गया है। उदाहरण के लिए धर्मशास्त्र में इस प्रकार के कई अभिलेखों की चर्चा है। जैसे–

(1) भूमिदान के अध्यादेश

(2) आज्ञापत्र

(3) शासन–पत्र

(4) जयपत्र (जो न्याय संबंधी अध्यादेश का लेखन करते हैं)

(5) प्रशस्तियाँ (जिनमें राजाओं के कार्य, प्रशंसा एवं जीवन का वर्णन होता है।)

(6) प्रासाद लेख (जिसमें किसी घटना विशेष या व्यक्ति–विशेष की प्रशंसा की जाती है।

इन उल्लेखों से यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में लेखों द्वारा शासन एवं सत्ता संबंधी कई अध्यादेश जारी किए जाते थे।

2. व्यक्ति–विशेष के अभिलेख– व्यक्ति– विशेष के द्वारा जारी किए गए लेख भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। ये लेख हैं मूलतः–

(a) प्रशासनिक पदों पर स्थापित व्यक्तियों के– गुप्तकाल में सामन्त या छोटे शासकों के लेख। जैसे– चक्रपालित द्वारा लिखवाया गया जूनागढ़ अभिलेख।

(b) धार्मिक रुप से सशक्त व्यक्तियों के– बलभिक्षु द्वारा सारनाथ में स्थापित बोधिसत्व की प्रतिमा पर अंकित लेख।

(c) व्यसायियों अथवा व्यापारियों के– साँची के स्तूप से संबंधित कई लेख जो वणिक वर्ग द्वारा उत्कीर्ण करवाए गए। कई वास्तु–दान के लेख व्यवसायियों से संबंधित हैं।

अभिलेखों से मिलने वाली ऐतिहासिक सूचनाएँ

व्यापारिक सूचना–

प्राचीन भारतीय अभिलेखों में जो व्यापरिक लेख हैं, वो अन्य लेखों की तुलना में बहुत छोटे मिलते हैं। इसके अन्तर्गत व्यापारिक गतिविधियों की प्रक्रिया में विशेष व्यक्तियों के नाम जिन वस्तुओं का व्यापार किया जा रहा है उसका नाम तथा व्यापारिक वर्गों के नाम उपलब्ध होते हैं। ये ज्यादातर seal और sealing के रुप में उपलब्ध होते हैं।

seals के प्रमाण हड़प्पा सभ्यता से ही मिलने शुरु हो जाते हैं परन्तु चूँकि इस लेख को पढ़ा नहीं जा सका है। अतः इस लिपि का प्रयोग तत्कालीन इतिहास संरचना के लिए करना संभव नहीं है। लेकिन seals के

जो छाप मिलते हैं वे संकेत करते हैं कि वस्तुओं का आदान–प्रदान व्यापार तथा विनिमय के रुप में होते रहे होंगे।

कालान्तर में जब ब्राह्मी लिपि का प्रयोग लेखकन में होता है, व्यापारिक गतिविधियों के साथ seal के ऊपर कुछ सूचनाएँ उपलब्ध होती है। उदाहरण स्वरुप वैशाली के उत्खनन से जो seal मिले हैं, उस पर 'कुलिक निगमस्य' लिखा मिलता है।

भीतरी (आधुनिक उत्तरप्रदेश के गाजीपुर जनपद में स्थित) गुप्त–काल के मंदिरों का एक स्थल है जहाँ के उत्खनन से ये संकेत मिलते हैं कि इस सन्निवेश में कच्चे लोहे का आयात किया जाता था। भीतरी के मध्य मंदिर के बाहरी भाग के उत्खनन से कच्चे फर्श के अवशेष, उसके ऊपर राख का फैलाव और साथ में लोहे के टुकड़ों को गलाने के प्रमाण मिले हैं। साथ ही कुछ ऐसे seals प्राप्त हुए हैं जिनके ऊपर 'मधुसूदन', 'श्री मधुप', 'श्री मधुसर' जैसे नाम अंकित हैं। कुछ sealings के ऊपर 'अगनेयश' लिखा है जिसका तात्पर्य कच्चे लोहे से है। एक मुहर के नीचले भाग में सुतली की छाप उपर्युक्त संदर्भों से स्पष्ट होता है कि भीतरी में जब मंदिरों की संरचना हो रही थी तो कच्चे लोहे का आयात इस स्थल पर किया जाता था।

कभी–कभी अभिलेखों से व्यापारियों के आर्थिक स्तर की भी जानकारी मिलती है। उदाहरण के लिए मन्दसौर अभिलेखों में रेशम के बुनकरों द्वारा मंदसौर में शिव–मंदिर के निर्माण की चर्चा है। स्कन्दगुप्त के इन्दौर ताम्रपत्र में तैलिक श्रेणी का वर्णन है जिसने सूर्य–मंदिर में दीप जलाने के निमित्त तेल का दान दिया था। व्यापारियों की सशत अर्थव्यवस्था का अंदाजा इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वे बैंको का कार्य भी करती थी। नहपान कालीन नासिक गुहालेख से ज्ञात होता है कि नहपान के जमाता उषवढात ने गोवर्धन में निवास करने वाली जुलाहों की एक श्रेणी में 2000 कार्षापण और दूसरी में 1000 कार्षापण जमा कराए।

व्यापारिक लेखों से यह भी ज्ञात होता है कि व्यापारिक श्रेणियाँ कभी–कभी अपने व्यवसाय वृद्धि के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान में अपने को प्रतिष्ठित कर लेती थी। उदाहरणस्वरुप मंदसौर लेख का पुनः उल्लेख किया जा सकता है जिसमें जिस पट्टवाय श्रेणी का उल्लेख है वो गुजराज से आए थे।

धार्मिक सूचनाएँ–

अभिलेखों से प्राप्त धार्मिक सूचनाएं एक तरफ तो समकालीन समाज में अलग–अलग धर्मों के प्रचलन और उनसे संबंधित क्रियाकलापों का विवरण प्रस्तुत करते हैं तो दूसरी तरफ प्रत्येक धर्म के विकास और प्रचलन के स्वरुप का इतिहास भी अभिलेखों की मदद से निर्मित किया जा सकता है। इससे एक तरफ तो हमें राजसत्ता का धर्म की ओर रुझान का ज्ञान प्राप्त होता है तो दूसरी तरफ धार्मिक संघों की संरचना एवं उनके अनुशासन का भी इतिहास ज्ञात होता है। अशोक के धर्म अध्यादेशों की अगर बात करें तो इससे जहाँ एक ओर बौद्ध धर्म के प्रति उसका झुकाव प्रदर्शित होता है वहीं सारनाथ, साँची एवं कौशाम्बी लेख में बौद्ध भिक्षुओं को दी गई चेतावनी से यह स्पष्ट होता है कि बौद्ध धर्म में अनुशासन में कमी आ रही थी और आपसी मतभेद बढ़ना शुरु हो गया था।

धार्मिक लेखों के अन्तर्गत दानात्मक लेखों का विशेष महत्व है और ये प्राचीन काल में बहुत बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं।

अशोक के पौत्र दशरथ ने बराबर एवं नागार्जुनी गुफाओं को आजीवकों को दान में दिया था जिसकी सूचना वहाँ उत्कीर्ण लेख से होती है।

अशोक का रुम्मिनदेई अभिलेख यादगार के रुप में चढ़ाए गए चढ़ावे का उल्लेख करता है। अशोक अपने राज्यकाल के 20वें वर्ष में यहाँ आया था और इसने बुद्ध की जन्मस्थली की याद में यहाँ कुछ संरचनाएँ बनवाई थीं।

प्रतिमाओं का निर्माण कर धार्मिक स्थलों पर उसकी स्थापना करवाने का स्पष्ट प्रमाण कुषाण काल से मिलना प्रारम्भ हो जाता है। इन प्रतिमाओं पर उत्कीर्ण लेख से इससे संबंधित व्यक्तियों के विषय में जानकारी होती है।

उदाहरण स्वरुप बलभिक्षु द्वारा बोधिसत्व की प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख किया जा सकता है।

शुंग–कुषाण तथा इसके परवर्ती काल में कई व्यापारियों तथा व्यक्तियों के द्वारा धार्मिक स्थलों पर चढ़ावें के प्रमाण मिलते हैं। साँची तथा भरहूत स्तूपों की रेलिंग इन्हीं दानों से बनी है जिसकी सूचना रेलिंग पर उत्कीर्ण लेख से मिलती है।

मंदिरों में भी हमें दान की परिपाटी देखने को मिलती है। उदाहरण स्वरुप बृहदेश्वर मंदिर का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें समय–समय पर कई व्यक्तियों द्वारा समय–समय पर कई व्यक्तियों द्वारा अलग–अलग ढ़ाँचों की संरचना चढ़ावे के रुप में की जाती रही है। इस तरह के लेखों से व्यक्ति विशेष तथा समूह विशेष की धर्म के प्रति आस्था के साथ–साथ समकालीन इमारतों व भवनों का विकास एवं विस्तार भी ज्ञात होता है।

शासकों द्वारा धार्मिक स्थलों के रखरखाव हेतु किए गए प्रयासों की सूचना भी इन दानात्मक धार्मिक लेखों से मिलती है। उदाहरण के लिए भीतरी में स्कन्द गुप्त ने जब विष्णु मंदिर की स्थापना करवाई तो वहाँ उपलब्ध अभिलेख के अनुसार उसने वहाँ का गाँव मंदिर के रखरखाव के लिए दान में दिया। इसी प्रकार, नालन्दा के रखरखाव के लिए देवपाल देव ने कई गाँव दान में दिए। इस प्रकार के कई अन्य उल्लेख गुप्त तथा परवर्ती गुप्त काल के भूमि दानपत्रों से उपलब्ध होता है।

दानपरक धार्मिक सूचनाओं से कभी–कभी समकालीन अर्थव्यवस्था की भी सूचना प्राप्त हो जाती है। उदाहरण के लिए गुप्तकाल और परवर्ती गुप्तकाल में भूमि–दान का विशेष प्रचलन शुरु हुआ जो तत्कालीन सामन्तवाद की ओर संकेत करता है।

देवपाल देव के नालन्दा अभिलेख पर अगर गौर किया जाए तो ज्ञात होता है कि शासकों के द्वारा एक से अधिक धार्मिक–सम्प्रदायों की सहायता करने का प्रयास प्रचलित था क्योंकि इस काल में बौद्ध विहार को दान में देने वाली भूमि के साथ इस बात का उल्लेख किया गया है कि वे भाग जो

पहले ब्राह्मण धर्म को दिए जा चुके हैं, वो इस दान के आदेश से बाहर माने जाएँगे।

प्रशस्तियाँ/राजनीतिक सूचनाएँ

कुछ प्रशस्तियों से हमें संबंधित शासक से पूर्व की वंशावलियों की सूचना प्राप्त होती हैं। गुप्तकाल से यह परम्परा विशेष रुप से प्रसिद्ध हुई। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति और स्कन्दगुप्त के भीतरी स्तंभलेख में गुप्त वंशावली का वर्णन मिलता है। वंशावली के संदर्भ में प्रभावती गुप्ता का पूना ताम्रपत्र अत्यंत रोचक है जिसमें वाकाटक वंशावली के स्थान पर गुप्त वंशावृक्ष का वर्णन किया गया हैं यह निश्चित रुप से वाकाटक साम्राज्य पर गुप्तों का प्रभाव प्रदर्शित करता है। इस प्रकार इन वंशावलियों के आधार पर महँवपूर्ण राजवंश के शासकों का क्रम मिल जाता है तथा कई बार उनसे संबंधित अन्य घटनाओं की सूची भी उपलब्ध हो जाती है।

प्रशस्तियों में शासकों द्वारा प्रयुक्त उपाधियों से उनकी सत्ता और प्रभुत्व का अनुमान होता है। जैसे– गुप्त अभिलेख में घटोत्कच को केवल महाराज कहा गया है तथा इसकी रानी का नाम भी लेख में नहीं है जबकि इसके विपरित समुद्रगुप्त या चन्द्रगुप्त के नाम के साथ महाराजाधिराज की उपाधि तथा उनकी महारानियों का नाम भी उल्लिखत है।

प्रशस्तियों से कभी–कभी संबंधित शासक के शुरुआती दिनों तथा उसकी प्रारंभिक कठिनाईयों के विषय में भी जानकारी प्राप्त हो जाती है। उदाहरणस्वरुप– स्कन्दगुप्त के भीतरी अभिलेख का उल्लेख किया जा सकता है जिससे ज्ञात होत है कि स्कंदगुप्त को राजसत्ता पारिवारिक विवाद के बाद मिली थी। अभिलेख में साहित्यिक ढ़ंग से कहा गया है कि उसने कई रात जमीन पर सोकर बिताई क्योंकि उससे राजलक्ष्मी रुठ गई थी, लेकिन उसके प्रयास के कारण राजलक्ष्मी ने पुनः उसका वरण किया।

इस प्रकार के लेख शासकों की कूटनीतिक प्रतिभा को भी स्पष्ट करती है। लिच्छवी कन्या कुमारदेवी और चन्द्रगुप्त का विवाह निश्चय ही

राजनीति प्रेरित था और यह चन्द्रगुप्त की विलक्षण कूटनीतिक प्रतिमा का चित्र प्रस्तुत करता है।

प्रशस्तियों में कई बार किसी राजा विशेष के सम्पूर्ण जीवन की घटनाओं का उल्लेख मिल जाता है। जैसे– खारवेल के हाथीगुम्फा लेख से उसके शासन, राज्य एवं युद्धों का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत होता है।

प्रशस्तियों के आधार पर शासकों के राज्य की सीमाओं का अनुमान भी लगाया जा सकता है। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि उसका साम्राज्य उत्तर में पांचाल से लेकर दक्षिण में कांची तक विस्तृत था। खजुराहों अभिलेख में यशोवर्मा और धंग के साम्राज्य का वर्णन मिलता है।

इस प्रकार के लेखों से राजाओं की समकालीनता का भी पता चलता है ंसमुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में उसके समकालीन शासकों एवं गणराज्यों आदि की एक लंबी सूची मिलती है। ऐहोल अभिलेख पुलकेशिन द्वितीय और हर्षवर्धन की समकालीनता पर प्रकाश डालता हे।

प्रशस्तियाँ कई बार साहित्यक विवरणों की पुष्टि में भी सहायक होती है। उदाहरण स्वरुप धनदेव के अयोध्या प्रस्तर लेख का उल्लेख किया जा सकता है जो पतंजलि कृत 'महाभाष्य' में उल्लिखित पुष्यमित्र द्वारा किए गए अश्वमेध यज्ञों की पुष्टि करता है।

अशोक के अभिलेखों से राज्य में शासन व्यवस्था से जुड़े लोगों के लिए निर्देश देने की परिपाटी शुरु हुई। शाहबाजगढ़ी के 6वें शिलालेख से यह संकेत मिलता है कि अशोक के शासनकाल में महामात्यों का विशेष महत्व था और कई बार ये कर्मचारी राजा के मौखिक आदेशों को स्वीकार नहीं करते थे तथा उसे लेकर वाद–विवाद करते थे। अतः यह आवश्यक था कि उसके आदेश लिखित रुप में वहाँ उपलब्ध हों जिसका वे अनुसरण कर सकें।

अशोक के तृतीय तथा पंचम शिला प्रज्ञापनों में धर्म–महामात्र, रज्जुक, प्रादेशिक युक्त, ब्रजभूमिक आदि अनेक पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है जो प्रजाहित के लिए राज्य में भ्रमण करते थे। साथ ही शिला प्रज्ञापनों से

ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, तक्षशिला, उज्जयिनी, तोसली तथा सुवर्णगिरि मौर्य –साम्राज्य की प्रान्तीय राजधानियाँ थी।

सहगौरा अभिलेख जिसकी कोई तिथि उपलब्ध नहीं है और जिसे सामान्य तौर पर चन्द्रगुप्त मौर्य कालीन माना जाता है से ज्ञात होता है कि श्रावस्ती के माहमात्यों ने इस अभिलेख की कई प्रतियाँ बनवाई और उसे तियवनी, मथुरा, चंचु, मयदाम, भल्लक इत्यादि क्षेत्रों में उन लोगों के जारी करवाया जो अनाज के कोष्ठों के अधिकारी थे। ये कोष्ठों के अधिकारी निश्चय ही शासन के किराएदार थे और इन्होंने राज्य के लिए अनाज का संग्रह किया था। अतः इन्हें यह निर्देश दिया गया था कि अन्न का वितरण तभी होगा जब अकाल पड़ेगा। इसके अलावा इस लेख से यह भी स्पष्ट होता है कि नंद व मौर्य काल के दौरान श्रावस्ती के महामात्य शासन में विशेष महत्वपूर्ण थे। अभिलेखों से शासन–प्रणाली के संबंध में भी महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त होती है। प्राचीन भारत में दो प्रकार के शासन का स्वरुप था। प्रजातंत्र (गणतंत्र) और राजतंत्र। समुद्रगुप्त की प्रयाग–प्रशस्ति में गणराज्यों की एक लंबी सूची मिलती है।

भौगोलिक सूचनाएँ

स्कन्दगुप्त कालीन जनूागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि तीव्र वर्षा के कारण वहाँ की नदियों में बहुत अधिक जल एकत्र हो गया जिसके फलस्वरुप सुदर्शन झील का बांध टूट गया जिसकी पुनः मरम्मत करवाई गई। जिस तरह की वर्षा और नदियों की पानी में वृद्धि का विवरण इस अभिलेख में मिलता है उससे गुप्तकाल में अच्छी वर्षा का अनुमान लगाया जा सकता है। अभिलेख का यह तथ्य जब गंगा–घाटी के भूगर्भशास्त्रीय प्रमाणों के साथ देखते हैं तो यह महत्वपूर्ण है कि पुरापर्यावरण के वैज्ञानिक तरीके से निर्धारित खाके में भी गुप्तकाल में अच्छी वर्षा के प्रमाण उपलब्ध हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य युगीन सहगौरा अभिलेख की कई प्रतियाँ बनवाई और उसे तियवनी, मथुरा, चंचु, मयुदाम, भल्लक इत्यादि क्षेत्रों के कोष्ठ अधिकारियों को जारी किया। उनहें यह निर्देश दिया गया कि अन्न का

विवरण तभी करें जब अकाल पड़े। इस प्रकार इस लेख से मौर्यकाल में होने वाले अकाल की सूचना प्राप्त होती है जो गुप्तयुगीन जूनागढ़ लेख से प्राप्त अत्यधिक वर्षो के प्रमाणों के ठीक विपरित है।

कुछ अभिलेखों से स्थान विशेष के भौगोलिक परिवेश की सूचना भी प्राप्त होती है। मंदसौर अभिलेख में दशपुर (गुप्तकालीन स्थल) जहाँ कमारगुप्त II और बन्धुवर्मन के समय गुजरात के लाट से आए जुलाहे बस गए थे, की रुपरेखा का वर्णन मिलता है, जिसके अनुसार यहाँ कई झीलें थीं। नगर के पश्चिमी भाग में महल था।

अभिलेखों से हमें कई पर्वतों की भौगोलिक सूचना भी मिलती है उदाहरणस्वरुप अशोक ने वर्तमान बराबर (गया, बिहार) की पहाड़ियों में गुफा खुदवा कर आजीवकों को दान में दिया इस प्रसंग में खलतिक पर्वत (बराबर) का उल्लेख मिलता है। उड़ीसा के शासक खरवेल ने राज्याभिषेक के 8वें वर्ष में गोरथगिरि (संभवतः बराबर पर्वत) पर आक्रमण कर उसे जीत लिया था। इसके आलवे पुलकेशिन द्वितीय के ऐहोल प्रशस्ति में विन्ध्याचल पर्वत का उल्लेख है जिसके समीप ही उसने उत्तर भारतके प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्द्धन को परास्त किया था।

अभिलेखों के आधार पर ऐतिहासिक घटनाओं का तिथि–निर्धारण–

अभिलेखों से हमें काल–निर्धारण के जो संकेत मिलते हैं वे दो प्रकार के हैं–

1. लिपि के आधार पर काल–निर्धारण
2. विषयवस्तु के आधार पर काल निर्धारण

2.3 सारांश

प्राचीन भारतीय इतिहास पर प्रकाश डालने वाले स्रोतों में सर्वाधिक महत्व के एवं प्रामाणिक स्रोत अभिलेख है, क्योंकि अभिलेख समकालीन होते है। जिस राजा अथवा राज्य के विषय में अभिलेख पर लिखा होता है अभिलेख की रचना उसी राजा के शासन काल के समय की गई होती है। अतः उस तथ्य के सत्य होने की सम्भाना अधिक होती है। अभिलेखों से

तत्कालीन राजनीतिक एवं धार्मिक स्थिति पर विशेष रूप से प्रकाश पड़ता है। इसके अतिरिक्त राज्य की सीमाओं का निर्धारण राजाओं के चरित्र एवं व्यक्तित्व के विषय में भी थे। जानकारी उपलब्ध कराते हैं। अभिलेख तत्कालीन कला को भी प्रदर्शित करते है।

अब तक विभिन्न कालों एवं राजाओं के हजारों अभिलेख प्राप्त हो चुके है। जिनमें प्राचीनतम उपलब्ध अभिलेख पांचवी शताब्दी ई0पू0 का पिप्रावा (जिला बस्ती) कलश लेख है। अभिलेख विभिन्न रूपों में प्राप्त हुए हैं। उदाहरणर्थ शिलाओं पर स्तम्भों पर धातुओं पर प्रस्तर पट्टो पर स्तूपों अथवा मन्दिरों की दिवारों आदि पर। अभिलेखों की भाषा, ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरमाईक, प्राकृत, पालि, संस्कृत, देवनागरी, तमिल, मलयालम, कन्नड़ व तेलुगू आदि है।

2.4 शब्दावली

धातु–फलक – धातु का सपाट टुकड़ा

जय–पत्र – न्याय संबंधी अभिलेख

प्रशस्यिाँ – राजाओं की प्रशंसा में लिखे गये अभिलेख

2.5 बोध प्रश्न

प्रश्न –अभिलेखों के महत्व को रेखांकित करें?

2.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे उत्तर के लिए 1.2

2.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–02 स्मारकों की विवेचना

इकाई की रुपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 स्मारक

2.3 सांराश

2.4 शब्दावली

2.5 बोधप्रश्न

2.6 बोधप्रश्नो के उत्तर

2.7 सहायक ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इतिहास निर्माण में स्मारकों का अत्यधिक महत्व है। साथ ही धार्मिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से भी स्मारकों का महत्व है। स्मारकों के अन्तर्गत सभी प्रकार के भवन, मूर्तियाँ, इमारतें, कलात्मक वस्तुएँ, मंदिर, विहार, स्तूप आदि रखे जा सकते हैं, जो भी वस्तु स्थान, कला, इतिहास का स्मरण दिलाती हो, स्मारक के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं।

2.1 प्रस्तावना

स्मारक किसी भी देश के इतिहास का जीवंत प्रारूप वर्तमान में होती है। अध्ययन की सुविधा के लिए स्मारकों के दो भागों (1) देशी स्मारक व (2) विदेशी स्मारक में बाँटा जा सकता है। इन स्मारकों से इतिहास की प्रमाणिक जानकारी प्राप्त होती है। सिन्धु सभ्यता से लेकर 100 वर्ष पूर्व तक के सभी वास्तु, कला को स्मारकों के अंतर्गत रख के समझा जा सकता है।

2.2 स्मारक

स्मारक–प्राचीन भारतीय स्मारक भी प्राचीन भारतीय साहित्य की भाँति भारतीयों के उच्च आध्यात्मिक एवं लौकिक चिन्तन के परिचायक हैं। उन्होंने जहाँ साहित्य में अपनी लेखनी एवं भाषा के माध्यम से अपने अनुभव, चिन्तन एवं भावनाओं को साकार बनाया है, वहीं छेनी, कन्नी एवं तूलिका जैसे निर्जीव साधनों की सहायता से प्रस्तुत प्राचीन भारतीय स्मारक भी मनीषी भारतीय वास्तुकारों, शिल्पकारों एवं चित्रकारों के गहन चिन्तन जन्य हृदय के उद्‌गारों को मूकभाषा में प्रस्तुत करते हैं। दोनों ही क्षेत्रों में भारतीयों की आध्यात्मिक एवं बौद्धिक चेतना पराकाष्ठा पर पहुँची है, परन्तु जहाँ साहित्य निराकार होते हुए मुखर है, वहीं स्मारक साकार होते हुए मौन हैं। भारतीय स्मारकों में प्रासाद कम, परन्त ु मन्दिर, विहार, आराम, स्तूप, गुहायें, स्तम्भ, मूर्तियाँ, तोरण, चित्र इत्यादि प्राचीन भारतीय संस्कृति के विकास की अविकल परम्परा प्रस्तुत करते हैं।

हड़प्पा एव ंमोहनजोदड़ों से प्राप्त अवशेष आर्यों के पूर्व उच्चभारतीय सभ्यता का स्वरुप स्थापित करते है। यत्र–तत्र प्राप्त मिट्टी के बर्तन, पत्थर, धातु एवं मिट्टी की लघुमूर्तियाँ, आभूषणें के टुकड़े, प्रसाधन की सामग्री आदि निरन्तर प्रगतिशील भारतीय सभ्यता की अविच्छिन्न कड़ियाँ हैं। ऐतिहासिक काल में प्राचीन भारतीय स्मारकों की अटूट श्रृंखला अशोक के समय के प्रारंम्भ होती है जब कला के क्षेत्र में पाषाणका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। कुछ प्राचीन कला–कृतियाँ अपने युग के धार्मिक विचारों की प्रतीक हैं, जैसे सिन्धु–घाटी की खोदाई से प्राप्त शिव की मूर्तियाँ, तत्कालीन समाज में प्रचलित शिव–पूजा की तथा गुप्तकाल की वैष्णव, शिव, बौद्ध एवं जैनमूर्तियाँ तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता की द्योतक हैं। विभिन्न कालों की मूर्तियों एवं चित्रों के अध्ययन से काल एवं स्थान–विशेष की वेश–भूषा, धार्मिक प्रथाओं एवं सामाजिक रीति–रिवाजों की जानकारी होती है। विभिन्न शैलियों एवं स्वरुपों में प्रस्तुत कला–कृतियाँ सांस्कृतिक उत्थान एवं पतन की कहानी

कहती हैं। इनके अध्ययन से ऐतिहासिक काल–क्रम को समझने में भी सहायता मिलतीहै।

अशोककालीन स्मारकों में उसके प्रस्तर–स्तम्भ, उन पर की गई पालिश तथा उनके शीर्ष उत्कृष्ट कला के उदाहरण हैं। साथ ही उसके स्तुप भी अपनी विशालता में महान् हैं। कुषाण–काल की गांधार शैली की मूर्तियाँ यूनानी एवं भारतीय कला का सुन्दर मिश्रण प्रस्तुत करती हैं। यही कला क्रमशः अपने बाह्य परिधान का परित्याग करते हुए मथुरा से होते हुए गुप्तकाल में सारनाथ में पहुँचकर न केवल शुद्ध भारतीय हो गई हैं, वरन् भारतीय मूर्तिकला का सुन्दरतम उदाहरण भी प्रस्तुत करती है। देवगढ़ (झाँसी) तथा भीतरगाँव (कानपुर) के मंदिर गुप्तकालीन वास्तुकला को उजागर करतेहैं। एलोराका कैलाश मंदिर अपनेढंग का विश्व में बेजोड़ हैं। खजुराहो एवं उड़ीसा के मंदिर भारतीय स्थापत्य–कला का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। तंजौर का राजराजेश्वर मंदिर द्रविड़ शैली का उत्कृष्टतम स्वरुप उपस्थित करता है और कला को भी कलात्मक रुप से सजाये हुए खड़ा है। कला के क्षेत्र में अद्वितीय है। अजन्ता एवं देश के अन्य अनेक भागों में निर्मित गुहा–मंदिर अपने निर्माताओं की अमर कीर्ति का गुणगान करते हैं। दक्षिण–पूर्व एशिया में बने बौद्ध प्रतिमायें भारतीय वास्तुकारों एवं पार्वती, गणेश, नन्दी आदि के मूर्तियाँ तथा बौद्ध प्रतिमायें भारतीय वास्तुकारों एवं शिल्पकारों की देन हैं जो उन दूरस्थ क्षेत्रो में प्राचीन भारतीय संस्कृति के विस्तार की द्योतक हैं।

2.3 सारांश

प्राचीन नगरों के उत्खनन से प्राप्त अनेक प्रकार की कलात्मक वस्तुओं से सिन्धु–सभ्यता पर, तक्षशिला से प्राप्त उत्खनन सामग्री से भारतीय संस्कृति पर कुषाण वंश के राजाओं तथा गांधारकालीन काल पर यथोचित प्रकाश पड़ता है। स्तूप, चैत्य, विहार, स्तंम्भ आदि से मौर्यकालीन इतिहास तथा झांसी का देवगढ़ मंदिर व ईंटो से निर्मित भितरगांव (कानपुर) का मंदिर गुप्तकालीन इतिहास पर अच्छा प्रकाश डालता है।

2.4 शब्दावली

स्तूप –बौद्ध स्मारक, जोबौद्ध सामाधियाँ सेसम्बन्धितहोतीहै।

चैत्य –बौद्ध पूजा, स्थल

विहार –बौद्ध भिक्षु–भिक्षुओं के निवास एवं शैक्षणिकस्थल

स्तम्भ–लौह, पाषाणनिर्मित खंम्भे जिन पर लेख एवं काल कृतियाँ उकेरे जाते थे।

2.5 बोधप्रश्न

प्रश्न (1) स्मारकों की विशद् विवेचना करें?

(2) इनमें कौन स्मारक है?

(I) मूर्तियाँ (Ii) स्तंभ (III) चैत्य, विहार, गुफा (I)(II)(III) सभी

2.6 बोधप्रश्नो के उत्तर

उत्तर (I) उत्तर के लिए 1.2 देखे

उत्तर (II) (IV) सभी

2.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक, ई. श्रीधरन, ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन, नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय, किताब महल एजेन्सीज, इलाहाबाद, 2005

इकाई–03 विदेशियों यात्रियों के वृतांत

इकाई की रुपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 विदेशियों यात्रियों के वृतांत

3.3 सारांश

3.4 शब्दावली

3.5 बोध प्रश्न

3.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

3.7 सहायक ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

भारत विषयक ज्ञान के लिए विदेशी यात्रियों के वृतांत एवं वर्णन अत्यंत महत्वपूर्ण है, इसकी महत्ता को देखते हुए, इसे इतिहास के साक्ष्य के रूप में रखा गया है। जिन विषयों में भारतीय साक्ष्य मौन है, उनके विषय में विशेष रूप से इन विदेशी विद्वानों के वृतांतों से जानकारी मिलती है। अतः इसका अध्ययन आवश्यक है।

3.1 प्रस्तावना

समय–समय पर अनेक विदेशी विद्वानों ने भारत की यात्रा की व अपने संस्मरण लिखे। यद्यपि विदेशी यात्रियों में से अनेक के संस्मरण नहीं है तथा किंवदन्तियों से प्रभावित होने के कारण कहीं–कहीं पूर्णतया प्रामाणिक नहीं है किन्तु फिर भी इन वृतांतों से भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश डाला है।

3.2 विदेशियों यात्रियों के वृतांत

(क) यूननी लेखक– भारत की भाँति यूनान भी प्राचीन सभ्यता का एक प्रमुख केन्द्र था और दोनों देशों के निवासी एक–दूसरे के विषय में जानकारी प्राप्त करने की जिज्ञासा रखते थे। चूँकि यूनानियों में तथ्याधारित मानव क्रिया–कलापों के वर्णन करने की कला अपेक्षाकृत अधिक विकसित थी, फलतः भारत के सम्बन्ध में ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त करने का उनका प्रयास छठीं शताब्दी ई0पू0 से निरन्तर बना रहा। यूनानी विद्वानों एवं इतिहासकारों ने अपने व्यक्तिगत ज्ञान, अनुभव एवं अध्ययन के आधार पर भारत के विषय में बहुत–कुछ लिखा है जिनमें अधिकांश बातें निराधार एवं मनगढ़न्त हैं। अतः इनका प्रयोग आलोचनात्मक दृष्टि से समझ–बूझ कर ही करना होता है। काल–क्रम के अनुसार समस्त यूनानी लेखकों को तीन वर्गों में बाँटा गया हैः–

(क) **सिकन्दर के पूर्ववर्ती लेखक**, (ख) **सिकन्दर के समकालीन लेखक एवं** (ग) **सिकन्दर के परवर्ती लेखक।**

(क) **पूर्ववर्ती लेखक**– सिकन्दर के पूर्ववर्ती लेखकों में सर्वप्रथम नाम स्काइलैक्स का आता है। यह एक यूनानी सैनिक था जिसे ईरान के सम्राट दारयवौष ने सिन्धु–प्रदेश की जानकारी प्राप्त करने के लिये भेजा था। फलतः उसकी जानकारी उस क्षेत्र तक ही सीमित है। दूसरा यूनानी लेखक हिकेटियस मिलेटस था। इसने स्काइलैक्स के विवरण एवं ईरानियों से प्राप्त सूचनाओं के आधार पर अपने ग्रन्थ 'भूगोल' की रचना की, जो मात्र सिन्धु प्रदेश से सम्बन्धित है। इन दोनों ही के विवरण भारतीय इतिहास की दृष्टि से नगण्य है। ई0 पू0 पाँचवी शताब्दी के मध्य में हिरोडोटस ने, जिसे 'इतिहास का पितामह' कहा जाता है, 'हिस्टोरिका' नामक अपने ग्रन्थ की रचना की जिसमें उसने पश्चिमोत्तर भारत की जातियों का उल्लेख किया है। परन्तु सुना–सुनाया होने के कारण यह विवरण भी अपूर्ण एवं अप्रामाणिक ही

है। टेसियस ने जो ईरानी दरबार में राजवैद्य था, भारतीयों एवं ईरानियों से तथ्य संग्रह कर अपने ग्रन्थ 'इण्डिका' की रचना की थी जो अब अलभ्य है, और परवर्ती लेखों में उसके उद्धरण ही प्राप्त होते है। इसका विवरण भी अतिरंजित एवं अविश्वसनीय ही है, क्योंकि उसके ग्रन्थ में भारत के सम्बन्ध में अनेक किस्से–कहानियाँ ही हैं।

(ख) **समकालीन लेखक**– सिकन्दर अपनी ऐतिहासिक दिग्विजय–यात्रा में अपने साथ सैनिकों के अतिरिक्त लेखकों एवं विद्वानों को भी लेकर आया था, जिन्होंने उसकी दिग्विजय–यात्रा एवं युद्धों का विस्तृत विवरण लिपि–बद्ध किया था। सिकन्दर की भारतीय विजय एवं युद्ध की कठिनाइयों का विवरण किसी भी भारतीय गन्थ में नही मिलता है, अतः यदि इन यूनानी विद्वानों ने भी उनका उल्लेख न किया होता तो एक बहुत बड़ी एवं महत्वपूर्ण जानकारी से विश्व वंचित रह गया होता। दुर्भाग्यवश इन लेखकों के ग्रन्थ नष्ट हो गये, परन्तु परवर्ती लेखकों ने इनके ग्रन्थों के उद्धरण अपनी पुस्तकों में सुरक्षित रख छोड़ा है जो हमारे बड़े काम के हैं। इन समकालीन लेखकों में निआर्कस, ओनेसाइक्रिटस तथा एरिस्टोब्यूलस के नाम उल्लेखनीय है। निआर्कस सिकन्दर के जहाजी बेड़े का सेनापति था। इसके लेखों के अवशेष स्ट्रैबो एवं एरियन के ग्रन्थों में सुरक्षित हैं। ओनेसाइक्रिटस भी जहाजी बेड़े से ही सम्बन्धित था। इसने सिकन्दर की जीवनी लिखी है। इसके विवरण भी महत्वपूर्ण है यद्यपि उनमें किम्वदन्तियों का ही बाहुल्य है। एरिस्टोब्यूलस ने 'युद्ध का इतिहास' लिखा है। एरियन एवं प्लूटार्क के विवरण इस ग्रन्थ से पर्याप्त प्रभावित हैं।

(ग) **परवर्ती लेखक**–उपर्युक्त लेखकों ने भारत एवं सिकन्दर की भारतीय दिग्विजय के सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री संगृहीत कर दी थी, अतः परवर्ती लेखकों को इन विषयों पर लिखने के लिये प्रचुर साधन उपलब्ध रहे। साथ ही उन्होंने अपने अध्ययन एवं अनुभव का भी आश्रय लिया, फलतः भारत के सम्बन्ध में इन विद्वानों के लेख अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं। इन परवर्ती लेखकों में मेगास्थनीज का स्थान सर्वोपरि है। यह यूनानी सम्राट्

सेल्युकस का राजदूत था जो कई वर्षों तक चन्द्रगुप्त मौर्य के राज–दरबार में रहा। यह भारतीय घटनाओं एवं तथ्यों का प्रत्यक्षदर्शी था जिनका उल्लेख इसने अपने ग्रन्थ 'इण्डिका' में किया था। दुर्भाग्यवश यह ग्रन्थ भी कालान्तर में विलुप्त हो गया, परन्तु परवर्ती लेखकों ने इस ग्रन्थ के अनेक अंश उद्धरण के रुप में अपने–अपने ग्रन्थों में सुरक्षित रख छोड़े हैं, जिनका संग्रह सर्वप्रथम डॉ0 स्वानवेक ने प्रकाशित किया और मैक क्रिंडल ने बाद में उसका अंग्रेजी अनुवाद किया। चन्द्रगुप्त मौर्य के सम्बन्ध में इसकी उपयोगिता सर्वमान्य है।

चन्द्रगुप्त मौर्य के पुत्र एवं उत्तराधिकारी बिन्दुसार के दरबार में दो यूनानी राजदूत आये जिनमें डीमेकस सीरिया के यूनानी सम्राट् का प्रतिनिधि एवं डायोनीसियस मिस्र के यूनानी सम्राट् टालमी का राजदूत था। डीमेकस एवं डायोनीसियस के विवरण भी नष्ट हो चुके हैं। और जो उद्धरण के रुप में उपलब्ध भी हैं वे बहुत महत्व के नहीं हैं। स्ट्रैबो ने तो मेगास्थनीज एवं डीमेकस को झूठा एवं अविश्वसनीय ठहराया है। इसमें सन्देह नहीं कि इनके विवरण जगह–जगह अशुद्ध, अतिंरजित एवं अज्ञानपूर्ण हैं। सम्भव है कि भिन्न दृष्टिकोण के कारण भारतीय विशेषतायें उनकी समझ में न आई हों या उनहें असत्य सूचनायें प्राप्त हुई हों। पेट्रोक्लीज ने, जो सेल्यूकस एवं ऐण्टियोकस प्रथम के अधीन साम्राज्य के पूर्वी प्रान्त का शासक था, भारत एवं अन्य देशों के सम्बन्ध में जो विवरण प्रस्तुत किया है उसे स्ट्रैबों ने अपेक्षाकृत सत्य माना है।

ईसा की प्रथम शताब्दी एवं उसके बाद के लेखकों में स्ट्रैबों का स्थान बहुत ऊँचा है। यह एक आलोचनात्मक इतिहासकार था जिसने समस्त पूर्ववर्त ग्रन्थों के अध्ययन एवं देश–विदेश की अपनी यात्रा के अनुभव के आधार पर अपने ग्रन्थ 'भूगोल' की रचना की, जिसमें भौगोलिक बातों के अतिरिक्त विभिन्न देशों की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के भी विवरण प्रस्तुत हैं। अतः भारत सम्बन्धी वर्णन की उपयोगिता असंदिग्ध है। प्लिनी के बृहत् ग्रन्थ 'प्राकृतिक इतिहास' के छठें अध्याय में भारतवर्ष का वर्णन है जो मेगास्थनीज की 'इण्डिका' पर आधारित है। 'पेरिप्लस ऑफ दि

एरिथ्रियन सी' के यूनानी लेखक ने भारतीय समुद्रतट की यात्रा करते हुए उसके व्यापार एवं बन्दरगाहों का विवरण प्रस्तुत किया है। ईसा की दूसरी शताब्दी के रोमन लेखक टालेमी ने 'भूगोल' पर एक ग्रन्थ लिखा जो त्रुटिपूर्ण होते हुए भी बड़ा उपयोगी है। इसका भारत विषयक मानचित्र बड़ा अशुद्ध है।

ईसा की दूसरी शताब्दी में एरियन ने सिकन्दर के समकालीन लेखकों एवं मेगस्थनीज के वर्णनों के आधार पर 'इण्डिका' एवं 'सिकन्दर का आक्रमण' नामक दो पुस्तकों की रचना की। इसका दृष्टिकोण भी स्ट्रैबो की भाँति पर्याप्त आलोचनात्मक है। इसी काल में एरियन ने भी पूर्ववर्ती ग्रन्थों के आधार पर अपना ऐतिहासिक संग्रह तैयार किया जिससे भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में अनेक आवश्यक बातों की जानकारी प्राप्त होती है।

उपुर्यक्त सभी लेखकों द्वारा प्रस्तुत सामग्री का आलोचनात्मक अध्ययन भारतीय इतिहास के प्रणयन में बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

चीनी लेखक–यूनानी लेखकों की भाँति चीनी लेखकों के भारत–विषयक विवरण भारतीय इतिहास की अमूल्य निधि है। चीन ने भारतीय बौद्ध धर्म को स्वीकार किया था, अतः उनमें अपने धर्म के प्रवर्तक एवं उनसे सम्बन्धित स्थानों तथा धर्म के विषय में जानकारी प्राप्त करने की उत्कण्ठा स्वाभाविक थी। फलतः समय–समय धर्म के जिज्ञासु विद्वान मार्ग की दूरी एवं कठिनाईयों की अवहेलना कर अपने धर्म के मूल देश की यात्रा पर निकल पड़ते रहे। यद्यपि उनकी यात्रा का मूल उद्देश्य बौद्ध धर्म सम्बन्धी ज्ञानार्जन एवं बौद्ध तीर्थ–स्थानों का दर्शन ही रहा, परन्तु अपने दीर्घ भ्रमण–काल में वे अपनी आँखें एवं ज्ञान–कपाट खुला रखते रहे जिसके फलस्वरुप उनके यात्रा– विवरण में तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक बातों का उल्लेख होना विषयान्तर नहीं माना जा सकता। इसके अतिरिक्त अनेक दूसरे चीनी विद्वानों ने अपने देश मे ंरहते हुए भी अपने उपास्यदेव की सभ्यता, संस्कृति एवं धर्म के विषय में अनेक बहुमूल्य उल्लेख किये है। बहुत–से बौद्ध ग्रन्थ, जो अपने मूल भारतीय रुप में विलुप्त हो गये

हैं, आज भी चीनी अनुवाद में उपलब्ध हैं, जो धर्म सम्बन्धी मामलों में उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करते हैं। महत्त्वपूर्ण चीनी लेखकों के विवरण निम्नांकित हैं–

फाह्यान– फाह्यान भगवान बुद्ध एवं बौद्ध धर्म के विषय में अपनी ज्ञान–वृद्धि हेतु 399 ई0 में चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन–काल में भारत आया था और इसने अपने 15–16 वर्षों के निवास–काल में विभिन्न बौद्ध धर्म–ग्रन्थों का अध्ययन एवं अनुशीलन किया। इसने अपने यात्रा–विवरण में देश की धार्मिक अवस्था पर और विशेषतः बौद्ध धर्म पर प्रचुर प्रकाश डाला है। यद्यपि प्रसंगवश इसने तत्कालीन अन्य बातों का यत्र–तत्र अवश्य उल्लेख किया है, परन्तु ऐसे विवरण अति न्यून है। यह भी आश्चर्य की ही बात है कि जिस गुप्त–सम्राट् की छत्र–छाया में यह इतने दीर्घकाल तक निर्विघ्न घूमता रहा उसका इसने नामोल्लेख तक नहीं किया है। परन्तु फिर भी उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति, समाज, धर्म एवं समृद्धि का जो भी उल्लेख किया है वह प्रत्यक्षदर्शी वर्णन होने के कारण बहुत उपयोगी एवं सप्रमाण है।

ह्वेनसांग–'यात्रियों में राजकुमार' समझा जाने वाला चीनी यात्री ह्वेनसांग 629ई0 में सम्राट् हर्षवर्द्धन के शासन–काल में भारत आया और लगभग 15 वर्षो के प्रवास के उपरान्त स्वदेश लौटा था। इसने समस्त उत्तरी भारत तथा दक्षिण में महाराष्ट्र एवं आन्ध्र प्रदेश से लेकर काँची तक की यात्रा की, विभिन्न बौद्ध विहारों और विशेषकर नालन्दा विहार में अनेक वर्षों तक बौद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया एवं स्थानीय लोगों की सहायता से अनेक ग्रन्थों की प्रतिलिपियाँ तैयार कराई। देश के अनेक राजाओं का आतिथ्य स्वीकार किया तथा बड़े–बड़े विद्वानों का साहचर्य–लाभ उठाया। हर्ष ने इसे राजकीय सम्मान प्रदान किया, कन्नौज के बौद्ध धर्म– सम्मेलन में इसने महायान सम्प्रदाय की श्रेष्ठता स्थापित की और प्रयाग के दानोत्सव में भाग लेने के पश्चात् सम्राट् हर्ष से ससम्मान विदा लेकर बहुसंख्यक प्रस्तुकों के साथ यह स्वदेश वापस लौटा। यद्यपि फाह्यान की ही भाँति इसका मुख्य उद्देश्य भी अपनी धर्म–पिपासा को शान्त करना था, परन्तु उसने अपने यात्रा–विवरण में देश की राजनीतिक, समाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक

अवस्थाओं का भी विशद चित्रण उपस्थित किया है, जो देश के इतिहास के साधन के रुप में बहुत महत्वपूर्ण एवं उपयोगी है।

हूली–यह हेनसांग का मित्र था जिसने उसकी जीवनी लिखी है। हेनसांग से प्राप्त भारत विषयक जानकारी पर आधारित यह ग्रन्थ उतना ही महत्वपूर्ण है जितना हेनसांग का यात्रा–विवरण।

इंत्सिंग–यह चीनी यात्री 673 ई0 में भारत आया था और 695 ई0 तक भ्रमणशील रहा। इसके ग्रन्थ में भी समकालीन इतिहास के लिए प्रचुर सामग्री है परन्तु उसका विवरण हेनसांग की भाँति सांगोपांग एवं विशद नहीं हैं।

चीनी ऐतिहासिक पुस्तकों में वहाँ की कुछ भ्रमणशील जातियों का, जो कालान्तर में भारत आईं, विवरण मिलता है, जो भारतीय इतिहास की पृष्ठभूमि तैयार करने में सहायक है। चीन के 'डाटेड रेकार्ड्स' की परम्परा अनेक भारतीय तिथियों के निर्धारण में सहायक हुई है।

तिब्बती लेख– तिब्बती ग्रन्थों में भारत–सम्बन्धी अनेक उल्लेख हमारे बड़े काम के हैं। बारहवीं शताब्दी के लामा तारानाथ के ग्रन्थों में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त भारतीय नरेशों की वंशावलियों एवं उपलब्धियों का भी विवरण दिया गया है। बौद्ध होने के कारण उसके लेख प्रायः पक्षपातपूर्ण हो गये हैं, अतः उनका उपयोग करते समय सतर्क रहना पड़ता है।

अरब लेखक–अरब देशों के साथ भारत का व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध अति प्राचीन है। अरब सौदागर अपने व्यापारिक कामों के निमित्त निरन्तर भारत आते–जाते रहते थे। इन्हीं में एक सौदागार सुलेमान भी था जिसने अनेक बार की यात्रा की थी। इसके ग्रन्थ 'सलसिलातुत्त्वारीख' (851ई0) में भारत सम्बन्धी अनेक महत्वपूर्ण उल्लेख मिलते हैं। इस ग्रन्थ के दूसरे भाग को अबू जईद ने पूरा किया। इनका विवरण सुनी–सुनाई बातों पर आश्रित है। इब्न खुरदाद्ब ने 900 ई0 के आस–पास अपने ग्रन्थ 'किताबुलमसालिक वल् ममालिक' (राजमार्गों एवं राज्यों की पुस्तक) की रचना की थी। इस ग्रन्थ में अनेक भारतीय स्थानों एवं नगरों का उल्लेख है। अरब

लेखकों में अल् मसूदी का उँचा स्थान है। यह बहुश्रुत था तथा इसने अनेक देशों की यात्रा की थी और तथ्य–निरुपण में इसका दृष्टिकोण आलोचनात्मक रहता था। इसने दसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध में अपने ग्रन्थ 'मुरुजुल् जहव' (स्वर्ण की रम्य क्षेत्र) की रचना की थी जिसमें उसने तत्कालीन भारतीय राजनीति, समाज और धर्म की चर्चा की है। वह अपने ग्रन्थ का भारत सम्बन्धी अध्याय इस कथन के साथ प्रारम्भ करता है कि यह जन–मान्य धारणा है कि भारत पृथ्वी का वह भाग है जहाँ अति प्राचीन काल में शान्ति एवं ज्ञान की प्रधानता थी वहाँ पूर्वकाल में राजतन्त्र की स्थापना हुई। इस देश में ब्राह्मण अपनी कुलीनता एवं सदाचार के कारण पूज्य माने जाते हैं। अबू इसहाक अल् इस्तखरी ने अनेक देशों की यात्रा की थी। इसने दसवीं शताब्दी के मध्य में अपने ग्रन्थ 'किताबुल् अकालीम' (जलवायु की पुस्तक) की रचना की। इसने इस पुस्तक में सिन्ध एवं उसके समीपवर्ती क्षेत्र का एक मानचित्र भी दिया है तथा सिन्धु एवं भारत के प्रसिद्ध नगरों का नामोल्लेख भी किया है। इस गन्थ में राष्ट्रकूटों एवं प्रतीहारों के विषय में महत्वपूर्ण जानकारी संगृहीत है। इब्न हौकल ने अपने ग्रन्थ 'इश्कालुल बिलाद' या 'किताबुल' मसालिक वल् ममालिक' (राजमार्गों एवं राज्यों की पुस्तक की रचना 976 ई0 में की थी। इस ग्रन्थ में अनेक देशों के साथ सिन्ध एवं हिन्द का भी उल्लेख किया गया है और सिन्ध का एक मानचित्र भी दिया है। सिन्ध एवं हिन्द का भौगोलिक एवं राजनीतिक विवरण महत्वपूर्ण है। अल् इदरीसी का ग्रन्थ 'नुजतुल् मुश्ताक' भूगोल से सम्बन्ध रखता है। इसकी रचना सिसली में बारहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में हुई थी। इसमें अन्य देशों के अतिरिक्त सिन्ध एवं हिन्द के भौगोलिक विवरण तथा भारत की राजनीतिक एवं सामाजिक अवस्था आदि का अच्छा उल्लेख हुआ है। रशीदुद्दीन ने अबू रेहान अल् बेरुनी की भारत विषयक प्रसिद्ध पुस्तक को अपने ग्रन्थ 'जामिउत् तवारीख' की रचना का आधार बनाया है।

अबू रेहान अल् बेरुनी–यह ख्वारिजम (खीवा) का निवासी था जिसे गजनी के सुल्तान महमूद ने 1017 ई0 में वहाँ के शासक के साथ बन्दी

बनाया था और बन्धक के रुप में भारत भेज दिया था। यह प्रारंम्भ से ही कला एवं विज्ञान का प्रेमी था और ज्योतिष में इसकी विशेष रुचि थी। भारत आने पर उसने भारतीय ग्रन्थों के अध्ययन के लिए न केवल संस्कृत सीखी, वरन् भारतीय पण्डितों से सम्पर्क स्थापित कर भारतीय धर्म, दर्शन, योग, ज्योतिष, साहित्य, पुराण, शास्त्र, वर्ण–व्यवस्था, व्रत, पर्व, सम्वत्सार, कल्प, चतुर्युग, नारायण, कृष्ण, महाभारत–युद्ध, ग्रह, नक्षत्र, सौरमण्डल, तीर्थ–यात्रा, दान, ग्राह्य एवं अग्राह्य भोजन, विवाह, विधि–व्यवहार आदि विषयों का विधिवत् ज्ञानार्जन किया। उसने अपनी पुस्तक में हिन्दुओं द्वारा प्रस्तुत भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का चित्र उपस्थित किया है और पूर्ण समीक्षा के उपरान्त ही तथ्यों को ग्राह्य या अग्राह्य माना है। ऐसा करने में उसने कभी आग्रह या दुराग्रह की शरण नहीं ली है। फलतः ग्यारहवीं शताब्दी में भारत की सांस्कृतिक एवं सामाजिक स्थिति के परिचय के लिए अल् बेरुनी का ग्रन्थ अत्यन्त आवश्यक है। वस्तुतः भारत के सम्बन्ध में इतना विशद विवरण न तो अल् बेरुनी के पूर्व और न तो बाद में ही किसी भी विदेशी लेखक ने लिपिबद्ध किया है।

3.3 सारांश

भारत में विभिन्न कालखंडों में विदेश से कई विद्वान आते रहे, उनकी जीवनी संस्समरण विवरण याथावृतांत तत्कालीन समय के ज्ञान के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण ऐतिहासिक साक्ष्य हो जाती है। इन विदेशियों में यूनानी, चीनी, तिब्बती, अरबी, फारसी, एवं मध्य एशिया के विभिन्न विद्वनों को रखा जा सकता है। भारतीय इतिहास के तिथि क्रम को निर्धाति करने में विधि के वृतांतों का विशेष महत्व है।

3.4 शब्दावली

वृतांत – जीवनी, आँखों देखा सत्य

संस्मरण –देखे गये यथार्थ को स्मरण कर लिखना या दोहराना

3.5 बोध प्रश्न

प्रश्न–अरब यात्रियों के विवरणों का वर्णन करें?

3.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे 1.2

3.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–04– क्षेत्रीय साहित्यों एवं लोक साहित्यों का ऐतिहासिक महत्व (मौखिक पंरपरा)

इकाई की रुपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 मौखिक पंरपरा

4.3 सारांश

4.4 शब्दावली

4.5 बोध प्रश्न

4.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

4.7 सहायक ग्रन्थ

4.0 उद्देश्य

प्राचीन काल में जब लेखन कला विकसित नहीं हो पाई थी, उस समय पठन–पाठन श्रुति परंपरा के आधार पर चलती थी, गुरू शिष्य को सूत्र रूप में सम्पूर्ण ज्ञान कंठस्थ करा देता था। समय के साथ लेखन कला एवं लिपि का विकास होता गया, किन्तु अधिकांश जन–जीवन इससे दूर ही रहा। अतः इस दशा में प्राचीन ज्ञान–विज्ञान की अमूल्य स्रोत श्रुति परंपरा अथवा मौखिक परंपरा में हौ जो विरासत के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरि होती रहती है।

4.1 प्रस्तावना

मौखिक इतिहास को समने के लिए भारतीय इतिहास परंपरा को समझना आवश्यक है। भारत धर्मप्रधान श्रुति पंरपरा का देश है शताब्दियों तक मंत्रद्रष्टा ऋषि–मुनियों की वाणी मौखिक रुप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी

तक प्रवाहमान रही। साथ ही साथ भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी रही। वैदिक ग्रन्थ अथर्ववेद में पुराण और इतिहास का साथ–साथ उल्लेख इंगित करता है कि श्रुति अथवा मौखिक पंरपरा के रुप में कहीं न कहीं इतिहास अवश्य विद्यमान था। वैदिक वाग्मय में गाथा–नाराशंसी आख्यान, आख्यिका प्रभृति पद प्राचीन मौखिक इतिहास के ही विभिन्न रुप में प्रकट होते है। इस मौखिक इतिहास का पुराणों की भांति महत्व दृष्टिगत होता है।

4.2 मौखिक पंरपरा

भारत धर्मप्रधान श्रुति पंरपरा का देश है शताब्दियों तक मंत्रद्रष्टा ऋषि–मुनियों की वाणी मौखिक रुप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक प्रवाहमान रही। साथ ही साथ भारतीय इतिहास एवं संस्कृति की आधारशिला बनी रही। वैदिक ग्रन्थ अथर्ववेद में पुराण और इतिहास का साथ–साथ उल्लेख इंगित करता है कि श्रुति अथवा मौखिक पंरपरा के रुप में कहीं न कहीं इतिहास अवश्य विद्यमान था। वैदिक वाग्मय में गाथा–नाराशंसी आख्यान, आख्यिका प्रभृति पद प्राचीन मौखिक इतिहास के ही विभिन्न रुप में प्रकट होते है। इस मौखिक इतिहास का पुराणों की भांति महत्व दृष्टिगत होता है।

वेदकालीन मौखिक इतिहास की पंरपरा भृगु, आंगिरस, सूत्र के रुप में शताब्दियों तक अस्तित्व में रही और तो और उत्तरवैदिक काल में पुराणोंतिहास की मौखिक पंरपरा दृढ़ आधार प्राप्त की। तैत्तरीय आरण्यक से ज्ञात होता है कि अनेक मौखिक रुप से पुराण और इतिहास की पंरपराएँ इस काल तक प्रचलित हो गयी थी। वेदकालीन अनेक मिथकीय कथाएँ लोकप्रचलित कथा–कहानियों से ही ग्रहण की गयी प्रतीत होती है। कालान्तर में आख्यायिका, वंश, वंशानुचरित के रुप में यही क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य के अनेक विषय पुराणों में समाहित हुए। बौद्ध जगत में जातक कथाएँ इसी मौखिक पंरपरा का निदर्शन कराती है। स्पेन्सर हार्डी के अनुसार रामायण एवं महाभारत की भाँति जातक कथाओं का भी प्रचलन होता रहता था। लोग

बड़ी श्रद्धा एवं उत्सुकता से इसका श्रवण करते थे। छत्तीसगढ़ की पाण्डवान गायिका तीजनबाई की रामकथा का प्रदर्शन उसी प्राचीन मौखिक पंरपरा की निरंतरता का बोध करता हैं। इसी प्रकार ग्वालियर क्षेत्र में प्रचलित लाँगुरिया लोकगीत ग्वालियर क्षेत्र के समसामयिकी इतिहास के धार्मिक–आर्थिक पक्ष पर पड़ने वाले प्रकाश के आलेक में समसामयिक इतिहास –लेखन को स्पष्टतः प्रभावित करता है।

आज क्षेत्रीय तथा लोक साहित्यों के माध्यम से वस्तुनिष्ठ इतिहास लेखन हेतु जनमानस को समझने की चेष्टा की जा रही है। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दलित एवं सर्वहारा वर्ग के योगदान कों आंकने की प्रवृत्ति बढ़ी है। प्राचीन इतिहास के साथ –साथ विशेष कर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में उपाश्रयी वर्ग के महत्व को उजागर करने का प्रयास चल रहा है। बाल्मिकी, महाभारत मे ंवर्णित अनेक जनजातियों तथा नारियों, अनेक छोट–छोटे क्षेत्रीय शासकों, युनान्तरकारी महापुरुषों के अतिरिक्त लक्ष्मीबाई, झलककारी बाई, उदादेवी, सुहेलदेव आदि के महत्व को उजागर कर इतिहास के पृष्ठों पर महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया जा रहा है जो निश्चित ही क्षेत्रीय एवं लोक संस्कृति की देन है।

मौखिक इतिहास का सीधा संबंध लोक संस्कृति से है। लोकगीतों एवं कथाओं में लेखक अज्ञात ही होते हैं , उनका कोई प्रामाणिक मूलपाठ नहीं मिलता तथापि उनमें स्थानीय एवं सांस्कृतिक तत्व अवश्य मिलते है। सत्यता तो यह है कि कोई भी लोककथानक तभी तक जीवित रहता है जब तक वह मौखिक पंरपरा में विद्यमान रहता है। लोक साहित्य के प्रखण्ड विद्वान सिजविल के अनुसार यदि कोई लोकगाथा को लिपिबिद्ध करता है तो वह उसे मारने या नष्ट करने में योगदान देता है। गूगर के अनुसार मौखिक पंरपरा किसी गाथा की जीवन्तता की प्रधान कसौटी है। इसी जीवन्तता का लाभ इतिहासकारों को उठाना चाहिए जो क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य में विखरी पड़ी है।

विभिन्न क्षेत्रों की लोकपरम्पराओं, राजस्थानी कवियों की चारण–गाथाओं, लोकगीत, फडो एवं कहावतों–पहेलिओं आदि में अनेक ऐतिहासिक तथ्य, तत्व, घटनाएँ आदि अन्तर्निहित होती है। इस प्रकार की मौखिक परम्पराओं ने सम्यक एवं अनुशीलन से स्थानीय एवं आचंलिक अथवा क्षेत्रीय इतिहास पर प्रर्याप्त प्रकाश पड़ता है। क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य में वर्णित लोक में राजा हरिश्चन्द्र, भागीरथी, राम, कृष्ण, परशुराम, भीष्म तथा आख्यानों के माध्यम से गंधर्वसेन, जगदेव परमार, गोगाजी चौहान, तेजाजी, जैसे लोकनायक आज भी ऐतिहासिक छाप छोड़ते हैं। बुन्देलों हरबोलों के मुख से ''खूब लड़ी मर्दानी वो तो झांसी वाली रानी थी'' का आख्यान समक्ष प्रकट हुआ। फड़ो के माध्यम से भवानी चारणी एवं चन्द्रावतों का इतिहास ज्ञात होता है। राजा भरथरी का इतिहास लोक–नाट्यका उदाहरण है। चारणों ने ढोला–मारु की ऐतिहासिक प्रणय गाथा को प्रकट किया है।'' कहाँ राजा भोज वहाँ गंगू तेली। की कहावत राजा भोज, कलचुरी शासक गांगेयदेव तथा चालुक्य नरेश तैलप पर प्रभाव डालता तथा दोनों पर राजा भोज की विजय की स्मृति को दर्शाता है। इसी प्रकार राजा हरिश्चन्द्र बनल हवन जैसे वक्तव्य समाज में राजा हरिश्चन्द्र के दान की परपरा को सुरक्षित रखें हुए हैं। सूफी लोक परंपराएं भी इन साहित्यों पर प्रकाश डालती हैं। लोरिक एवं चन्दा की क्षेत्रीय कथाएं इतिहास की पुनर्संरचना में योग देती वहीं पद्मावती अलाउद्दीन की कथा भी जीवित स्मृति ही है जो मौखिक परम्परा साहित्य तक में मौजूद है। मालवा क्षेत्रों में 'होलकर मर्दाना तुझे कौन कहे काना' के माध्यम से जसवन्त राव होलकर की प्रशस्ति गान की जाती है, जो मराठा इतिहास का प्रमुख स्तम्भ रहा है।

बुन्देलखण्ड की ग्रामीण महिलाओं ने लोक कथाओं के माध्यम से ही हरदौल के त्याग एवं बलिदान की गाथा जन–जन तक पहुंचाई। आल्हा–ऊदल के लोकप्रचलित गीत उसकी वीरता तथा पराक्रम को उद्घाटित कराते हैं। एक ओर इतिहासकारों का एक वर्ग उज्जैन के राजा एवं विक्रम संवत के प्रचलनकर्ता राजा विक्रमादित्य की ऐतिहासिकता को

सिद्ध करने के लिए प्रमाण ढूढ़ रहे हैं वहीं राजा विक्रम की नगरिया चले अइयों री जैसे लोकगीत विक्रमादित्य को जीवित रखे हुए हैं। बिहार के कुवँरसिंह का नाम बड़ी श्रद्धा एवं सम्मान से लिया जाता है जो जनचेतना का परिचायक है। इसी प्रकार स्वतंत्रता संघर्ष में चित्रू पाण्डेय, मंगल पाण्डेय, बिरसा मुण्डा, भगतजी, सिद्ध–कान्हू, रामोजी के पराक्रम क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य की धरोहर है जो इतिहास के पन्नों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं।

मौखिक परम्पराएँ इतिहास लेखन को अनेक प्रकार से संपन्न कर सकती है। इस आधार पर किए गये लेखन से स्थानीय एवं क्षेत्रीय इतिहास तथा लोक संस्कृति एवं साहित्य का पर्याप्त परिज्ञान होता हैं। इतिहास में समय एवं क्षेत्र का जो अन्धकार दिखता है, उसे आलोकित करने में मौखिक इतिहास सार्थक परिणाम दे सकता है। इस प्रकार की सूचनाएं समग्र इतिहास में जो समय एवं क्षेत्र का खालीपन आ जाता है उसे भरने में सहायक सिद्ध होती है। मौखिक परंपरा से जुड़ने के कारण इतिहास वस्तुनिष्ठ होने के साथ–साथ भावनिष्ठ भी हो जाता है क्योंकि लोकसंस्कृति एवं साहित्य जिस जन चेतना से जुड़ी होती है उसे इन्ही मौखिक परंपरा माध्यम से जाना जाता है। भारतीय इतिहास में जिन युगों को अन्धकार काल कहा जाता है यदि क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य के आधार पर उसका अध्ययन किया जाए तो कुहासा छँट सकता है।

मात्र ऐतिहासिक ही नहीं वरन् सामाजिक एवं आर्थिक परंपराएं सहायक सिद्ध होती हैं। क्योंकि लघु एवं क्षेत्रीय आधार पर सामाजिक जीवन के जो भी पहलू मौखिक रुप से लोक परम्परा में प्रचलित होते हैं वह जनता द्वारा भोगे गये यथार्थ के प्रतिनिधि होते हैं। यद्यपि मौखिक इतिहास सम्पूर्ण ऐतिहासिक पृष्ठभूमि नहीं रखता, तथापि इतना निश्चित है कि कई बार इतिहास के लिए प्राथमिक सामग्री प्राप्त हो जाती है। ये स्रोत कई बार इतिहास को ऐसी सूचनाएं प्रदान कर जाते हैं जो अन्य साधनों से ज्ञात नहीं होती तथा जो प्रामाणिक इतिहास की कड़ियों को जोड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती हैं। क्षेत्रीय तथा लोकसाहित्य से लोकसंस्कृति की मूलभूत विचार

एवं अनुभुति के साथ–साथ रागात्मकता का भी ज्ञान होता है, इस कारण इतिहासकार उसे खारिज करते है जो उचित नहीं है। सभी मौखिक परंपरा पर आंख मूंद कर विश्वास भी नहीं करना चाहिए तथा जो ऐतिहासिक हैं वो प्रामाणिक स्त्रोतों का निर्माण करते दिखते हैं। राजस्थान की पंचायतों द्वारा लिखित दस्तावेज जो प्राचीन काल से चले आ रहे है वे पंरपरा, रीतिरिवाजों के उद्घाटन के प्रमुख स्त्रोत के रुप में स्थापित हैं।

क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य की एक बड़ी सीमा यह है कि आगे समय या क्षेत्र में परिवर्तन के साथ–साथ प्रक्षिप्तांशों की भरमार हो जाती है जिससे प्रामाणिकता, ऐतिहासिकता नष्ट हो जाती है। इस हेतु इतिहासकारों को चाहिए कि वे मौखिक परम्परा से संबंधित क्षेत्र की भौगोलिक परिस्थितियों तथा उससे संबंधित क्षेत्रीय इतिहास की प्रवृतियों पर ध्यान दे तथा परम्परा से सुने हुए पात्रों , घटनाओं तथा तथ्यों के प्रमाणीकरण के लिए पाण्डुलिपियों, चारणों–भाँटों पण्डों–गौरों की पोथियों का सहारा ले। पूर्व की लोक परंपरा का ज्ञान होने से प्रक्षिप्तांशों को हटाना संभव होगा। इसके अतिरिक्त क्षेत्रीय इतिहास लेखनों को क्षेत्रीय, सामाजिक, पारिवारिक एवं सांस्कृतिक पूर्वाग्रहों से मुक्त रहना चाहिए।

धीरे–धीरे भौतिकतावाद के बढ़ते चलन तथा प्रौद्योगिकी के असंतुलित विकास के कारण लोक संस्कृति एवं साहित्य का क्षरण एवं मौखिक परंपराओं का तेजी से विलोपन हो रहा है। अतः आवश्यकता है कि सुधीजन इस क्षेत्र में आगे बढ़े एवं प्राचीन कथानकों, जनश्रुतियों, लोकगीतों के संरक्षण हेतु सुदूरवर्ती, ग्रामों में प्रवेश कर उसे खोजों तथा लिपिबद्ध कर उसे नष्ट होने से बचाएँ। बिहार के एक शैक्षणिक संस्थान द्वारा लोकगीतों के माध्यम से छठ पूजा की ऐतिहाकिता खोजने का प्रयास किया तथा उसने इसकी प्राचीनता गुप्तकाल से स्थापित की। पुराणों की कथाएँ भी इसी ओर इंगित कराती है। इस प्रकार यह सौर पूजा के उद्भव पर प्रकाश डालता है, निश्चित ये लोक कथाएँ एवं गीत जो क्षेत्रीय तथा लोक साहित्य का आधार है। अपने प्रचलन क्षेत्र में ऐतिहासिक परिवेश को उजागर करने में समर्थ सिद्ध होती है। इन्हें

अनुमानित तिथि देते हुए सतर्कतापूर्वक विम्बप्रतीको की विवेचना कर अंचल विशेष का समसामयिक इतिहास लिखा जा सकता हैं।

भारतीय इतिहास के लेखन एवं परीक्षण हेतु क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य जो अधिकांशतः मौखिक परंपरा के आधार पर महत्व के हैं, स्रोत के रुप में उनकों नकारा नहीं जा सकता। इतिहासकार मौखिक स्रोत को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखता है वह भूल जाता है कि लिखित रुप में जो ऐतिहासिक सामग्री आज उपलब्ध है वह अधिकांशत मौखिक परंपरा का ही अंग रहा है। वेदों का सन्दर्भ बताता है कि भारतीयों ने दक्षता के साथ स्मृति पर आधारित पद्धति का विकास कर लिया था। माण्डूक्य उपनिषद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आज भी राजस्थान, उत्तराखण्ड, हिमांचल, बिहार, मध्यप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ और अन्य क्षेत्रों में ऐसा अपार साहित्य है जो छपा नहीं है किन्तु जिसने अनेक पीढ़ियों तक श्रोताओं का मनोरंजन किया। इन लोक गाथाओं में बहुधा ऐसी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और नायकों का उल्लेख मिलता है जिनका मुद्रित जगत में तो उल्लेख नहीं मिलता और यदि मिलता है तो लोक साहित्य तक ही सीमित है। राष्ट्रीय मुख्यधारा में उसे स्थान नहीं मिला, किन्तु जिस समाज ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हे, सुरक्षित रखा है, उनका उससे गहरा सम्बन्ध है।

4.3 सारांश

भारतीय इतिहास के लेखन एवं परीक्षण हेतु क्षेत्रीय एवं लोक साहित्य जो अधिकांशतः मौखिक परंपरा के आधार पर महत्व के हैं, स्रोत के रुप में उनकों नकारा नहीं जा सकता। इतिहासकार मौखिक स्रोत को सदैव सन्देह की दृष्टि से देखता है वह भूल जाता है कि लिखित रुप में जो ऐतिहासिक सामग्री आज उपलब्ध है वह अधिकांशत मौखिक परंपरा का ही अंग रहा है। वेदों का सन्दर्भ बताता है कि भारतीयों ने दक्षता के साथ स्मृति पर आधारित पद्धति का विकास कर लिया था। माण्डूक्य उपनिषद इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। आज भी राजस्थान, उत्तराखण्ड, हिमांचल, बिहार, मध्यप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ और अन्य क्षेत्रों में ऐसा अपार साहित्य है जो छपा नहीं है किन्तु

जिसने अनेक पीढ़ियों तक श्रोताओं का मनोरंजन किया। इन लोक गाथाओं में बहुधा ऐसी अनेक ऐतिहासिक घटनाओं और नायकों का उल्लेख मिलता है जिनका मुद्रित जगत में तो उल्लेख नहीं मिलता और यदि मिलता है तो लोक साहित्य तक ही सीमित है। राष्ट्रीय मुख्यधारा में उसे स्थान नहीं मिला, किन्तु जिस समाज ने उसे अपने साहित्य में स्थान दिया हे, सुरक्षित रखा है, उनका उससे गहरा सम्बन्ध है।

4.4 शब्दावली

श्रुति परंपरा –सुनकर याद करना और फिर उसे सुनाना।
गाथा नारांशसी–वैदिक काल में वीर पुरूषों एवं राजाओं की वीर गाथा।
लोक संस्कृति–साधारण जन की व्यावहारिक जीवन एवं परंपरा को लोक संस्कृति कहा जाता है।

4.5 बोध प्रश्न

प्रश्न –मौखिक परंपरा की विशद् व्याख्या करें?

4.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर देखे 1.2

4.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहासकाकर का शिल्प, ,ब्लाख,मार्क

3. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

इकाई–05 दरबारी साहित्य का ऐतिहासिक महत्व

इकाई की रुपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2दरबारी साहित्य

5.3 सरांश

5.4शब्दावली

5.5 बोध प्रश्न

5.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

5.7 सहायक ग्रन्थ

5.0 उद्देश्य

इस ईकाई में हम दरबारी साहित्य का अध्ययन करेंगे। दरबारी साहित्य से आशय इस साहित्य से है, जो राजाओं–महाराजाओं के दरबार में रहकर शासकीय प्रश्रय से लिखी जाती थी, जिसमें तत्कालीन समय के राजा के शौर्य वर्णन मिलता है, किन्तु प्रत्यक्ष–अप्रत्यक्ष रूप से तत्कालीन सांस्कृति जीवन का भी वर्णन प्राप्त हो मात्रा है। इतिहास के साक्ष्य के रूप में दरबारी साहित्य का बड़ा महत्व है।

5.1 प्रस्तावना

दरबारी साहित्य से तात्पर्य राजाओं अथवा सुल्तानों के राजदरबार में रहते अथवा उनका संरक्षण प्राप्त करते हुए साहित्य अथवा इतिहास का लेखन। दरबारी साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन भारत के अन्तर्गत यह चरित काव्य एवं प्रशस्तियों के रुप में दिखता है। सल्तनत काल तथा मुगल काल में सुल्तानों का स्पष्ट संरक्षण एवं आदेश से भी इनके सृजन का उल्लेख प्राप्त होता है।

5.2 दरबारी साहित्य

दरबारी साहित्य से तात्पर्य राजाओं अथवा सुल्तानों के राजदरबार में रहते अथवा उनका संरक्षण प्राप्त करते हुए साहित्य अथवा इतिहास का लेखन। दरबारी साहित्य का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। प्राचीन भारत के अन्तर्गत यह चरित काव्य एवं प्रशस्तियों के रुप में दिखता है। सल्तनत काल तथा मुगल काल में सुल्तानों का स्पष्ट संरक्षण एवं आदेश से भी इनके सृजन का उल्लेख प्राप्त होता है।

भारतीय इतिहास लेखन, इतिहास पुराण की भारतीय परंपरा की कड़ी के रुप में 7वीं शताब्दी में बाणभट्ट कृत हर्षाचरित से आगे बढ़ता हुआ दृष्टिगत होता है। हर्षचरित सहित अब ऐसे अनेक काव्य लिखे जाने लगे थे, जिन्हें संस्कृत साहित्य के इतिहास मे चरित काव्यों की संज्ञा प्रदान की गई है। ये काव्य दरबार में रहने वाले कृपापात्र, राज्याश्रयी, बहुत हद तक वन्दनकार और उपकृत कवियों द्वारा समसामयकि शासकों के सीमित ऐतिहासिक वृन्तों पर ही लिखे गए। तथापि ऐसा नहीं है कि इनके वृत अनैतिहासिक और असत्य है। अभिलेखों एवं विदेशी साक्ष्यों से उनको पूर्ण समर्थन प्राप्त होते हैं तथापि इन रचनाओं में तिथियों के उल्लेख का अभाव स्पष्टतः दिखता है।

हर्षचरित के अतिरिक्त अन्य दरबारी साहित्य के अन्तर्गत प्राकृत भाषा में वाक्यकृत गउडहों पद्मगुप्त रचित नवसाहसांक चरित, विल्हण्कृत विक्रमाकदेव चरित, संन्ध्याकर नन्दी कृत रामपालचरित और जयानकभट्ट कृत पृथ्वीराजविजय। वस्तुत 7वीं शताब्दी से जब ऐतिहासिक काव्य लिखे जाने लगे तथा लेखन का लक्ष्य समकालीन इतिहास का वर्णन करना था विवरण देना ही निश्चित हो गया, तब भी कालक्रम का तथा क्रम्यवार घटनाओं के सम्बन्ध में उल्लेख करना आवश्यक नहीं माना गया। यह भी आवश्यक नहीं माना गया है कि सम्बद्ध दरबारी साहित्य के ऐतिहासिक नायकों में सम्पूर्ण इतिहास का विवरण दिया जाये। बल्कि अनके ऐतिहासिक जीवन के कुछ मानों मात्र का ही विवरण दिया गया है। वैसे देखा जाये तो ये

गाथा–नाराशंसी में ही स्थान हैं। हर्षचरित हमें हर्षकालीन राजनैतिक, भौगोलिक एवं धार्मिक इतिहास पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध कराता है। यद्यपि तिथि नहीं दी गई तथापि ह्वेनसांग तथा आर्यमंजूश्रीमूलकल्प से उसके विवरण की पुष्टि होती है। ग्रहवर्मा, शशांक, भास्करवर्मन जैसे शासनों, हर्ष की चतुसमुद्राधिपति, सकलराजचक्र चूड़ामणि, महाराजधिराज परमेश्वर जैसी उपाधियों, उसकी दिग्विजय यात्रा के प्रस्थान तथा राजश्री की खोज का विवरण अन्य साक्ष्यों के तुलनात्मक अध्ययन से सही सिद्ध होता है।

गउडबाहो में कन्नौज नरेश यशोवर्मा के गौड़ अर्थात् उत्तरी बंगाल, मगध आदि विजयों का उल्लेख है, जो अन्य साक्ष्यों से ज्ञात नहीं होता है लेकिन जब नालन्दा क्षेत्र से यशोवर्मा के अभिलेखों की प्राप्ति हुई तो स्पष्ट हो गया कि यशोवर्मा ने इन क्षेत्रों पर अधिपत्य स्थापित किया था। उसके सेनापति पुत्र मालाद का अभिलेख भी इस तथ्य की पुष्टि करता है। गउडवहों का सम्पूर्ण ऐतिहासिक विवरण यशोवर्मा की दिग्विजय मात्र तक सीमित है तथा ज्ञात होता है कि विन्ध्याचल पर्वत स्थित देवी का दर्शन कर वह मगध एवं गौड़ को जीता। इस विजय के बाद वह हिमालय की तलहटी होते हुये कन्नौज लौटा। यदि इन विवरणों की राजतरंगिणी तथा तत्कालीन चीनी तथा कोरियाई यात्रियों के विवरण से संगति बैठाई जाय तो यशोवर्मा के सन्दर्भ में प्रभूत सूचनाएं प्राप्त होता है तथा एक उज्जवल एवं व्यापक फलक का निर्माण हो जाता है। यद्यपि गउडवहों में ऐतिहासिक सामग्री कम है लेकिन यशोवर्मा को इतिहास में वहीं स्थापित एवं ध्यानार्षित कराती है।

दरबारी साहित्य की सारणी में अगल साहित्य नवसाहसांकचरित है जिसकी रचना धारा के सिन्धुराज के दरबारी कवि पद्मगुप्त परिमल ने की। इस ग्रन्थ में उज्जयिनी नगरी का विस्तृत वर्णन मिलता है। उज्जयिनी को चर्चा के बाद नायक सिन्धुराज का विवरण मिलता तथा ज्ञात होता है कि नवसाहसांक तथा कुमारनारायण उसकी उपाधियाँ थी। एक नाटक में उसने द्वारा वराहलीला के अभिनय का संकेत मिलता है जो उसे विष्णुभक्त सिद्ध करता है। इन सबके अतिरिक्त ज्ञात होता है कि उसने कुनतल के राजा

तैलप II, सत्याश्रय, को पराजित किया। ये रचना सिन्धुराज का वंश परिचय देने के साथ–साथ उसके धार्मिक जीवन एवं कृत्यों पर प्रकाश डालती है। उसका कोई अभिलेख नहीं मिला ताकि इस साहित्य की पुष्टि संपुष्टि हो सके तथापि नवसाहसांक चरित नहीं रचा जाता तो सिन्धुराज इतिहास के पन्नों से ओझल रहता।

बिल्हण कृत विक्रमांकदेव चरित्र में काव्यकार नायक विक्रमादित्य पष्ठ हेतु जो कुछ लिखता है, वह ऐतिहासिक तथ्यों की कसौटी पर कसने से बहुत कुछ असत्य जान पड़ता है किन्तु उसकी यह असत्यता ही तत्कालीन चालुक्य इतिहास की सत्यता को पूरक रुप में उपस्थित करती है। जिसने अभाव में उस इतिहास की वास्तवकिता धूमिल ही रही होती। यदि यह ग्रन्थ नहीं लिखा जाता था न मिलता तो विक्रमांकदेव का इतिहास समसामयिक अभिलेख से ही पूरी तरह प्रकाशित नहीं हुआ होता। इससे उसके विशाल सम्राज्य विस्तार, व्यापक विजयों, उदान्त एवं अनुकरणीय प्रशासनिक कार्यो तथा विद्या और संस्कृति के उन्नयन वाले कार्यो की लम्बी सूची मिलती है वही दूसरी ओर उसके अत्याचारों का भी वर्णन है। नैतिक दृष्टि से सही न होते हुए भी बिल्हण की इस रचना में सभी विवरण पूर्णतः ऐतिहासिक है।

सन्ध्याकरनंदी की कृत रामपाल चरित दरबारी साहित्य की प्रमुख रचना है। काव्यकार ने रामपाल के जीवन के उत्तरार्थ में अनेक राज्यों–राजाओं पर विजयों का उल्लेख अवश्यकिया, जिसके फलस्वरुप वह केवल पालसम्राज्य के गौरव को एक बार पुनः लौटाने में सफल हुआ दिखाई देता, अपितु समकालीन अन्तराज्यीराजनीति और सम्बन्धों में अग्रणी स्थान रखने वाला सिद्ध होता है। इसमें राजनीतिक एवं भौगोलिक इतिहास में साथ–साथ के वर्ता में विद्रोह का उल्लेख मिलता जो अन्यत्र नहीं है।

चाहमान इतिहास लेखन में दरबारी साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान हे। जयानकभट्ट कृत पृथ्वीराज विजय, सोमेश्वर कृत ललितविग्रहराज, चन्द्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासों, नयचन्द्रसूरि कृत हम्मीर महाकाव्य, चन्द्रशेखर कृत सुर्जनचरित, जयसिंह सूरी कृत कुमारपाल भूपाल चरित, राजशेखर कृत

प्रबन्धकोश तथा मेरुतुंग कृत प्रबन्धचिन्तामणि जैसे ग्रन्थ चौहान–चौलुक्य इतिहास के निर्माण में महती योगदान प्रदान करते हैं। पूर्वमध्यकालीन इतिहास का लगभग राजस्थान–गुजरात दिल्ली अजमेर का सम्पूर्ण घटनाक्रम इन साहित्यों से प्रचुरता से प्राप्त होता है। राजपूतवंशीय राजाओं के आपसी विवाद के अतिरिक्त इनके निर्माण कार्यो तथा तुर्को से युद्धों की भी सूचना प्राप्त होती है। विदेशी आक्रमणों के हिन्दू संस्कृति पर विनाशक क्रियाकलापों ने भारतीयों के मन में निराशा पतनोन्मुखता और अधःपतन का ऐसा भाव पैदा किया, जिसे उस समय में लेखनों, स्मृतियों, निबन्ध ग्रन्थों व दरबारी साहित्य ने स्पष्टतः उल्लेख किया है। जिसका अन्य स्रोतों में विस्तृत विवरण मिलता है।

इन सब रचनाओं से अलग है कल्हणरचित राजतरंगिणी। दरबारी साहित्यों में जहाँ केवल एक–एक शासनों के ही ऐतिहासिक क्रियाकलाप आदि उकेरे गए हैं वहीं राजतरंगिणी एक ऐसा विशाल ग्रन्थ है जिसमें कश्मीरी शासकों की लगभग 6–7 शताब्दियों का इतिहास संकलित है। श्रीहर्ष ने दरबारी कविक कल्हण ने इसकी रचना जयसिंहII के काल में पूरी की वह घटनाओं का वर्णन एक न्यायधीश की तरह करता है।

दरबारी इतिहास लेखन का क्रम सल्तनत काल में थी गतिमान रहा। शासकों ने स्पष्ट आदेश देकर रचनाकारों को अपनी उपलब्धियों को लिखने हेतु राजदरबार में रखा ताकि इतिहास लेखन हो सके। 13वीं शताब्दी की रचनाओं में नासिरुद्दीन के काल में मिन्हाजुद्दीन सिराज की कृति तबकाते–नासिरी प्रमुख है। इस रचना में इस्लाम के उदय से लेकर दिल्ली सल्तन के प्रथम सुल्तान इल्ततुमिश के कुछ उत्तराधिकारियों तक इतिहास वर्णित है लेकिन तिथि क्रम नहीं दिया गया। प्रारंभिक तुर्क आक्रमणों एवं तुर्की राज्य स्थापना पर प्रकाश डालने वाला प्रमुख स्रोत है। जियाउद्दीन बरनी की तारीख फिरोजशाही बलबल से लेकर फिरोजशाह तुगलक के समय तक शासनों की नीति एवं उनकी विजय नीतियों का वर्णन करती है। इस काल का दरबारी साहित्य राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं भौगोलिक तथा

आर्थिक सभी पहलुओं को उद्घाटित कर सल्तनतकालीन इतिहास पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध करता है।

मुगलकाल में तो शासकों द्वारा अपने शासन काल का अधिकृत इतिहास लिखवाने की परंपरा आरंभ हुई और इस प्रकार दरबारी इतिहास की रचना आरंभ हुई। जिसका श्रेय अबकर को प्रदान किया जाता है। अबुलफजल कृत अकबरनामा इसमें अग्रणी है। इसमें प्राचीन काल से अकबर तक का इतिहास वर्णित है। यह दरबारी इतिहासकार अतिश्योक्तिपूर्ण ढंग से सम्राट के गुणों की प्रशंसा करता तथा उसका पूरा ध्यान राजदरबार एवं शासकवर्ग पर ही केन्द्रित है। अकबर के शासन काल में अन्य रचनाएँ भी लिखी गयी जिसकी सहायता से दरबारी इतिहासकार के विवरण की सत्यता को परखा जा सकता है।

अकबर द्वारा आरंभ की गई परंपरा को जहाँगीर और शाहजहाँ ने बनाये रखा। उनके समय में भी दरबारी साहित्यकारों ने विभिन्न साहित्य लिखने के साथ–साथ ऐतिहासिक रचनाएं भी लिखी। जो राजनैतिक के साथ–साथ सामाजिक–धार्मिक–आर्थिक एवं सांस्कृतिक स्थिति पर प्रचुर प्रकाश डालती है। अशोक के धर्म समन्वय तथा जहाँगीर की न्याय की जंजीर की सूचना इन्ही दरबरी साहित्य से ही मिलती है, जिसकी पुष्टि विदेशी जातियों का विवरण भी करता है।

इस प्रकार उपरोक्त दरबारी साहित्य के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इन साहित्यों ने अनेक शासकों को उनके कार्यो सहित इतिहास के पन्नों में दर्ज कराया। यद्यपि इससे इनका ऐतिहासिक महत्व समाप्त नहीं होता बल्कि अन्य साक्ष्यों के साथ इनको तथ्यों की कसौटी पर कसा जाये तो प्रामाणित सूचना देते भी दृष्टिगत होते हैं।

5.3 सारांश

राजाओं द्वारा अनुदानित लेखन कार्य दरबारी साहित्य के अंतर्गत आते है। दरबार के विद्वान, कवि अपने राजा के प्रशंसा में साहित्य की रचना करते

थे, बदले में राजा उन्हें उचित सम्मान, पुरस्कार, वृत्ति आदि प्रदान करता है। प्राचीन काल से लेकर पूर्वमध्यकाल, मध्यकाल एवं ब्रिटिश काल तक ऐसी रचनाओं को सहजता से देखा जा सकता है। इतिहास निर्माण के स्रोतों के रूप में इनका महत्वपूर्ण योगदान है।

5.4 शब्दावली

वीरगाथा– वीर पुरूषों का शौर्य, पराक्रम वर्णन – वीरों की गाथाएँ

राज्याश्रय – राजा द्वारा अनुदानित

5.5 बोध प्रश्न

प्रश्न – दरबारी साहित्य से आप क्या समझते है?

5.6 बोध प्रश्नो के उत्तर

उत्तर– देखे उत्तर के लिए 1.2

1.7 सहायक ग्रन्थ

1. इतिहास लेख एक पाठ्य पुस्तक,ई.श्रीधरन,ओरियन्ट ब्लैकस्वॉन,नई दिल्ली, 2011

2. इतिहास–दर्शन, कौलेश्वर राय,किताब महल एजेन्सीज,इलाहाबाद, 2005

Uttar Pradesh Rajarshi Tandon
Open University

MAHY-112

इतिहास दर्शन एवं लेखन
सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ
(भाग–दो)

खण्ड
3
आधुनिक इतिहास लेखन

इकाई– 1
इतिहास लेखन का यूरोपीय मत

इकाई– 2
भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन

इकाई– 3
मार्क्सवादी इतिहास लेखन

इकाई– 4
इतिहास लेखन मे सम्प्रदायवाद

इकाई– 5
दलित साहित्य लेखन एवं सब आल्र्टन इतिहास

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय,प्रयागराज

इतिहास दर्शन एवं लेखन : सिद्धान्त एवं प्रवृत्तियाँ

परामर्श समिति

प्रो0 सीमा सिंह — माननीया कुलपति, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कर्नल विनय कुमार — कुलसचिव, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पाठ्यक्रम निर्माण समिति (अध्ययन बोर्ड)

प्रो0 संतोषा कुमार — निदेशक, समाज विज्ञान, विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 हेरम्ब चतुर्वेदी — आचार्य एवं पूर्व विभागाध्यक्ष, इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

प्रो0 संजय श्रीवास्तव — आचार्य,इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

लेखक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10,11,12,13,14,15 (खण्ड 1,2,3)

प्रो0 एम0 पी0 अहिरवार — आचार्य, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
इकाई- 1,2,3,4,5, (खण्ड 5)

डॉ0 रमाकान्त — सह आचार्य, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
इकाई- 1,2,3,4,5,6,7,8,9,10 (खण्ड 4, 6)

सम्पादक

प्रो0 विजय बहादुर सिंह यादव — आचार्य एवं विभागाध्यक्ष, प्राचीन इतिहास एवं संस्कृति विभाग, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखंड विश्वविद्यालय, बरेली (इकाई 1 - 30)

पाठ्यक्रम समन्वयक

डॉ0 सुनील कुमार — सहायक आचार्य, प्राचीन इतिहास, समाज विज्ञान विद्याशाखा, उ0 प्र0 राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

मुद्रित वर्ष - 2023

© उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज

ISBN No. - 978-93-94487-55-0

सर्वाधिकार सुरक्षित। इस पाठयसामग्री का कोई भी अंश उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, की लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

नोट :पाठ्य सामग्री में मुद्रित सामग्री के विचारों एवं आमड़ों आदि के प्रति विश्वविद्यालय, उत्तरदायीं नहीं है।

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय, प्रयागराज की ओर से कर्नल विनय कुमार, कुलसचिव द्वारा पुनः मुद्रित एवं प्रकाशित **2024**.

मुद्रक : चन्द्रकला यूनिवर्सल प्रा. लि. 42/7 जवाहरलाल नेहरू रोड, प्रयागराज.

इकाई- 1

इतिहास –लेखन का यूरोपीय मत

इकाई की रूपरेखा

1:0 उद्देश्य

1:1 प्रस्तावना

1:2 यूरोपीय इतिहास-चिन्तन का उद्गम एवं विकास

1:3 आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा

1:3.1 बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा

1:3.2 रोमांटिक युग में इतिहास की अवधारणा

1:3.3 उन्नीसवीं/बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

1:3.4 बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

1:4 समीक्षा

1:5 बोध-प्रश्न

1:6 संदर्भ-ग्रन्थ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्यापन का उद्देश्य निम्नलिखित है-

- यूरोपीय इतिहास-चिन्तन के उद्‌गम एवं विकास से परिचित कराना।
- आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा का सामान्य परिचय देना।
- उन्नीसवीं/बीसवीं सदी के इतिहास-दर्शन में विभिन्न विचारधाराओं का संक्षिप्त परिचय देना।
- यूरोपीय ऐतिहासिक अवधारणा का भारतीय संदर्भ में मूल्यांकन करना।

1.1 प्रस्तावना

मानव इतिहास विकास की प्रक्रिया पर आधारित है, जिसके कारण समय-समय पर सामाजिक आवश्यकताओं और मूल्यों में भी परिवर्तन होता रहा है। यही कारण है कि भिन्न-भिन्न काल के विद्वानों और इतिहासकारों ने अपनी आवश्यकताओं को दृष्टिगत करते हुए इतिहास-लेखन की ओर ध्यान दिया। उत्थान और पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है और मानव आदि काल से संघर्षरत रहा है। इतिहास में इसी मानव के कार्यकलापों, उसकी उपलब्धियों व उत्थान-पतन का वर्णन किया जाता है। प्रारम्भिक इतिहास लेखक हेरोडोट्स से लेकर आधुनिक विद्वान टायनबी तक विकास और परिवर्तन की प्रक्रिया निरन्तर दृष्टिगोचर होती रही है। इस इकाई में इतिहास लेखन के यूरोपीय विचारधारा के क्रमिक विकास का परिचय दिया गया है।

1.2 यूरोपीय इतिहास चिन्तन का उद्‌गम एवं विकास

प्रख्यात दार्शनिक इतिहासकार आर0 जी0 कालिंगवुड का अभिमत है कि मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है। अपने सम्बन्ध में चिन्तन करते समय उसके हृदय में अचानक अपने पूर्वजों के विषय में जानने की जिज्ञासा स्वयमेव प्रस्फुटित हुई कि वर्तमान का अविर्भाव कैसे हुआ। अतीत सम्बन्धी ज्ञान की उत्कंठा के परिणामस्वरूप इतिहास का उद्‌भव तथा इतिहास-चिन्तन का श्रीगणेश हुआ। यहीं से साक्ष्यों के आलोक में यथार्थ अतीत के प्रस्तुतीकरण की इच्छा इतिहास के रूप में प्रस्फुटित हो उठी। सतत् चिन्तन के परिणामस्वरूप एक अवधारणा बनी की वर्तमान का अविर्भाव अतीत के गर्भ से हुआ है।

इतिहास नामक अध्ययन शाखा की उत्पत्ति यूनान में मिलती है। इसका उद्‌गम बौद्धिक कार्य व्यापार के महान उद्वेग की एक अभिव्यक्ति के रूप में हुआ। सर्वप्रथम 'हिस्ट्री' शब्द का प्रयोग करने वाला व्यक्ति इतिहास का जनक हेरोडोटस था। इतिहास शब्द से उसका अभिप्राय खोज तथा अनुसंधान था। यूनानी जाति की ज्ञान पिपासा हिस्ट्री की परिभाषा में प्रस्फुटित हो उठी। इस प्रकार यह सर्वमान्य है कि हिस्ट्री अथवा इतिहास का उद्‌गम स्थल प्राच्य संस्कृति का केन्द्र यूनान रहा है। महान यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस ने इतिहास-चिन्तन की आधारशिला का निर्माण किया। थ्यूसिडिडिज ने उस प्रसाद को विकसित किया। दोनों की अवधारणा इतिहास के चक्रात्मक गति में रही है। रोमन इतिहासकार पालिवियस ने इतिहास-अवधारणा के सार्वभौमिक स्वरूप को स्वीकार किया है। उसने भी इतिहास के चक्रवादी स्वरूप को मान्यता प्रदान की। दूसरी ओर रोमन इतिहासकार लिवि के इतिहास अवधारणा में नैतिकता की प्रधानता है। टेसीटस के इतिहास लेखन का तात्पर्य अच्छे या बुरे तत्वों का प्रतिनिधित्व करने वाले व्यक्तियों के संघर्ष को प्रस्तुत करना था। इसके बाद इतिहास की ईसाई अवधारणा का चरण आता है जिसके अनुसार इतिहास

विश्वव्यापी, देवप्रधान, चमत्कारपूर्ण तथा युगपरक है। इतिहास में ईश्वर की एक योजना क्रियाशील है जिसका संदेश ईसा के आमन द्वारा प्राप्त हुआ।

यूरोप में पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार आन्दोलन, ईसाई इतिहास-दर्शन एवं अवधारणा के विरूद्ध एक प्रतिक्रिया थी। इस समय अनम्य तथा अपरिवर्तनीय तथ्यों का निरूपण करने के लिए समीक्षात्मक रीतिरिवाज को विकसित किया गया। प्रलेखों का आलोचनात्मक अध्ययन इतिहास का प्रेरणास्रोत बन गया। इसी समय से वैज्ञानिक युग का प्रारम्भ हुआ। साक्ष्य तथा अनुभव को ज्ञान का प्रामाणिक आधार माना गया।

बीसवीं सदी में इतिहास-चिन्तन का स्वरूप वैज्ञानिक होने लगा। इतिहासकारों ने इतिहास के अन्तर्निहित गूढ़ रहस्यों को प्रकाश में लाने का प्रयास किया। इतिहास-चिन्तन का स्वरूप सार्वभौमिक होने लगा। विश्वभ्रातृत्ववाद के परिवेश में इतिहास लिखा जाने लगा। एच0 जी0 वेल्स, टायनबी, स्पेंगलर ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि इतिहास-चिन्तन का स्वरूप संकुचित तथा क्षेत्रीय नहीं अपितु सार्वभौमिक होना चाहिए।

इस प्रकार प्रारम्भ में इतिहास-चिन्तन अतृप्त ज्ञान तृष्णा को तृप्त करने का एक समाधान था जो बीसवीं शताब्दी में समस्त मानवीय क्रिया-कलापों तथा सार्वभौमिक परिवेश में विश्वभ्रातृत्ववाद के रूप में विकसित हुआ। इतिहास-चिन्तन का यही चरमोत्कर्ष है।

1.3 आधुनिक काल में यूरोपीय इतिहास की अवधारणा

युग की परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप इतिहास की अवधारणा में परिवर्तन होता रहता हैं। यूरोप के इतिहास में पुनर्जागरण काल से आधुनिक काल का प्रारम्भ माना जाता है। इस युग में मध्य युग के ईश्वरपरक दृष्टिकोण के स्थान पर मानवपरक विचार का उत्थान होने लगा। इतिहास में ईश्वरीय इच्छा को कारण न

मानकर मानवीय इच्छा की प्रबलता को स्वीकार किया गया। इतिहासकारों ने नगरों तथा राज्यों का इतिहास लिखना प्रारम्भ किया, क्योंकि इनका सम्बन्ध मानवीय प्रक्रिया के साथ जुड़ा हुआ था। परिणामस्वरूप पुनर्जागरण कालीन इतिहास-अवधारणा प्रवृत्तिमूलक बन गयी। इसका स्वरूप व्याख्यापरक न होकर घटना प्रधान हो गया। विश्वव्यापी दृष्टिकोण का महत्व उत्तरोत्तर क्षीण होता गया और इसका स्थान क्षेत्रीय तथा प्रादेशिक इतिहास ने ग्रहण किया। इतिहास धर्मप्रधान न होकर राजनियमित होने लगा। पुनरूत्थानकालीन मानववाद आधुनिक युग में बुद्धिवादी, इतिवृत्तात्मक, विद्वतापूर्ण तथा दर्शन प्रधान रूप में पल्लवित हुआ।

1.3.1 बुद्धिवादी युग में इतिहास की अवधारणा

17वीं सदी से 18वीं सदी में प्रवेश के साथ विचारो के जगत और चिन्तन के क्षितिज में एक महान परिवर्तन दिखायी देता है। गैलिलीयो तथा न्यूटन ने विचारों की क्रान्ति को गति प्रदान की। देकार्त ने विश्लेषणात्मक पद्धति का श्रीगणेश करके आधुनिक विज्ञान का प्रवर्तन किया। मान्टेस्क्यू (Montesque) ने सबसे पहले राजनीतिक संस्थाओं की उत्पत्ति तथा विकास के अध्ययन में आलोचनात्मक शक्ति तथा नियम-निर्माण का परिचय दिया। उनके अनुसार जलवायु तथा अतीतकालीन धर्म, कानून, आचार-विचार, मानव-जीवन की गति और स्वरूप को निर्धारित करते हैं। वाल्टेयर इतिहास दर्शन का जन्मदाता माना जाता है। उन्होनें वैज्ञानिकता तथा आलोचनात्मक पद्धति का प्रयोग इतिहास के अध्ययन में अनिवार्य बताया। उन्होनें यह स्पष्ट किया कि मानव-समृद्धि में प्रत्येक पीढ़ी तथा युगों का योगदान होता है। प्रगति इतिहास की निश्चय प्रवृत्ति है। लैसंन ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास की वैज्ञानिक अवधारणा का आरम्भ वाल्टेयर से होता है। रूसों ने मानव-स्वतंत्रता पर विशेष जोर दिया।

प्रबुद्धयुग के विचारक विको ने इतिहास अध्ययन को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार इतिहास मानव की चेष्टा और चिन्तन का फल है। इतिहास में समानता और निरन्तरता की प्रवृत्ति होती है। समानता का आधार यह है कि मनुष्य स्वयं इतिहास का निर्माता है। मानव-प्रकृति में आकस्मिक परिवर्तन नहीं होता है। उसमें पूर्व स्थिति और स्वरूप के चिन्ह विद्यमान रहते हैं। यह चक्रवत घूमता रहता है। परिणामस्वरूप सामाजिक तथा राजनीतिक परिवर्तन होते रहते हैं। इस प्रकार उन्होंनें इतिहास-अवधारणा को एक नवीन स्वरूप प्रदान किया। उन्हें तुलनात्मक तथा वैज्ञानिक इतिहास-दर्शन का प्रवर्तक कहा जा सकता है।

डॉ0 बुद्ध प्रकाश के अनुसार 17वीं सदी में विचारकों ने पुनः बौद्धिक जीवन को सक्रियता प्रदान की। ऐसे विचारकों में लाईपनित्स का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उसने यथार्थ चिन्तन पर विशेष जोर दिया, उनके अनुसार सत्यरहित इतिहास जीवन रहित शरीर है। कान्ट ने इतिहास-जगत में अपने विचारों से एक क्रान्ति पैदा कर दी, उनका दृष्टिकोण पूर्णतः ऐतिहासिक था, उनके अनुसार ऐतिहासिक परिवर्तन एक सतत् प्रक्रिया है जो स्वंत्रता और सभ्यता की ओर अग्रसर है। इतिहास तथ्यों का संकलन या घटनाओं की तालिका मात्र नहीं, बल्कि आन्तरिक विकास की एक प्रक्रिया है।

काण्ट के अनुसार विश्व की प्रक्रिया नियमबद्ध है। एक प्राकृतिक योजना की भाँति गतिशील है और मनुष्य इसी योजना के अन्तर्गत क्रियाशील है। कान्ट ने स्पष्ट लिखा है कि इतिहास दूर दृश्य-जगत से अन्तर्जगत की ओर अग्रसरित होने की प्रक्रिया है। इसी को उन्होंने मानव-स्वतंत्रता की प्रगति कहा है। मनुष्य धीरे-धीरे प्राकृतिक नियमों से मुक्त होकर सामाजिक नियमों में बँध रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इतिहास की योजना का उद्देश्य मनुष्य को पूर्णतः स्वतंत्र करना है। उन्होनें

इतिहास को इतिहास की बुद्धिमत्ता की प्रगति तथा उन्नति कहा। उनके अनुसार इतिहास हमें एक ऐसे युग की ओर ले जा रहा है जब बौद्धिकता का पूर्ण साम्राज्य स्थापित हो जायेगा। इस प्रकार इतिहास का मुख्य विषय मानव का आत्मिक विकास है।

1.3.2 रोमांटिक युग में इतिहास की अवधारणा

बुद्धिवादी युग में इतिहास-चिन्तन की विशेषता तर्कप्रधान रही है। रोमांटिक युग में इतिहास चिन्तन का आधार भावना तथा कल्पना थी। तत्कालीन दर्शनिकों तथा विचारकों ने जीवन और जगत के आन्तरिक रहस्य को भावना और कल्पना के माध्यम से समझने का प्रयास किया। उनकी दृष्टि में वर्तमान परिवेश में ही अतीत को समझना सम्भव है। इस युग के विचारको ने इतिहास को समष्टि-प्रधान माना है, व्यक्ति प्रधान नहीं। मनुष्य इतिहास का कर्ता नहीं है, बल्कि उपकरण और उपज होता है।

हर्डर रोमांटिक युग के महान दार्शनिक तथा विचारक थे। उन्होनें मानव जीवन तथा प्राकृतिक विकास के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। इतिहास में उन्होनें व्यक्ति की प्रधानता को स्वीकार किया है। राष्ट्रों के स्वरूप तथा इतिहास में भिन्नता का कारण भौगोलिक परिस्थितियों में विभिन्नता है। हर्डर ने जिस नवीन इतिहास-दर्शन का सूत्रपात किया उसका पूर्ण विकास महान दार्शनिक इतिहासकार हेगेल द्वारा सम्पन्न हुआ जिनके अनुसार इतिहास घटनाओं का संकलन तथा अन्वेषण नहीं, उनमें निहित कार्यकारण प्रक्रिया की गवेषणा है। विश्व-इतिहास की मूल प्रवृत्ति स्वतंत्रता की चेतना का विकास है। इसी को उन्होने नैतिक बुद्धि का प्रसार कहा है जो सामाजिक सम्बन्धों का वाह्य रूप धारण करता है। ये सामाजिक

सम्बन्ध राष्ट्र के रूप में परिणित होते हैं। अतः राष्ट्र नैतिक बुद्धि की सर्वोच्च अभिव्यक्ति है।

हीगल ने प्रकृति तथा इतिहास में अन्तर को स्वीकार किया है। प्रकृति की प्रक्रिया चक्रात्मक है। इसके विपरीत इतिहास का स्वरूप रेखावत् है। सर्वप्रथम उन्होनें चेतना तथा विवेक को सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान किया है। प्रत्येक युग की ऐतिहासिक घटनायें चेतना द्वारा प्रभावित रहीं है। यह चेतना मानवीय मस्तिष्क को प्रभावित करके अपने अनुरूप कार्य करने के लिए प्रेरित, प्रोत्साहित तथा बाध्य करती है।

1.3.3 उन्नीसवीं/बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास लेखन

आधुनिक युग में इतिहास-लेखन और चिन्तन की विशेषता धर्मनिरपेक्ष, द्वेषरहित, उपदेशात्मक तथा दर्शनिक विचारों से पूर्ण है। विश्व की परिवर्तित परिस्थितियों ने इतिहासकारों को पर्यावरण के परिवेश में चिन्तन करने के लिए विवश कर दिया। धर्म तथा भाव-प्रधान विचारों का परित्याग करके मानवीय प्रकिया का सूक्ष्म विवेंचन इतिहास-लेखन का उद्देश्य बन गया। इतिहासकारों ने अध्यवसाय से ऐतिहासिक तथ्यों का संकलन किया और वैज्ञानिक ढंग से उनकी विवेचना करके इतिहास की रचना प्रारम्भ की। वैज्ञानिक युग का प्रभाव इतिहासकारों पर पड़ना स्वाभाविक था। परिणामस्वरूप उन्नीसवीं तथा बीसवीं सदी में इतिहास को विज्ञान मान लिया गया। जिस प्रकार बाह्य प्रकृति निष्पक्ष, विश्लेषण, वर्गीकरण तथा अध्ययन का विषय है उसी प्रकार इतिहास भी परीक्षण, विवेचन और अनुसंधान का विषय समझा गया।

थामस बकल ने इस युग की इतिहास-अवधारणा के विषय में कहा है कि इस उपयुक्त समय में मानवीय ज्ञान की उच्च शाखाओं से सम्पृक्त इतिहासकार समाज का सर्वागींण चित्र प्रस्तुत करें। बीसवीं सदी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इतिहासकारों ने धर्म तथा नैतिकता का परित्याग कर इतिहास-लेखन पर जोर दिया।

कार्लमार्क्स

कार्लमार्क्स इतिहास-दर्शन के महान विचारक, देवदूत वैज्ञानिकता तथा नैतिकता के प्रबल समर्थक एवं इतिहास में सामाजिक विचारधारा के प्रवर्तक थे। इनकी इतिहास-अवधारणा का अधार आर्थिक सिद्धान्त है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि विचार, संस्थायें, राजनीति, धर्म तथा संस्कृति को आर्थिक कारण प्रभावित करते हैं। मार्क्स का विश्वास था कि ऐतिहासिक प्रगति का मूल कारण प्राचीन तथा नवीन सामाजिक संगठन के बीच संघर्ष होता है। वाद तथा प्रतिवाद के द्वन्द्व के परिणामस्वरूप साम्यवाद का उदय होता है। साम्यवाद से ही नवीन इतिहास का प्रारम्भ तथा प्राचीन प्रथा का अन्त होता है। साम्यवाद ही इतिहास का मानववाद है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रत्यनशील रहा है।

आधुनिक इतिहास के जनक रांके ने इतिहास-अवधारणा को नवीन वैज्ञानिक विधियों से अंलकृत किया है। सर्वप्रथम उन्होने ऐतिहासिक स्रोतों की यथार्थतता को आलोचनात्मक विधि से निश्चित करने पर विशेष जोर दिया तथा घटनाओं के यथार्थ प्रस्तुतीकरण को ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य निर्धारित किया। उन्नीसवीं सदी की राष्ट्रीयता से अप्रभावित होकर उन्होनें ऐसा वस्तुनिष्ठ आदर्श इतिहास प्रस्तुत किया जो राष्ट्रीय प्रतिद्वन्द्विता के बावजूद फ्रांसीसी समाज में सर्वाधिक लोकप्रिय रहा है।

इसी कारण रांके को आधुनिक-इतिहास का जनक तथा आधुनिक इतिहास का कोलम्बस कहा जाता है।

1.3.4 बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन

बीसवीं सदी में इतिहास की अवधारणा दीर्घकालीन प्रयास एवं सतत् चिन्तन का परिणाम है। इसका उद्देश्य संकुचित राष्ट्रीयता, धर्म, जाति, क्षेत्रीयता की भावना का परित्याग कर विश्वभ्रातृत्वभाव को इतिहास में सार्वभौमिक स्वरूप प्रदान करना है। इस प्रकार का इतिहास किसी विशेष राष्ट्र तथा किसी समाज के लिए नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए हो गया।

सर्वप्रथम एच0जी0 वेल्स ने अपनी रचनाओं में मानव-कल्याण, मानव-प्रगति तथा विश्वभ्रातृत्ववाद को यथोचित स्थान दिया। विश्व-इतिहास क्षितिज को सुशोभित करने वाले महान इतिहासकारों में 'अर्नाल्ड टायनबी' का नाम अग्रगण्य है। बीसवीं सदी की अनिवार्यता सार्वभौमिक इतिहास तथा विश्वभ्रातृत्व की प्रेरणा से उनका प्रभावित होना स्वाभाविक था क्यांकि यही काल और परिस्थितियों की अपरिहार्यता थी। इतिहास की अवधारणा में उन्होनें सार्वभौमिक राज्य की कल्पना तो अवश्य की, परन्तु इसका परिणाम मानव-समाज के लिए कष्टदायक हुआ है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि इतिहास की विषयवस्तु ऐतिहासिक घटनायें, राज्य तथा समुदाय नहीं है। इतिहास-अध्ययन का बोधगम्य क्षेत्र समाज है। विश्व की छब्बीस सभ्यताओं के विश्लेषणात्मक प्रस्तुतीकरण के माध्यम से उन्होनें एक नवीन इतिहास-अवधारणा का प्रतिपादन किया।

टायनवी ने चुनौती तथा प्रतिक्रिया के आधार पर संस्कृतियों का अध्ययन किया है। चुनौती से समस्या की उत्पत्ति होती है, प्रतिक्रिया इसका समाधान प्रस्तुत

करती है। चुनौती समाजिक समस्या है, प्रतिक्रिया समस्या का समाधान है। चुनौती प्रश्न है और प्रतिक्रिया उत्तर है। टायनवी के अनुसार चुनौतियों के सफल उत्तर देने की प्रवृत्ति ही विकास है। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि समस्त विश्व का एकीकरण, धर्मों का समन्वय तथा आर्थिक विषमताओं का निराकरण उनकी इतिहास-अवधारणा की प्रमुख वृत्तियाँ है।

1.4. समीक्षा

तत्थ्यों के समीक्षात्मक विश्लेषण के पश्चात् स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल से बीसवीं सदी तक यूरोपीय ऐतिहासिक अवधारणा का स्वरूप एक समान नहीं रहा है। प्राचीन काल में इतिहास अतृप्त ज्ञान-तृष्णा को तृप्त करने का एक साधन था। मध्ययुग में धार्मिक भावनाओं ने इसे विशेष प्रभावित किया। पुनर्जागरण तथा धर्मसुधार कार्य में मानववादी तथा बुद्धिवादी इतिहासकारों ने रूढ़िवादी दृष्टिकोण की कटु आलोचना की तथा इतिहास-लेखन में तथ्यों की प्रधानता को मान्यता दी। प्रो0 जे0बी0 व्यूरी ने इतिहास को पूर्णरूपेण विज्ञान स्वीकार किया है। उन्नीसवीं सदी में कांट,हर्डर, हीगल तथा कार्ल मार्क्स ने इतिहास-अवधारणा को नवीन स्वरूप प्रदान किया।

बीसवीं सदी में इतिहास-अवधारणा का लक्ष्य मनुष्य को जातीयता, धार्मिकता, तथा राष्ट्रीयता के स्तर से ऊपर उठकर विश्वभ्रातृत्ववाद तथा सार्वभौमिक आयाम में प्रवेश करना था। स्पेंग्लर, एच0जी0 वेल्स, तथा टायनबी जैसे इतिहासकारों ने संकुचित क्षेत्रीयता तथा राष्ट्रीयता का परित्याग कर विश्वभ्रातृत्व के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया। रांके ने इतिहास को वैज्ञानिक विधाओं से परिष्कृत करके वस्तुनिष्ट इतिहास-लेखन को आवश्यक बताया। अंत में हम कह सकते हैं कि इतिहास-अवधारणा विभिन्न युगों में काल तथा परिस्थितियों का परिणाम रही है।

1.5 बोध-प्रश्न

1- यूरोपीय इतिहास-चिन्तन के उद्गम और विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- आधुनिक काल में इतिहास-लेखन के यूरोपीय दृष्टिकोण का वर्णन कीजिए।

3- बीसवीं सदी में यूरोपीय इतिहास-लेखन के स्वरूप का वर्णन कीजिए

1.6 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास-दर्शन : बुद्ध प्रकाश

2- इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0सी0 पाण्डेय

3- इतिहास दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई -2

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन

इकाई की रूपरेखा-

2:0 उद्देश्य

2:1 प्रस्तावना

2:2 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का अभिप्राय

2:3 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की पृष्ठभूमि

2:4 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की प्रकृति और विषयवस्तु

- 2:4.1 धर्म और समाज
- 2:4.2 भौतिक संस्कृति
- 2:4.3 राजनीति और प्रशासन
- 2:4.4 अंग्रेजों के प्रति घृणा
- 2:4.5 भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति

2:5 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का दोष

- 2:5.1 शोध पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ
- 2:5.2 अन्ध देशभक्ति के दावे
- 2:5.3 वैचारिक अन्तर्विरोध
- 2:5.4 सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन

2:6 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का सकरात्मक पक्ष

- 2:6.1 ऐतिहासिक अध्ययन की प्रेरणा
- 2:6.2 राष्ट्रवादी इतिहासकार द्वारा किये गये कार्य
- 2:6.3 क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में रूचिबृद्धि
- 2:6.4 आर्थिक इतिहास-लेखन का सूत्रपात
- 2:6.5 सांस्कृतिक इतिहास की संकल्पना

2:7 बोध-प्रश्न

2:8 संदर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगें कि-

1- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का क्या अभिप्राय है?

2- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की शुरूआत कैसे हुई?

3- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का विषय क्षेत्र क्या है?

4- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण और दोष क्या हैं?

2.1 प्रस्तावना

इतिहासकार अपने युग के दृष्टिकोण तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अतीत का मूल्याँकन करता है। आधुनिक भारत में इतिहास-लेखन की अनेक प्रवृत्तियों का उभार हुआ जिनके नियन्ताओं ने अपने दृष्टिविशेष से इतिहास के स्वरूप का निर्धारण किया। आधुनिक इतिहास-लेखन की विभिन्न धाराओं में साम्राज्यवादी दृष्टिकोण, राष्ट्रवादी दृष्टिकोण, उपाश्रयी सिद्धान्त, उत्तरवर्ती आधुनिकवादी दृष्टिकोण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विभिन्न धाराओं में राष्ट्रवादी विचारधारा का विवेचन हमारा मन्तव्य है जो साम्राज्यवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों तथा पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रतिक्रिया स्वरूप अस्तित्व में आया। इस इकाई में इतिहास-लेखन की राष्ट्रवादी विचारधारा की मूलभूत प्रवृत्तियों की विशद चर्चा की गयी है।

2.2 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का अभिप्राय

भारतीय इतिहास-लेखन की राष्ट्रवादी विचारधारा का प्रादुर्भाव उपनिवेशवादी इतिहास लेखन के प्रपंचों और पूर्वाग्रहों के विरूद्ध प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। इस विचाराधारा में राष्ट्रीय गौरव से ओत-प्रोत भारतीय विद्वानों की एक उदीयमान पीढ़ी ने अपनी राष्ट्रीय संस्कृति को यूरोपीय लेखकों के निराधार आरोपों से बचाने कें लिए प्रयत्न किया। यद्यपि कुछ विद्वानों और आलोचकों ने कहा कि राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का एकमात्र उद्देश्य भारत के अतीत का महिमामण्डन था। किन्तु यदि कुछ त्रुटियों को नजर-अन्दाज किया जाय तो आलोचकों के विचारों में अतिवाद दिखाई

रहा था। जेम्स मिल की प्रसिद्ध पुस्तक ''हिस्ट्री'' के द्वितीय खण्ड में हिन्दू सभ्यता पर 500 पृष्ठों के उनके विवरण का विशिष्ट उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि वह रूक्ष और निकृष्ट थी तथा हिन्दू दास-गुणों में सबसे आगे थे। माउण्ट स्टुअर्ट एलिफिस्टन ने लिखा है कि हिन्दुओं का सबसे बड़ा दुर्गुण सभ्यता का अभाव है जिसमें उन्होनें अधिकांश राष्ट्रों के निवासियों को पीछे छोड़ दिया है। कई अन्य इसी तरह की धारणाएँ व्यक्त हुईं। भारत पर बिन्सेन्ट स्मिथ की कृतियों ने सिकन्दर के सामरिक अभियानों जैसी घटनाओं के अपने विवरण में यूरोप की श्रेष्ठता की साम्राज्यवादी धारणाओं को सतर्कतापूर्वक अक्षुण्ण बनाये रखा। उन्होनें यह सिद्ध करने का यथासम्भव प्रयास किया कि सर्वत्र व्याप्त राजनैतिक अराजकता भारत की सामान्य राजनैतिक स्थिति थी। भारतीयों मे एकसूत्रता तथा स्वशासन की क्षमताओं के अभाव में ब्रिटिश शासन के स्थायित्व को पूरी तरह अनिवार्य बना दिया।

आर0 सी0 मजूमदार ऐसे प्रयासों के दृष्टान्त शृंखलाबद्ध रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिनके द्वारा पूर्व में भारतीय उपलब्धियों को कम करके आंका गया। पेरीप्लस के स्पष्ट साक्ष्य को सामने रखते हुए एल्फिस्टन का यह मानना है कि भारत के विदेशी व्यापार का संचालन यूनान तथा अरब देशवासी करते थे। उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारतीय वेद तथा महाकाव्यों की अपेक्षाकृत परवर्ती तिथियाँ निर्धारित की तथा बिना किसी प्रमाण के उनका कहना था कि भारतीयों ने निःसंदेह अपनी सस्कृति का अधिकांश अंश यूनानियों से आयात किया होगा। जब कभी भारतीय और विदेशी विचारों के बीच थोड़ा बहुत समानता दृष्टिगोचर होती थी तो यह माना गया कि भारतीयों ने इसे विदेशियों से ग्रहण किया होगा। महाकाव्यों के बारे में यह माना गया कि वे होमर की रचनाओं पर आधारित थे। भारतीय नाटक, गणित, दर्शन और खगोलशास्त्र यूनानियों से उद्भूत माने गये। इतना ही नहीं कृष्ण के पौराणिक, आध्यात्मिक व्यक्तित्व का स्रोत भी ईसामसीह को माना गया। इस तरह का निष्कर्ष पूर्वाग्रहग्रस्त मानसिकता का ही प्रदर्शन करता है (ई0 श्रीधरण पृष्ठ-389)। इसी प्रकार त्रिकोणमिति के 'साइन' का आविष्कारक भारत है, किन्तु टैनेरी

पड़ता है। आर0 सी0 मजूमदार राष्ट्रवादी इतिहासकार पद का प्रयोग केवल उन्हीं भारतीयों के लिए करते हैं जिन्होंनें अपने देश के इतिहास की पुनर्प्रस्तुति के क्रम में परीक्षण अथवा पुनःपरीक्षण को अपना लक्ष्य बनाया। इसलिए एक राष्ट्रवादी इतिहासकार अनिवार्यतः एक प्रचारक या प्रदर्शनवादी नहीं कहा जा सकता।

2.3 राष्ट्रवादी इतिहास चिन्तन की पृष्ठभूमि

ब्रिटिश साम्राज्यवाद तथा उपनिवेशवादी सोच के अधीन एक लम्बे समय तक जीवन-यापन ने भारतीयों को कुछ अलग सोचने को प्रेरित किया। उनकें अन्दर यह आशंका पैदा हुई कि पाश्चात्य सभ्यता कहीं हमारी सभ्यता को विस्थापित न कर दे, जैसा कि मैकाले और मिशनरी चाहते थे। अतः उनके अन्दर अपने धर्म तथा समाज में सुधार लाने तथा अपनी प्राचीन संस्कृति को पुनर्जीवित करने की भावना जागृत हुई। इस प्रवृत्ति ने पुनर्जागरण का रूप ले लिया जिसके फलस्वरूप भारतीयों में आत्मनिर्भरता, आत्मसम्मान तथा आत्मविश्वास की भावनाओं का संचार हुआ, जो पश्चिमी तूफान में तितर-बितर हो गया था। उनके अन्दर से प्रस्फुटित राष्ट्रीय भावना से धीरे-धीरे विदेशी प्रभुत्व से मुक्ति की अकांक्षा जागृत हुई। बंकिमचन्द्र चटर्जी ने कहा कि एकता का अभाव राष्ट्रीय गौरव तथा स्वतंत्रता की अकांक्षा उत्पन्न करने के एक साधन के रूप में इतिहास के अध्ययन तथा लेखन से अधिक मौलिक और कुछ नहीं था। इस प्रकार राष्ट्रवाद की उद्याम भावना ने राष्ट्रवादी इतिहास-चिन्तन एवं लेखन के लिए एक विचारात्मक आधार प्रदान किया।

भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-चिन्तन की पृष्ठभूमि के विशेष संदर्भ में कुछ विशेष बातों पर विचार कर लेना आवश्यक है। इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत एक लम्बे समय तक ब्रिटिश हुकूमत में था। बिट्रिश साम्राज्यवादी हमलों से भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों तथा विचारों का क्षरण हो रहा था। भारतीय संस्कृति और सभ्यता के विविध पक्ष अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे थे। अंग्रेजों के संरक्षण में भारतीय इतिहास-लेखन में साम्राज्यवादी तथा उपनिवेशवादी पूर्वाग्रह साफ दिखाई दे

का कहना है कि भारतीय किसी भी प्रकार के गणितीय आविष्कार नहीं कर सकते थे, 'साइन' निःसंदेह एक यूनानी अवधारणा थी। इस प्रकार उपनिवेशवादियों का उद्देश्य भारतीय संस्कृति का अवमूल्यन करना तथा हिन्दू धर्म और संस्कृति के कमजोर पक्षों को चुन-चुनकर प्रस्तुत करना था।

उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारत की राजनीति तथा सामाजिक विकास का जिस प्रकार निषेधात्मक परिदृश्य प्रस्तुत किया और उपनिवेशवाद को जायज ठहराने के लिए तर्क ढूँढे वहीं इसकी भारतीय इतिहासकारों द्वारा राष्ट्रवादी प्रतिक्रिया हुई । भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उपनिवेशवादी ढाँचे का विरोध करने के लिए अपना एक ढाँचा निर्मित किया। जिस प्रकार भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन उपनिवेशवाद का विरोध कर रहा था, उसी प्रकार उपनिवेशवादी इतिहास-लेखन के जबाब और प्रतिक्रिया में राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन विकसित हुआ और भारतीय जनता और उनके ऐतिहासिक दस्तावेजों को गलत रूप में पेश करने के उपनिवेशवादी तरीकों का विरोध करने और एक राष्ट्रीय आत्मसम्मान प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के प्रयास किये गये।

2.4 राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की प्रकृति और विषय वस्तु

इसमें कोई दो राय नहीं कि ब्रिटिश उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों की व्याख्या अपने उपनिवेशवादी हितों को ध्यान में रखते हुए की थी। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने उन विविध प्रसंगों को अपने राष्ट्रवादी नजरिये से पुनर्व्याख्यायित करने का प्रयास किया। उन्होनें इसके लिए विस्तृत और सूक्ष्म अनुसंधान किये, जिसके फलस्वरूप तथ्यों और विवरणों की सार्थकता बढ़ी और भारतीय इतिहास-लेखन में मौलिक और प्राथमिक स्त्रोतों के प्रयोग का चलन बढ़ा। राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की विषयवस्तु तथा प्रकृति को हम निम्नलिखित प्रकार से समझ संकते हैं:

2.4.1- अधर्म और समाज- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासकारों का प्रथम लक्ष्य हिन्दू धर्म और इसके पावन साहित्य पर किये गये आघातों को निरस्त करना था। इसके लिए इतिहासकारों की अपेक्षा समाजसुधारकों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इस समय दो चिन्तनधाराओं ने अपनी भूमिका का निर्वाह किया। इनमें से एक अतिवादी चिन्तनधारा थी जिसने हिन्दू धर्म के सभी पक्षों का समर्थन किया तथा उसे सशक्त आध्यात्मिक शक्ति तथा अन्य धर्मों से श्रेष्ठ माना। इसमें राज नारायण बोस, बंकिमचन्द्र चटर्जी और शषाधर तर्क चूड़ामणि सहित अनेक लोग शामिल थे। दूसरी चिन्तनधारा का नेतृत्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया, जो उदारवाद और रूढ़िवाद के विचित्र संगम थे। उन्होंने तार्किक-बौद्धिक आधार पर हिन्दूधर्म का समर्थन किया। उनका दावा था कि हिन्दुओं के सच्चे धर्म और समाज का आदर्श वेदों में विद्यमान है। जाति की खोखली व्याख्या श्रम के विभाजन के रूप में की गयी और यह दर्शाया गया कि वैदिक काल और परवर्ती काल में भी महिलाओं को अत्यन्त उच्च सामाजिक दर्जा प्राप्त था।

2.4.2- भौतिक संस्कृति- हम जानते हैं कि उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने हमारी संस्कृति और सभ्यता के अवमूल्यन में कोई कोताही नहीं की थी। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के भौतिक पक्ष की विशेष रूप से आलोचना की। राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपने अभिनव स्रोतों के प्रयोग द्वारा उनकी पूर्वाग्रही धारणा को गलत सिद्ध किया। प्रसिद्ध इतिहासकार रोमेश चन्द्र दत्ता ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'सिविलाइजेशन इन एन्सियेन्ट इण्डिया' में उक्त तथ्यों और आंकड़ों को एक साथ प्रस्तुत किया। आर0 सी0 मजूमदार इसे सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्ट्रवादी इतिहास कहते हैं। यह पुस्तक अपने वैज्ञानिक तथा उदार तेवर के कारण विशिष्ट है और भारतीयों के अतिरंजित राष्ट्रीय भावना से अलग दिखायी देती है। किन्तु रूढ़िवादी हिन्दूत्व के राष्ट्रवादी समर्थक दत्ता के निष्पादन से संतुष्ट नहीं थे। रूढ़िवादी हिन्दू भावनाओं के प्रभाव में उन्होनें हिन्दू धर्म की आध्यात्मिक सर्वोच्चता को सिद्ध करने का प्रयास किया। वैज्ञानिक और प्रौद्योगिकीय उपलब्धियों के लम्बे-चौड़े दावे किये

गये, जिनमें कहा गया कि प्राचीन भारत के लोगों को तमंचों तथा वायुयानों का भी ज्ञान था। भारतीय संस्कृति पर बाहरी प्रभाव की सम्भावना को खारिज किया गया। कुछ भारतीयों ने तो यह भी कहा कि भारत ही आर्यों का मूल निवास स्थल था और यहाँ से ही ये यूरोप में फैले।

2.4.3- राजनीति और प्रशासन- उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने स्थापित किया था कि भारत एक राष्ट्र नहीं अपितु छोटे-छोटे राज्यों का एक असंगठित समूह था, जहाँ पर शासन तथा न्याय-व्यवस्था का कोई संवैधानिक स्वरूप नहीं था। इसके विरूद्ध आर0 के0 मुकर्जी ने अपनी पुस्तक 'द फण्डामेंटल यूनिटी आफ इण्डिया' के माध्यम से यह धारणा प्रस्तुत की कि- पूरे भारत में हिन्दुओं के मध्य धार्मिक एकता, आध्यात्मिक साहचर्य एवं एक अखिल भारतीय साम्राज्य का उनका आदर्श अतीत में भारतीय राष्ट्रवाद के आधार तत्व थे। के0 पी0 जायसवाल ने अपनी पुस्तक 'हिन्दू पोलिटी' के माध्यम से प्रदर्शित किया कि अतीत में न केवल सरकार का एक संवैधानिक स्वरूप अपितु सम्पूर्ण संसदीय प्रणाली अस्तित्व में थी तथा उनमें प्रतिनिधिक संस्थाओं का भी अस्तित्व था। राष्ट्रवादी दृष्टिकोण में मूलतः इस बात पर बल दिया गया कि पश्चिम में जिसे राजनीतिक रूप से सकारात्मक माना गया वह पहले से ही भारत में मौजूद था। आर0 सी0 मजूमदार ने अपनी पुस्तक 'कारपोरेट लाइफ इन एंसियंट इण्डिया' में लिखा है कि ''वे संस्थाएँ जिन्हें हम श्रेष्ठ मानते हैं, वे भारत में सदियों से मौजूद थीं।'' यहाँ महत्वपूर्ण बात यह है कि पश्चिम की मूल्य संरचना को स्वीकार कर लिया गया था। समग्र रूप से प्राचीन भारतीय राजनीतिक संस्थाओ की महानता स्थापित नहीं की गयी थी, बल्कि महान मानी गयी पश्चिमी संस्थाओ को प्राचीन भारत में ढूँढने का प्रयास किया गया।

2.2.4-अंग्रेजों के प्रति घृणा- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन पर आरोप है कि इसने ब्रिटिश सरकार तथा व्यक्तिगत तौर पर अंग्रेजों के विरूद्ध घृणा को प्रोत्साहित किया। दादा भाई नौरोजी तथा आर0 सी0 दत्ता को यदि छोड़ दिया जाय तो उक्त आरोप गलत नहीं हैं। बी0 डी0 बसु जैसा इतिहासकार राष्ट्रवादी पूर्वाग्रह के

काल के इतिहास में इसका दखल नहीं था और 1947 ई0 के बाद ही इस धारा के इतिहासक़ारों ने आधुनिक भारत पर अपनी कलम उठाई। इसका एक कारण यह था कि राष्ट्रवाद के दौर में राष्ट्रवादी होने का मतलब था, साम्राज्य विरोधी होना। इसके लिए शासक और औपनिवेशिक शासन से दुश्मनी मोल लेनी पड़ती और शिक्षाविदों के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं था। राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण-दोषों पर विचार के संदर्भ में कहा जा सकता है कि राष्ट्रवादी विचारधारा में आस्थावान विद्वानों के इतिहास-लेखन का मुख्य उद्देश्य भारतीय जीवन और संस्कृति के विरूद्ध लगाये गये यूरोपियों के आरोपों का खण्डन करना था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति के प्रयास में भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों की निष्पत्ति में यदा-कदा ऐतिहासिक सुसंगतता का अभाव दिखाई देता है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण ऐतिहासिक ढाँचे पर स्पष्ट देखा जा सकता है। यहाँ उन बिन्दुओं पर संक्षेप में परिचर्चा की जा रही है-

2.5.1- शोध-पद्धति सम्बन्धी त्रुटियाँ- अन्य देशों की तरह भारत का राष्ट्रवादी इतिहास लेखन यदा-कदा शोध सम्बन्धी दोष के लिए जिम्मेदार था। इनमें सबसे प्रमुख दोष वस्तुनिष्ठता का अभाव था जो इतिहास का सारभूत तत्व है। प्राचीन भारत में उत्तरदायी सरकार के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए के0 पी0 जायसवाल महोदय अभिलेखों तथा साहित्यिक पाठों में उल्लिखित शब्दों तथा अनुच्छेदों की नयी व्याख्याएँ की। ए0 एल0 वासम का आरोप है कि जायसवाल जी ने मनोनुकूल निष्कर्षों की प्राप्ति के लिए पदों तथा अनुच्छेदों की सकारात्मक व्याख्या की तथा अपने विरूद्ध सभी साक्ष्यों को दरकिनार कर दिया।

2.5.2- अंध देशभक्ति के दावे- राष्ट्रवाद से अंधदेशभक्ति तक का फासला केवल एक ही कदम का होता है। यदि साम्राज्यवादी इतिहासकार भारत के अतीत में सबकुछ बुरा देखने के लिए प्रवृत्त थे, तो कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकार इसमें सब कुछ अच्छा देखने के लिए आमादा थे, जिसके परिणामास्वरूप इनके इतिहास लेखन में तटस्थता, संतुलन, दृष्टिपरकता तथा वस्तुनिष्ठता का अभाव दिखायी देता है। रोमिला थापर लिखती हैं कि ''प्राचीन भारत के अतीत का निःसंकोच

वशीभूत होकर मैकाले की शिक्षा-प्रणाली और डलहौजी द्वारा प्रणीत भारतीय देशी राज्यों के अधिग्रहण की नीति की अंधाधुंध आलोचना करता है। आर0 सी0 मजूमदार का कहना है कि बी0 डी0 बसु की तीखी और कठोर टिप्पणियों का एकमात्र प्रयोजन ब्रिटिश सत्ता को विश्व के वैचारिक कटघरे में खड़ा करना था। इसी तरह के कई उदाहरण आपको मिलेगें जो अंगेजों के प्रति पूर्वाग्रह की भावना का अभिद्योतन करते हैं।

2.4.5- भारतीय इतिहास की पुनर्प्रस्तुति- राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों ने स्वतंत्रा के लिए संघर्ष में उत्साह भरने के लिए भारतीय इतिहास की एक सजग पुनर्प्रस्तुति का प्रयास किया। बी0 डी0 सावरकर की पुस्तक 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम' इस दृष्टि का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसमें नितान्त राष्ट्रवादी दृष्टिकोण से इतिहास का निरूपण किया गया है। एस0 बी0 चौधरी ने अपनी पुस्तक 'सिविल रेविलियन्स इन द इण्डियन म्यूनिटि, 1857-59' में धारणा व्यक्त की कि गदर के साथ हुए जनविद्रोहों ने ही इसे एक राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम का चरित्र प्रदान किया। पुनः जब ब्रिटिश सरकार ने यह स्पष्ट किया कि हिन्दू मुसलमान सम्प्रदायों के बीच अन्तर भारत को अधिराज्य का दर्जा देने में प्रमुख बाधा थे, तो सम्प्रदायवाद के हानिकारक प्रभाव को महसूस करते हुए कुछ राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अपनी पारम्परिक लीक से हटकर पूरे मध्यकालीन भारतीय इतिहास की नये सिरे से पुनः व्याख्या की जिससे कि यह सिद्ध किया जा सके कि हिन्दुओं और मुसलमानों ने हमेशा एक दूसरे के साथ अच्छे भाइयों जैसा बर्ताव किया और मिलजुलकर एक एकीकृत राष्ट्र की नीव डाली। ताराचंद की पुस्तक 'इन्फ्लुएन्स आफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर' इस दिशा में एक अन्य प्रयास है।

2.5 भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का दोष

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन मुख्य रूप से प्राचीन और मध्यकालीन भारत के इतिहास लेखन से सम्बन्धित था और इसी से उसे प्रसिद्धि भी मिली। आधुनिक

महिमामण्डन किया गया, गौरवशाली अतीत अपमानजनक वर्तमान के लिए एक तरह की क्षतिपूर्ति का प्रतीक था''। भारत की गरिमा में गहन विश्वास के कारण इतिहासकारों के तर्क कभी कभी हास्यास्पद की सीमा तक चले जाते थे। प्राचीन भारत में संवैधानिक राजसत्ता, संसदीय सरकार, वोटिंग आफ ग्रान्ट्स तथा सिंहासन से सम्बोधन जैसे मुद्दों पर जायसवाल के दृढ़ीभूत विचार इसी का दृष्टान्त हैं।

2.5.3- वैचारिक अन्तर्विरोध- राष्ट्रवादी इतिहासकारों के विचारों तथा दृष्टिकोणों में हमें अन्तर्विरोध दिखायी देता है। सैन्य शक्ति और अहिंसा के मूल्य, लोकतांत्रिक परम्परायें और राष्ट्रीय गौरव हिन्दूत्व की आध्यात्मिक श्रेष्ठता और प्राचीन भारत की सांसारिकता, वैदिक काल में महिलाओं की उच्च स्थिति और सामाजिक, धार्मिक, तथा नैतिक आधारों पर उनकी निम्न स्थिति तथा मुख्य धारा से अलगाव अन्तर्विरोध के केन्द्र में हैं।

2.5.4- सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहन- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन पर आरोप है कि इसने सम्प्रदायवाद को पैदा किया जिसमें अत्यन्त खतरनाक सम्भावनाएँ छिपी हुई थी। मुसलमानों के विरूद्ध, राजपूतों, मराठों और सिखों के वीरतापूर्ण सामरिक अभियानों के जो उत्तेजक विवरण इन हिन्दू इतिहासकारों द्वारा प्रस्तुत किये गये वे मुसलमान इतिहासकारों के लिए एक कठोर चुनौती की तरह थे, जिनको नजरंदाज कर पाना सम्भव नहीं था। नाटक, काव्य और उपन्यासों ने दोनों सम्प्रदायों के बीच वैमनस्य को अधिक भड़का दिया। सम्प्रदायवाद जिसने अंततः देश को विभाजित कर डाला, के बीज निसंदेह इतिहास-लेखन में भी छुपे हुए थे।

2.6 राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का सकारात्मक पक्ष

राष्ट्रवादी इतिहास लेखन का एक सकारात्मक पक्ष भी है जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। राष्ट्रवादी विचारक बंकिम चन्द्र चटर्जी यदि आज जीवित होते तो उन्हें यह देखकर सुखद आश्चर्य होता कि कितनी बड़ी संख्या में उनके देशवासी

अपने अतीत की खोज में जुटे हुए हैं। उक्त इतिहास लेखन के सकारात्मक पक्ष को हम निम्नलिखित बिन्दुओं में देख सकते हैं-

2.6.1 ऐतिहासिक अध्ययन की प्रेरणा- भारत में ऐतिहासिक अध्ययन को सबसे अधिक बल और प्रेरणा राष्ट्रवाद की भावना से मिली। भारतीयों ने अपने राष्ट्रीय विकास का आधार वर्तमान में हीं नहीं बल्कि प्राचीन अतीत में खोजा। ऐतिहासिक खोजबीन को एक सशक्त प्रयोजन प्रदान करके राष्ट्रवाद की भावना ने ऐतिहासिक अनुसंधान-कार्य को तेज कर दिया। साम्राज्यवादी चुनौती का सामना करने के लिए तथा अपने राष्ट्र और संस्कृति के विरूद्ध पश्चिमी आक्षेपों तथा आरोपों का खण्डन करने के लिए वे वैचारिक समर में कूद पड़े। उनके शोध-अनुसंधानों ने प्राचीन अतीत के अनेक पक्षों को उद्घाटित किया तथा इस नये ज्ञान के भण्डार ने भारतीयों के अन्दर राष्ट्रीय उत्साह और गौरव का संचार किया। स्वयं राष्ट्रवाद को समृद्ध बनाया तथा स्वतंत्रता के लिए हो रहे संघर्ष को तीव्र कर दिया।

2.6.2- राष्ट्रवादी इतिहासकारों द्वारा किये गये कार्य- राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने अनेक ऐतिहासिक रचनायें की जो विद्वता के जगत में उच्च स्थान पाने की क्षमता रखती हैं। रोमेश चन्द्र दत्ता ने तीन खण्डों में अपनी पुस्तक ''सिविलाइजेशन इन एंशियन्ट इण्डिया'' का सम्पादन किया जिसे आर0 सी0 मजूमदार ने सर्वोत्तम अर्थ में पहला राष्टवादी इतिहास कहते हैं। यह पुस्तक अपने उदार तथा वैज्ञानिक तेवर के कारण विशिष्ट है। रोमिला थापर का मानना है कि ''कुछ दोषों के बावजूद भी राष्ट्रवादी इतिहासकारों ने प्राचीन भारतीय इतिहास का विवेचन-विश्लेषण करने में सार्थक भूमिका का निर्वाह किया। यद्यपि ऐतिहासिक लेखन का अधिकांश अंश वंशावलियों के इतिहास तक ही सीमित था, प्राचीन राजनैतिक तथा सांस्कृतिक जीवन पर केन्द्रित परिचर्चाओं एवं वाद-विवादों ने सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास के अध्ययन को भी आवश्यक बना दिया।''

2.6.3 क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में रूचि-वृद्धि- रोमिला थापर कहती हैं कि राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन से सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि क्षेत्रीय एवं स्थानीय इतिहास में लोगों की रूचि का विकास हुआ तथा स्थानीय संग्रहालयों में नये स्रोत तथा सामग्रियों की खोज हुई तथा क्षेत्रीय स्तर पर अधिक संख्या में पुरातत्वीय कार्य हुए। इन अध्ययनों का नतीजा इस रूप में सामने आया कि ऐतिहासिक ज्ञान की नई त्रुटियों का निवारण हो गया और साथ ही पूर्व के कुछ दोषपूर्ण सामान्यीकरण का संशोधन भी हो सका।

2.6.4 आर्थिक इतिहास का सूत्रपात – राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन ने आरम्भ में ब्रिटिश शासन के शोषित और उत्पीड़क स्वरूप को प्रदर्शित किया। दादा भाई नौरोजी तथा रोमेश चन्द्र दत्त ने भारत की दरिद्रता के लिए इसकी अर्थव्यवस्था पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी अर्थव्यवस्था के प्रभुत्व को जिम्मेदार माना। नौरोजी द्वारा प्रवर्तित निकासी सिद्धान्त, द्वारा भारत की गरीबी के लिए यहाँ की धन-सम्पदा की अंग्रेजों द्वारा मुक्तहस्त से निकासी को दोषी ठहराया गया। रोमेश चन्द्र दत्ता की दो खण्डों में प्रकाशित पुस्तक "इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया" ने स्पष्टवादी तेवर के साथ दृढ़तापूर्वक यह धारणा प्रस्तुत की कि भारत की व्याधि का आधारभूत कारण कृषि की समस्या में खोजा जाना चाहिए। ब्रिटिश साम्राज्यवाद की आर्थिक समालोचना का जो स्वरूप नौरोजी तथा दत्ता में अधिव्यक्त हुआ उसने भारत के आर्थिक इतिहास का सूत्रपात किया।

2.6.5 सांस्कृतिक इतिहास की संकल्पना - राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन ने भारतीय जन-जीवन तथा संस्कृति के बहुआयामी पक्षों से सम्बन्धित जानकारी के लिए स्रोतों के विपुल भण्डार को आलोकित किया जिससे भारत के अतीत के अध्ययन की दृष्टि से एक नये अभिगम का प्रारम्भ हुआ जिसे सांस्कृतिक इतिहास की संज्ञा प्राप्त हुयी। भारतीय उपमहाद्वीप के सांस्कृतिक इतिहास के लिए स्रोत-सामग्री पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। एक राष्ट्रवादी इतिहासकार सरदार के. एम. पणिक्कर ने अपनी पुस्तक 'सर्वे ऑफ इण्डियन हिस्ट्री' की भूमिका में सांस्कृतिक

अभिगम के सारतत्व को व्यक्त करते हुए कहा कि ''जब से भारत अपनी राष्ट्रीयता के प्रति सजग हुआ, भारत का इतिहास लिखे जाने की उत्कंठा अधिकाधिक तीव्रता से मुखर होती गयी जो अतीत को इस तरह पुनर्प्रस्तुत करनें का प्रयत्न करता जिससे हमें अपनी विरासत की जानकारी मिलती। इस प्रकार राष्ट्रवादी चिन्तन तथा इतिहास-लेखन ने ऐतिहासिक गवेषणा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

2.7 बोध-प्रश्न

1- राष्ट्रवादी इतिहास लेखन से क्या अभिप्राय है? भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास लेखन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

2- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहासलेखन की प्रकृति तथा विषयवस्तु पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

3- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण तथा दोषों की समीक्षा कीजिए।

4- आधुनिक युग के राष्ट्रवादी इतिहास तथा इतिहासकारों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास लेखः एक पाठ्य पुस्तक- ई. श्रीधरन

2- इतिहास-लेखन के विविध आयाम- डॉ0 एस0 के0 राय एवं अन्य

3- इतिहास-लेखन : धारणायें तथा पद्धतियाँ- डॉ0 के0 एल0 खुराना और डॉ0 आर0 के0 बंसल

इकाई -3

मार्क्सवादी इतिहास-लेखन

इकाई की रूपरेखा-

3:0 उद्देश्य

3:1 प्रस्तावना

3:2 कार्ल मार्क्स का जीवनवृत्त

3:3 मार्क्सवादी इतिहास-दर्शन

- 3.3.1 ऐतिहासिक-अवधारणा
- 3.3.2 वर्ग-संघर्ष की अवधारणा
- 3.3.3 नियतिवादी दृष्टिकोण
- 3.3.4 द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
- 3.3.5 मानव-इतिहास का वर्गीकरण
- 3.3.6 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

3:4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण का मूल्याँकन

3:5 बोध-प्रश्न

3:6 संदर्भ-ग्रन्थ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप जान सकेगें कि –

- इतिहास-लेखन का प्रमुख आधार युग-युगीन सिद्धान्त तथा सामाजिक आवश्कताएँ होती हैं।
- इतिहास-लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण की क्या विशेषतायें हैं।
- इतिहास-लेखन का भौतिक दृष्टिकोण क्या है।
- मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद क्या है। यह हीगल की द्वन्द्वात्मक अवधारणा से किस प्रकार भिन्न है।

3.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन का कार्य बहुत ही चुनौतीपूर्ण तथा गुरूत्तर दायित्व का कार्य है। प्रत्येक युग का इतिहासकार युग-युगीन सिद्धान्तों तथा आवश्यकताओं के परिप्रेक्ष्य में इतिहास लेखन करता है। युग की गतिशीलता के कारण सामाजिक आवश्यकताओं का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। समाज की आवश्यकताएँ इतिहास की अवधारणा का मुख्य आधार होती हैं। शायद इसीलिए क्रोचे ने सभी इतिहास को समसामयिक कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि इतिहासकार अपने युग के दृष्टिकोण तथा अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से अतीत की घटनाओं को देखता है। चूँकि इतिहासकार का व्यक्तिगत दृष्टिकोण समय के साथ परिवर्तित होता रहता है। अतः उसके युगयुगीन इतिहास के प्रति भी विचारों में परिवर्तन दिखायी पड़ता है। प्रारम्भ में इतिहास के प्रति विद्वानों ने धार्मिक दृष्टिकोण को अपनाया था किन्तु कालान्तर में उस दृष्टिकोण में परिवर्तन हो गया। 19वीं तथा 20वीं सदी में विज्ञान की चौमुखी प्रगति ने, ऐतिहासिक तथ्यों के संकलन, विश्लेषण तथा व्याख्या के संदर्भ में अनेक नवीन विचारधाराओं तथा दृष्टिकोणों को जन्म दिया तथा इतिहास के स्वरूप के सम्बन्ध में नये-नये प्रतिमान स्थापित हुए। इन विचारधाराओं में इतिहास लेखन का मार्क्सवादी नजरिया विशेष रूप से उल्लेखनीय है, जो ऐतिहासिक व्याख्या के भौतिकवादी दृष्टिकोण के नाम से भी प्रसिद्ध है। इस विचारधारा के

जनक कार्ल हेनरिच मार्क्स हैं। इस इकाई में मार्क्सवादी दृष्टिकोण में इतिहास अवधारणा की विषद विचेचना की गयी है। मार्क्सवादी विचारधारा में इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या, ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद, वर्गसंघर्ष की अवधारणा आदि के बारे में विस्तारपूर्वक चर्चा की गयी है।

3.2 कार्ल मार्क्स का जीवनवृत्त

इतिहास लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण का प्रवर्तक कार्ल हेनरिच मार्क्स का जन्म सन् 1818 ई0 में जर्मनी के एक यहूदी परिवार में हुआ था। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा बोन तथा बर्लिन में हुई थी। उन्होनें 1836 ई0 में बर्लिन विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया था। इग्लैण्ड में अध्ययन करते समय उनकी रूचि इतिहास और दर्शन के प्रति हुई थी। मार्क्स पर अंग्रेजी, औद्योगिक क्रान्ति, फ्रांस की राजनीतिक क्रान्ति और जर्मन भौतिक क्रान्ति का प्रभाव पड़ा था। फ्रेड्रिक एंजिल से मार्क्स का ऐतिहासिक सम्बन्ध 1844 ई0 में स्थापित हुआ। दोनों ने साथ-साथ रचनाएँ की तथा क्रान्तिकारी आन्दोलन में भी भाग लिया। मार्क्स तथा एन्जिल्स ने मिलकर के 1848 ई0 में साम्यवादी घोषणापत्र प्रकाशित किया। इसके बाद मार्क्स इग्लैण्ड चले गये जहाँ जीवनपर्यन्त अध्ययन में व्यस्त रहे। मार्क्स के जीवन का अन्तिम समय बड़ी कठिनाई से व्यतीत हुआ। इस समय एंजिल्स अपनी आय से मार्क्स की सहायता करते रहे। अन्त में सन् 1883 ई0 में महान दार्शनिक मार्क्स का देहावसान हो गया।

मार्क्स की सर्वात्तम कृति ''दास कैपिटल'' है जिसके प्रथम भाग को ही मार्क्स लिख पाये थे। जबकि दूसरा और तीसरा भाग उनकी मृत्यु के बाद एंजिल्स ने उनकी टिप्पणियों के आधार पर प्रकाशित किया।

3.3 मार्क्सवादी इतिहास दर्शन

वर्तमान युग में इतिहास लेखन पर कार्लमार्क्स का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वह न केवल इतिहास दर्शन का महान विचारक तथा नैतिकता

का महान समर्थक था, अपितु सामाजिक विचारधारा का प्रबल अनुयायी भी था। प्रो० जी० सी० पाण्डेय के अनुसार मार्क्स हेगल का महत्वपूर्ण अनुयाायी था और विरोधी भी। अनुयायी इसलिए कि उसने "द्वन्द्वात्मक पद्धति" को स्वीकार किया, विरोधी इसलिए कि उसने विज्ञानवाद को भौतिकवाद से विस्थापित किया। मार्क्स के इस मत को प्रायः एक इतिहास दर्शन के रूप में समझा जाता है। लेकिन मार्क्स दार्शनिक व्याख्याओं के स्थान पर ऐतिहासिक व्याख्या करना चाहता था। मार्क्स का कहना है कि विभिन्न ऐतिहासिक संदर्भों में सदृश घटनाएँ विभिन्न परिणामों को पैदा करती हैं। इन विभिन्न घटनावलियों के अर्थ, उनके अलग-अलग विकास के अध्ययन से पता चलते हैं न कि किसी इतिहास दर्शन में उपलब्ध सामान्य नियम से। इस प्रकार का इतिहास दर्शन वस्तुतः अनैतिहासिक होता है।

इस प्रकार यदि हेगेल इतिहास दर्शन का प्रवर्तक था तो मार्क्स को ऐतिहासिक समाज विज्ञान का प्रवर्तक कहा जा सकता है। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज की एक नई विश्लेषण पद्धति, इतिहास की ओर नई दृष्टि है। तथापि मार्क्स के अनुयायियों ने विश्व इतिहास में एक निश्चित सामान्य क्रम को स्वीकार किया है। मार्क्स का आग्रह, ऐतिहासिक विश्लेषण और उसकी एक विशेष पद्धति पर है। इस प्रकार की दर्शनमूलक ऐतिहासिक विश्लेषण पद्धति को एक प्रकार का इतिहास दर्शन कहना गलत नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सही है कि मार्क्स इतिहास को सामान्य दार्शनिक सिद्धान्तों से निगमित नहीं करता। मार्क्सवादी इतिहास-लेखन को समग्रता में समझने के लिए निम्नलिखित को जानना अत्यावश्यक है।

3.3.1 ऐतिहासिक की अवधारणा

काल मार्क्स इतिहास दर्शन के महान विचारक, देवदूत, वैज्ञानिकता तथा नैतिकता के प्रबल समर्थक एवं इतिहास में सामाजिक विचारधारा के प्रवर्तक थे। उनकी विशेष रूचि इतिहास तथा दर्शन में थी। विद्यार्थी जीवन से ही वे सामाजिक

समस्याओं में विशेष रूचि रखते थे। एक बार उन्होनें अपने प्राध्यापक से पूछा था कि क्या लोग सोचते हैं कि मनुष्य का प्रकृति, प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग से सम्बन्ध विच्छेद करके इतिहास का एक शब्द भी समझा जा साकता है। क्या उनका विश्वास है कि किसी युग के उद्योग, उत्पादन सम्बन्धी ज्ञान के अभाव में अतीत का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है? इतिहास को इन तथ्यों से अलग करने का तात्पर्य आत्मा को शरीर से, अपने को विश्व से अलग करना होगा, इस प्रकार इतिहास को प्राकृतिक विज्ञान तथा उद्योग से अलग करना होगा। (कार्ल मार्क्स, ए.जी. बिजेरी, इण्टरपेटेशन्स आफ हिस्ट्री, पेज-208)

कार्ल मार्क्स द्वारा की गयी इतिहास की व्याख्या को ही मार्क्सवादी दृष्टिकोण की संज्ञा प्रदान की गयी है। कार्ल मार्क्स की इतिहास-अवधारणा का आधार आर्थिक सिद्धान्त है। इतिहास की अवधारणा की आधारशिला नियतिवाद है। इसका स्वरूप ऐतिहासिक वस्तुनिष्ठता की अनिवार्यता है, यही इतिहास का कारण है। सामाजिक परिवर्तन का मूल कारण आर्थिक विकास होता है। उन्होनें यह स्वीकार किया है कि विचार, संस्थायें, राजनीति, धर्म तथा संस्कृति को आर्थिक कारण प्रभावित करते हैं। मार्क्स ने इतिहास पर विचार के प्रभाव को अस्वीकार नहीं किया, परन्तु यह कहा है कि विचारक, वैज्ञानिक तथा दार्शनिक भी आर्थिक कारणों द्वारा नियंत्रित होते हैं। यूरोप में पुनर्जागरण का मूल कारण समुद्री व्यापारिक मार्गों की खोज, नवीन उद्योग-व्यापार तथा जलयानों में सुधार आदि थे। मार्क्स के अनुसार राष्ट्रों के मध्य संघर्ष अथवा मित्रता का अधार भी आर्थिक होता है। वर्तमान में विश्व में जो विभाजन की प्रक्रिया दृष्टिगोचर होती है, वह भी आर्थिक सिद्धान्तों पर आधारित है। इस प्रकार मार्क्स ने समाज और उसके कार्यों के स्थान पर आर्थिक कारणों को इतिहास में अधिक महत्व दिया तथा इसी आधार पर होने वाले वर्ग-संघर्ष को भी मान्यता प्रदान की।

3.3.2 वर्ग-संघर्ष की अवधारणा

मार्क्स का विश्वास था कि ऐतिहासिक प्रगति का मूल कारण प्राचीन तथा नवीन सामाजिक संगठन के बीच संघर्ष होता है। वाद तथा प्रतिवाद के द्वन्द्व के परिणाम स्वरूप साम्यवाद का उदय होता है। साम्यवाद से ही नवीन इतिहास का प्रारम्भ तथा प्राचीन प्रथा का अन्त होता है। साम्यवाद ही इतिहास का मानववाद है। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रयत्नशील है। वर्ग-संघर्ष को उन्होंने इतिहास की शक्ति स्वीकार किया है। मार्क्स का यह सिद्धान्त उसके ऐतिहासिक भौतिकवाद के सिद्धान्त पर आधारित है। समाज में दो वर्गों का अस्तित्व रहा है- प्रथम पूँजीवादी वर्ग और द्वितीय श्रमिक वर्ग। प्रथम वर्ग का उत्पादन के सभी साधनों पर एकाधिकार होता है और वह मनमाने ढंग से द्वितीय वर्ग के गरीब लोगों का शोषण करता है। इस शोषित वर्ग को सर्वहारा वर्ग के नाम से भी जाना जाता है। इन दोनों वर्गों में सदैव संघर्ष होता रहता है। इस संघर्ष में अन्तिम विजय सर्वहारा वर्ग की होती है। अतः स्पष्ट है कि वर्ग-संघर्ष की भूमिका में ही इतिहास की गति निर्धारित होती है।

वर्ग-संघर्ष के सृजन के कारण को स्पष्ट करते हुए मार्क्स ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ ''दास-कैपिटल'' में उल्लेख किया है कि इन दो विरोधी वर्गो का सृजन उद्योगों के केन्द्रीकरण तथा पूँजी के केन्द्रण के कारण होता है।

3.3.3 - नियतिवादी दृष्टिकोण

मार्क्सवादी नजरिये में इतिहास की आधारशिला नियतिवाद है। इसका तात्पर्य यह है कि जो कुछ भी घटिता होता है, उसके निश्चित कारण होते हैं, तथा जिसके अभाव में घटना अलग तरीके से घटित हो सकती है। इसकी गतिविधि विधि-नियमों के अनुकूल चलती है। इतिहास की प्रक्रिया एक निश्चित लक्ष्य को लेकर एक निश्चित दिशा में चल रही है, जो अटल, अचल और अनिवार्य है। मार्क्स का विश्वास ऐतिहासिक नियति एवं अवश्यंभाविता में था। उन्होनें अपनी पुस्तक ''क्रिटिक आफ

पोलिटिकल इकोनामी'' की भूमिका में लिखा है कि ''अपनी आजीविका के सामाजिक उत्पादन में मानव जाति एक निश्चित एवं आवश्यक सम्बन्धों में प्रवेश करती है, जो उसकी इच्छाओ से पूर्ण स्वतंत्र है। इस प्रकार मनुष्य अपनी आजीविका के उत्पादन में ऐसे सामाजिक सम्बन्धों में बँध जाता है कि न चाहते हुए भी उसे इस सामाजिक सम्बन्ध को स्वीकार करना पड़ता है। उदाहरणार्थ- समाज में दास-प्रथा को कोई नहीं चाहता, परन्तु आजीविका के साधन में सामाजिक अनिवार्यता के कारण सभी को स्वीकार करना पड़ता है। इसी प्रकार पूँजीपति और श्रमिक के सम्बन्ध सामाजिक अनिवार्यता के परिणाम हैं, न चाहते हुए भी अधिकांश श्रमिकों को इस प्रकार का सम्बन्ध स्वीकार करना पड़ता है। काल मार्क्स का यह संकेत ऐतिहासिक-नियति, अवश्यंभाविता एवं अनिवार्यता को स्वीकार करना है।

3.3.4 - द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

मार्क्स विचार को इस जगत का आधार नहीं मानता अपितु भौतिक पदार्थ को आधार स्वीकार करता है। उसका भौतिकवाद द्वन्द्वात्मक है। मार्क्स ने हेगेल से द्वन्द्ववाद तो ग्रहण किया किन्तु इसका आशय एकदम परिवर्तित कर दिया।

मार्क्स के अनुसार भाव मनः पटल पर भौतिक जगत की छाया से उत्पन्न होते हैं। जगत के पृथक उनका कोई अस्तित्व नहीं है। अतः वाद-प्रतिवाद और साम्यवाद की प्रक्रिया भौतिक जगत की गति को व्यक्त करती है जिसका प्रतिबिम्ब मन की चिन्तन पद्धति में व्यक्त होता है। मार्क्स जगत की प्रत्येक वस्तु को भौतिकवादी दृष्टिकोण से देखते हैं और यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि प्रकृति में प्रत्येक वस्तु द्वन्द्वरत है। भौतिकजगत में यह द्वन्द्व निरन्तर चलता रहता है। जीवन बदलता है, उत्पादन की शक्तियाँ परिवर्तित होती रहती है और सम्बद्ध का निकास होता रहता है। इसी द्वन्द्व के कारण पुरानी वस्तु सड़-गलकर नष्ट होती रहती और उसका स्थान नवीन वस्तु ग्रहण करती रहती है। द्वन्द्वता में प्रत्येक वस्तु में कुछ भौतिक विरोधी तत्व होते हैं, जिनके मध्य बराबर संघर्ष चलता रहता है। यह द्वन्द्व, यह संघर्ष प्रकृति

में, सामाजिक व्यवस्था में तथा वर्गों में होता रहता है। यही द्वन्द्व और संघर्ष की शक्ति है।

इस प्रकार द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का निरूपण वर्ग-संघर्ष में परिज्ञात होता है। इस इतिहास का अन्तिम चरण पूँजीवाद की उत्पत्ति है। इसका अन्त भी क्रान्ति द्वारा होगा। इस क्रान्ति के द्वारा मार्क्स का विश्वास था कि एक ऐसा समय आयेगा जब सम्पूर्ण विश्व में एक साम्यवादी व्यवस्था आ जायेगी और श्रमिकों के शासन की स्थपाना होगी। श्रमिकों के इस अधिनायकतंत्र के बाद समाज में केवल श्रमजीवी ही रह जायेगें और ऐसे समाज के लिए राज्य की आवश्यकता नहीं रह जायेगी। क्योंकि वर्गहीन समाज अपना शासन स्वयं संचालित करेगा। (बुद्ध प्रकाश, पेज-267)।

3.3.5 मानव इतिहास का वर्गीकरण

मार्क्स ने मानव-इतिहास का वर्गीकरण कुल चार भागों में करते हुए एशियायी, प्रचीन यूरोपीय, सामन्तशाही, पूँजीवादी) इन्हें प्रागैतिहासिक नाम दिया है। उनके अनुसार मानव का वास्तविक इतिहास तो साम्यवाद के आगमन से प्रारम्भ होगा। इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए मनुष्य सतत् प्रगतिशील है। मार्क्स के अनुसार प्राकृतिक शक्तियों पर मनुष्य की विजय इतिहास का विकसित स्वरूप है। मार्क्स सामाजिक व्यवस्था में निरन्तर परिवर्तन को इतिहास की गति स्वीकार करते हैं। उत्पादन की व्यवस्था तथा सामाजिक परिवर्तन की तीन अवस्थायें हैः दास प्रथा, सामन्तशाही तथा पूँजीवाद। पूँजीवाद इस परिवर्तन का चरमोत्कर्ष है। मार्क्स की इस अवधारणा ने सामाजिक विज्ञान के अध्ययन में अन्वेषण की नवीन विधाओं तथा विश्लेषणात्मक पद्धति का प्रतिपादन किया है।

3.3.6 इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या

मार्क्स के अनुसार सभी महत्वपूर्ण सामाजिक परिवर्तन उत्पादन की प्रक्रियाओं से प्रारम्भ होते हैं। कार्ल मार्क्स प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होनें ऐतिहासिक व्यवस्था में आर्थिक कारणों को निर्णायक माना है। इसी को ऐतिहासिक भौतिकवाद का सिद्धान्त

कहा जाता है। कार्ल मार्क्स ने तो वैज्ञानिक तथा बौद्धिक क्रान्तियों का कारण भी आर्थिक सिद्ध किया। आर्थिक उत्पादन तथा उपभोग के विधान से मानव इतिहास का स्वरूप निश्चित होता है। भौतिक जीवन की उत्पादन विधि जीवन के सामाजिक, राजनीतिक और आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के लिए निर्णायक होती है। अपने इस आर्थिक व्याख्या में मार्क्स ने आदिम साम्यवाद, दासत्व सामन्तशाही, पूंजीत्व एवं साम्यावस्था का वर्गीकरण भी भौतिक तथा आर्थिक आधार पर ही किया है। अतः राजनीतिक जीवन तथा इतिहास को उत्पादन की प्रक्रिया में उत्पन्न वर्ग-संघर्ष की पृष्टभूमि में ही समझा जा सकता है। यहाँ पर यह भी उल्लेखनीय है कि वर्गों के संघर्ष के साथ-साथ विचार-पद्धतियों में निरन्तर संघर्ष जारी रहता है। नवीन विचारधाराओं का प्रतिपादन किया जाता है। इसलिए मार्क्स ने लिखा है कि ''प्रत्येक युग में सर्वमान्य विचार वे होते हैं जिन्हे शासक-वर्ग द्वारा मान्यता प्रदान की जाती है। (झारखण्ड चौबे, पृ0252)

मार्क्स ने इतिहास की आर्थिक व्याख्या में इतिहास की गति को विकासात्मक प्रक्रिया में देखा था। इस प्रक्रिया का संकेत सदैव भविष्य की ओर रहता है। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता के साथ अतीत पर आधारित किया। परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाइयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए विवश कर दिया। वर्गहीन समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण है। भविष्य के विषय में उनके दृष्टिकोण ने इस उद्घोषणा के लिए विवश कर दिया कि भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासन की कोई आवश्यकता नहीं होगी। उन्होने वर्गहीन समाज को सम्बोधित करते हुए कहा थाः- ''उन्हें अपने पूर्ण सत्य को भविष्य में प्रक्षेपित करना चाहिए।'' इस प्रकार मार्क्स ने इतिहास में भविष्यवाणी या भविष्य कथन करने के सामर्थ्य सिद्धान्त की पुष्टि की है (ई.एच.कार, पृ0-135)।

3.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण का मूल्याँकन

इसमें कोई दो राय नहीं कि मार्क्स अपने समय के महानतम दार्शनिकों तथा चिन्तकों मे से एक हैं, जो इस संसार में अवतरित हुए। मार्क्स का द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद समाज की एक नवीन विश्लेषण पद्धति और इतिहास की ओर एक नवीन दृष्टि है। उसने प्रत्येक ऐतिहासिक समस्या को वैज्ञानिक पद्धति से समझा और राज्यविहीन और वर्गविहीन समाज की रचना का दिव्य स्वप्न देखा। मार्क्स की यह मान्यता है कि प्रत्येक युग में उत्पादन की शक्तियों से मानव में एक विशेष प्रकार के आर्थिक सम्बन्ध पैदा होते हैं जिनके कारण मनुष्य आर्थिक वर्गो में बँटे रहते हैं तथा इन वर्गों के संघर्ष के परिणामस्वरूप मानव इतिहास निरन्तर आगे की ओर अग्रसरित होता रहता है, इतिहास जगत को बहुत बड़ी देन है। आधुनिक इतिहास अवधारणा पर इसका सर्वाधिक प्रभाव पड़ा है। मार्क्स की इस अवधारणा ने वर्तमान सामाजिक दृष्टिकोण को अत्यधिक प्रभावित किया है।

इन सबके बावजूद आलोचकों ने मार्क्सवादी दृष्टिकोण की कटु आलोचना की है। उनका कहना है कि मार्क्स का वर्ग-संघर्ष सिद्धान्त द्वारा केवल घृणा का प्रचार होता है, प्यार का नहीं। इसके कारण ही फासीवाद का जन्म सम्भव हो सका। वस्तुतः मार्क्स के द्वन्द्वात्मक सिद्धान्त का उपयोग केवल अतीत की व्याख्या में किया जा सकता है, भविष्य के संदर्भ में कदाचित नहीं।

मार्क्स के चिन्तन की भले ही विद्वानों ने आलोचना की है परन्तु उसको पूरी तरह से निरर्थक और आधार-रहित नहीं कहा जा सकता। यद्यपि यह सत्य है कि इतिहासदर्शन के क्षेत्र में मार्क्स की कोई महत्वपूर्ण देन नहीं है परन्तु इतिहास की आर्थिक व्याख्या उसके द्वारा प्रस्तुत एक नवीन विषय है। उसने पूँजीवाद के अवशेषों पर साम्यवाद के पौधे को लहराते देखा। मार्क्स ने अपने सिद्धान्तों को दृढ़ता से अतीत पर आधारित किया। परन्तु वर्तमान में वर्गहीन समाज के उद्देश्यों की पूर्ति की कठिनाईयों ने उन्हें भविष्य के विषय में सोचने के लिए बाध्य कर दिया। वर्गहीन

समाज के संघर्ष का अभिप्राय सुखद भविष्य का निर्माण करना है। मार्क्स के अनुसार भावी विश्व का समाज वर्गहीन होगा जिसमें शासक की आवश्यकता नहीं होगी। शोषण,दमन तथा अत्याचार से रहित वर्गहीन समाज की परिकल्पना आज भी एक आकर्षक सिद्धान्त है।

3.5 बोध-प्रश्न

1- इतिहास लेखन के मार्क्सवादी दृष्टिकोण पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

2- इतिहास की अवधारणा के सम्बन्ध में कार्ल मार्क्स के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।

3- मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद, वर्गसंघर्ष की अवधारणा तथा इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या के विशेष संदर्भ में मार्क्स वादी विचारधारा पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।

4- मार्क्स के ऐतिहासिक द्वन्द्ववाद को स्पष्ट कीजिए। यह हीगल के द्वन्द्ववाद से किस प्रकार भिन्न है।

3.6 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास दर्शन : बुद्ध प्रकाश

2- इतिहास-स्वरूप एवं सिद्धान्त : प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय

3- इतिहास-दर्शन : झारखण्ड चौबे

इकाई -4

इतिहास लेखन में सम्प्रदायवाद

इकाई की रूपरेखा-

4:0 उद्देश्य

4:1 प्रस्तावना

4:2 भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण

4:3 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के विकास का आधार

4.3.1 अँग्रेजों की नीति

4.3.2 मध्यकालीन विवरण और तथ्य का सम्प्रदायवादी स्वरूप

4.3.3 इतिवृत्तों की धार्मिक दृष्टि को मान्यता

4.3.4 मध्यकालीन इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या

4:4 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्व

4.4.1 परस्पर विरोधी समुदाय की अवधारणा

4.4.2 मध्यकालीन भारत में मुसलमानों को शासक के रूप में देखने की दृष्टि

4:5 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन की आलोचना

4:6 बोध-प्रश्न

4:7 संदर्भ-ग्रन्थ

4 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप जान सकेगें कि-

- इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का क्या तात्पर्य है?
- भारतीय इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार कैसे हुआ?
- भारतीय इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का प्रसार किन आधारभूत तत्वों पर आधारित है।
- राष्ट्रवादी और सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन में क्या अन्तर है?

4.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन अतीत की व्याख्या के अध्ययन से सम्बन्धित है। अतीत की इस व्याख्या पर अनेक विचारधाराओं, दृष्टिकोणों तथा पूर्वाग्रहों का प्रभाव अवश्यंभावी है। भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण ने भारतीय इतिहास के स्वरूप को विशेष रूप से प्रभावित किया है जिसके विकास में अंग्रेजों की ''फूट डालो और शासन करो'' की नीति को विशेष रूप से जिम्मेदार माना जाता है। उपनिवेशवादियों ने इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या कर भारतीय इतिहास लेखन में हिन्दू और मुस्लिम सम्प्रदायवाद को प्रोत्साहित किया। विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले इतिहास ने खासतौर पर सम्प्रदायिकता को फैलाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी, किन्तु 1947 ई0 के बाद ही सम्प्रदायवादी शक्तियों ने भारत और पाकिस्तान के बुद्धिजीवी वर्ग में अपनी जगह बनायी। इस इकाई में भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी प्रवृत्तियों तथा उनके प्रभावों की विशद विवेचना की गयी है।

4.2 भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार

भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना के प्रसार में इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या को विशेष रूप में जिम्मेदार माना जाता है। हिन्दू सम्प्रदायवाद पर यह बात विशेष रूप से लागू होती है। जबकि मुस्लिम सम्प्रदायवाद मुख्य रूप से धर्म और अल्पसंख्यक भावना से प्रभावित था जिसका उपयोग लोगों में डर पैदा

करने के लिए किया जाता था। इसी प्रकार का डर पैदा करने के लिए हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने भारतीय इतिहास के मध्यकाल को मिसाल के तौर पर पेश किया।

हिन्दू और मुसलमान इन दोनों सम्प्रदायों के बीच साम्प्रदायिकता के प्रसार में विद्यालयों में पढ़ाये जाने वाले विकृत इतिहास को विशेष तौर पर जिम्मेदार माना जाता है। गाँधी जी ने कहा था कि जब तक हमारे विद्यालयों में विकृत इतिहास पढ़ाया जाता रहेगा तब तक हम स्थायी रूप से साम्प्रदायिक सौहार्द स्थापित नहीं कर सकते। कानपुर दंगों की जाँच समिति रिपोर्ट (1932) में भी कहा गया कि पुस्तकों में सम्प्रदायवादी दृष्टि दोनों समुदायों के बीच दरार पैदा करने में अहम भूमिका निभा रही है।

इन ऐतिहासिक भ्रान्तियों तथा दुष्प्रचारों के अतिरिक्त साहित्यिक साधनों तथा सार्वजनिक भाषणों ने इतिहास के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के प्रसार में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। किन्तु भारत और पाकिस्तान के बुद्धिजीवी वर्ग के बीच 1947 ई0 के बाद ही सम्प्रदायवादी शक्तियों ने अपनी जगह बनायी क्योंकि स्वतंत्रता के पहले इस वर्ग पर धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादी प्रभाव काम कर रहा था। राजनीतिक नेताओं ने खुलेआम इतिहास को सम्प्रदायवादी रंग में रंगा और विद्यालयों में पढ़ायी जाने वाली पाठ्यपुस्तकों और लोकप्रिय-लेखन आदि में इनकी झलक मिलती है।

4.3 सम्प्रदायवादी दृष्टिकोंण का आधार

भारतीय सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने अपने तर्कों के लिए मध्यकालीन भारत के उपनिवेशवादी इतिहास लेखन और पाठ्यपुस्तकों को ही आधार बनाया। भारतीय सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने ब्रिटिश इतिहासकारों और प्रशासकों के लेखन के आधार पर ही अपनी धारणा विकसित की। भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी विचारधारा के विकास के प्रमुख कारक निम्नलिखित हैं-

4:3.1 अँग्रेजों की नीति- आधुनिक भारतीय इतिहास-लेखन में साम्प्रदायिक दृष्टिकोंण के विकास में अंग्रेजो की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति विशेष रूप से जिम्मेदार थी। 1820 के दशक के अन्त तक आते-आते अंग्रेज शासकों ने यह भलींभाँति जान लिया था कि भारत पर बलपूर्वक वे बहुत दिनों तक शासन नहीं कर सकते। इसलिए उन्होनें 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपनायी। उन्होने क्षेत्रीय, भाषायी तथा जातिगत आधार पर भारतीयों को बाँटने का प्रयत्न किया, परन्तु उनका सबसे ज्यादा जोर धार्मिक ध्रुवीकरण पर रहा। अपने विदेशीमूल को जायज ठहराने के लिए उन्होनें यह जायज ठहराने की कोशिश की कि भारत पर हमेशा विदेशियों का शासन रहा है। उन्होंनें यह साबित करने की कोशिश की कि मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं को सताया, प्रताड़ित किया और तरह-तरह की यातनाएँ दी और अंग्रेजों ने उनसे मुक्ति दिलायी। उन्होनें यह भी साबित करने की कोशिश की कि हिन्दू और मुसलमान हमेशा से आपस में लड़ते-झगड़ते रहे हैं।

मध्यकालीन भारत के एक प्रमुख इतिहासकार एच0 एम0 एलियट ने 1849 में 'हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड बाई इट्स ओन हिस्टोरियन्स' की प्रस्तावना में लिखता है कि ''हिन्दू और मुसलमानों में हमेशा शत्रुता बनी रही, विरोध करने पर मुसलमानों ने हिन्दुओं की गर्दन उतार ली, वे शोभायात्रा नहीं निकाल सकते थे, पूजा-अर्चना नहीं कर सकते थे, उनकी मूर्तियों को अपमानित किया गया, मन्दिर उजाड़ दिये गये, जबरन उनका धर्मान्तरण तथा विवाह किया गया, उन्हें तरह-तरह से दण्डित किया गया, जनसंहार तथा हत्याएँ की गयी और शासकों ने क्रूरता का नंगा-नाच खेला''। एलियट आगे लिखता है कि इस इतिहास का उद्देश्य प्रजा को यह बताना है कि हमारा शासन पहले के शासन की अपेक्षा कितना उदार और समतावादी है।

यहाँ पर एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि मोहम्मद अली जिन्ना और बी0 डी0 सावरकर ने पहली बार 1937 में द्विराष्ट्र के सिद्धान्त को सामने नहीं रखा जिसके कारण देश का विभाजन हुआ। इसके बहुत पहले अंग्रेज लेखकों

ने यह धारणा बना दी थी कि भारतीय राष्ट्र का मतलब है हिन्दू राष्ट्र और तुर्की, अफगान और मुगल शासकों का शासन विदेशी शासन था, जबकि राजपूत राजाओं और मराठा सरदारों का शासन हिन्दू शासन था। इसलिए हम कह सकते हैं कि इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' नीति का एक हिस्सा थी।

4:3.2 मध्यकालीन विवरण और तथ्यों का सम्प्रदायवादी स्वरूप - भारतीय इतिहास लेखन के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण का एक कारण यह भी था कि मध्यकाल का इतिहास लिखने के लिए इतिहासकारों के सामने जो मध्यकालीन विवरण और तथ्य थे वे भी सम्प्रदायवादी थे। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत को लिखने में ब्राह्मणों की प्रमुख भूमिका थी जो राजाओं और सामन्तों के संरक्षण में जीवनयापन करते थे तथा धार्मिक परिप्रेक्ष्य में ही सभी घटनाओं की व्याख्या करते थे, क्योंकि इसमें उनका स्वार्थ निहित था। खूनी लड़ाई, दरबारों के षड़यंत्र, रोजमर्रा की राजनीति और प्रशासनिक नीतियों को भी धार्मिक जामा पहनाया जाता था, दूसरों को पराजित करना या अपने राज्य को विस्तारित करने के लिए होने वाली आपसी लड़ाइयों को धार्मिक प्रेरणा और निष्ठा से जोड़ा जाता था। ऐसा नहीं है कि केवल भारत में ही इस प्रकार का लेखन हुआ था। यूरोप के मध्यकालीन इतिहास-लेखक भी इसी तर्क पर इतिहास लिखते थे।

4:3.3 इतिवृत्तों की धार्मिक दृष्टि को मान्यता- दुर्भाग्यवश उपनिवेशवादी और कुछ भारतीय इतिहासकारों ने प्राचीन और मध्यकालीन इतिवृत्तों के लेखकों के धार्मिक दृष्टि को अपने लेखन में शामिल कर लिया और इस प्रकार भारतीय इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या को हवा दी। उदाहरण के लिए आज भी हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदायवादी इतिहासकार महमूद गजवनी के आक्रमण को धर्म से प्रेरित मानते हैं और बताते हैं कि इसका सम्बन्ध इस्लाम के स्वरूप और प्रकृति से है। इसी प्रकार वे मध्यकालीन भारत में राणा प्रताप और अकबर या शिवाजी और औरंगजेब के बीच होने वाले राजनीतिक युद्धों को धर्म पर आधारित

और प्रेरित मानते हैं। इसके अलावा प्राचीन और मध्यकाल के साहित्यिक स्रोत मुख्य रूप से राजाओं, राजदरबारों और उच्चजातियों के कारनामों का वर्णन करते हैं न कि पूरे समाज का। शासकीय वर्गों के सैन्य और कूटनीतिक कार्यवाहियों को भी धार्मिक चश्मे से देखने की कोशिश की जाती थी। युद्ध और सन्धि के समय कई कारक कार्यशील होते थे। मूल मुद्दा तह के भीतर होता था। वैवाहिक बन्धनों, भाषा, जाति, क्षेत्र के साथ –साथ धर्म को भी औजार के रूप में प्रयोग किया जाता था। परन्तु मुख्य मुद्दा और स्वार्थ, आर्थिक और राजनीतिक होता था। आज भी राष्ट्र अपने स्वार्थों पर नेकनीयति का मुलम्मा चढ़ाते हैं, अन्तर यही है कि यदि कोई इतिहासकार किसी सरकारी कथन को हूबहू स्वीकार कर लेता है तो इतिहासकारों का समाज उनकी खिल्ली उड़ाता है। परन्तु कई इतिहासकारों ने अतीत के शासकों के सरकारी बयानों और इतिवृत्तों और आख्यानों को स्वीकार किया है।

4:3.4 मध्यकालीन इतिहास की सम्प्रदायवादी व्याख्या- उपनिवेशवादी इतिहासकारों ने मध्यकालीन राजनीति को सम्प्रदायवादी रंग में रंगा और यह दिखाया कि अतीत में राजनीति धर्म से प्रेरित थी। और ऐतिहासिक किवदंतिओं और कथाओं व मिथकों को सम्प्रदायवादी राजनीति का आधार बनाया। इसी प्रकार सम्प्रदायवादी लेखकों ने भी इन कारकों को अपने लेखन का आधार बनाया। इसलिए हिन्दू और मुसलमान दोनों ही सम्प्रदायवादियों ने अतीत की व्याख्या के जरिये अपने समकालीन अनुयायियों के बीच डर, असुरक्षा और कट्टरता का माहौल बनाने का प्रयास किया। इस प्रकार सम्प्रदायवादी इतिहास, साम्प्रदायिकता को जन्म भी दिया और उसे हवा भी दी। दूसरी ओर सम्प्रदायवादी राजनीति ने सम्प्रदायवादी लेखन और उसके प्रचार-प्रसार के लिए आधार निर्मित किया। कहने का तात्पर्य यह है कि मध्यकाल का इतिहास जिस तरह लिख गया वैसा था नहीं, या फिर मध्यकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया ने साम्प्रदायिकता को जन्म नहीं दिया बल्कि इतिहास को सम्प्रदायवादी रूप में व्याख्यायित किया गया, उससे साम्प्रदायिकता का जन्म हुआ।

4:4. भारतीय इतिहास के सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्व

भारतीय इतिहास लेखन का सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण कुछ आधारभूत तत्वों/ अवधारणाओं पर आधारित था जिनकी विस्तारपूर्वक चर्चा नीचे की पंक्तियों में की जा रही है :-

4:4.1- हिन्दुओं और मुसलमानों के परस्पर विरोधी समुदायों की अवधारणा– सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के अनुसार मध्ययुगीन भारतीय इतिहास, हिन्दू-मुस्लिम संघर्ष का इतिहास रहा है। हिन्दू और मुसलमान हमेशा से दो विरोधी गुटों में बँटे रहे जिनके बीच दुश्मनी, वैमनस्य, ईर्ष्या और शुत्रता का भाव रहा है। हिन्दु और मुस्लिम संस्कृतियाँ बिल्कुल अलग और विशिष्ट थीं। सन् 1957 में आर0 सी0 मजूमदार ने लिखा कि मध्यकालीन भारत दो शक्तिशाली इकाइयों में विभाजित रहा। इसी प्रकार 1950 के दशक में इश्तियाक अहमद कुरैशी ने लिखा कि इस प्रायद्वीप के मुसलमान स्थानीय जनता के साथ घुलमिल न सके।

सम्प्रदायवादी राजनीतिक नेताओं ने इन दृष्टिकोणों को और भी विषाक्त बनाकर प्रस्तुत किया। मार्च 1940में मुस्लिम लीग के लाहौर सत्र में अध्यक्षीय भाषण देते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा कि "1200 साल के इतिहास में एकता कायम न हो सकी, और सदियों से भारत हिन्दू भारत और मुस्लिम भारत मे विभाजित रहा। 1923 में बी0 डी0 सावरकर ने अपने हिन्दुत्व में लिखा कि जिस दिन महमूद गजवनी ने सिन्धु को पार किया उसी दिन से जीवन और मृत्यु का संघर्ष शुरू हो गया जिसका अन्त अब्दाली के साथ हुआ। इस संघर्ष में सभी पंथों, क्षेत्रों और जातियों के हिन्दू प्रभावित हुए"। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य साम्प्रदायिक विचार को एक आधार प्रदान करना था, जिसके अनुसार हिन्दू और मुसलमानों में हमेशा से शत्रुता का भाव रहा है। एम0 एस0 गोलवरकर ने राष्ट्रवादियों के उस विचार का विरोध किया जिसमें उन्होर्नें हिन्दुओं को हमारे पुराने आक्रमणकारियों और दुश्मनों के साथ खड़ा करने की कोशिश की और उन्हें भारतीय कहकर पुकारा"। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने इस विचाराधारा को तुरन्त स्वीकार किया और इसे प्रचारित किया तथा अपना द्विराष्ट्रीय सिद्धान्त इसी पर आधारित किया।

सम्प्रदायवादी इतिहासकारों ने मध्ययुगीन समाज के राजपूत और मराठा सरदारों या अफगानों और तुर्कों के राजनीतिक संघर्ष या किसी भी प्रकार के जातिगत संघर्ष को पूरी तरह नजरअंदाज किया। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने स्थापित किया कि इस्लाम भारत के लिए विदेशी धर्म है और जो भी इस धर्म का अनुयायी है वह विदेशी है। एम0 एस0 गोलवरकर ने मुसलमानों को विदेशी कहकर सम्बोधित किया, जिन्होनें भारत को कभी भी घर नहीं सराय माना। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी इस विचारधारा को स्वीकार किया कि मुसलमान भारत में स्थायी रूप से विदेशी के रूप में रहते आये हैं, हालांकि उनके कहने का अन्दाज कुछ अलग था। उन्होनें मुसलमानों को हिन्दुओं से बिल्कुल अलग दिखाने के लिए इस विदेशी सूत्र का इस्तेमाल किया। उदाहरण के लिए मुहम्मद अली जिन्ना ने 1941 में इस बात पर जोर दिया कि ''जब कोई इस्लाम धर्म अपनाता है तो वह उसके हजारों वर्ष पूर्व के इतिहास से जुड़ जाता है। वह बिल्कुल दूसरे खेमे में चला जाता है, वह धार्मिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से एक अलग और विशिष्ट शख्सियत बन जाता है। इसी प्रकार मुस्लिम लीग के एक नेता ममदोत के नबाब ने 1941 ई0 में कहा था कि ''भारत में लगभग 12वीं शताब्दी से पाकिस्तान मौजूद है''।

हिन्दू तथा मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने ऐतिहासिक शत्रुता के सिद्धान्त को आगे बढ़ाते हुए कहा कि हिन्दू और मुसलमान दोनों अलग-अलग राष्ट्र हैं। 1937के बाद मुसलमान सम्प्रदायवादियों ने यह माँग किया कि दो राष्ट्र एक साथ नहीं रह सकते और आजादी के बाद मुसलमानों को एक अलग राष्ट्र यानि पाकिस्तान चाहिए। दूसरी ओर हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने 1937 के बाद एक ऐसे हिन्दू राष्ट्र के निर्माण की बात की जिसमें मुसलमानों की स्थिति दोयम दर्जे की होनी थी।

4:4.2 मध्यकालीन भारत में मुसलमानों का शासक के रूप में देखने की दृष्टि-सम्प्रदायवादी विचारधारा में प्रमुखतः इस बात पर बल दिया जाता है कि मध्यकालीन भारत में मुसलमान शासक वर्ग था और हिन्दू शासित, मुसलमान राजा

ने इस औपनिवेशिक धारणा को पूरा-पूरा अपना लिया और इसका प्रचार किया कि मुसलमान शासक और उनकी ओर से मुसलमानों से हिन्दुओं के साथ घोर अत्याचार किया, उनके मन्दिरों को तोड़ा गया तथा जोर जबरदस्ती करके इस्लाम को फैलाया गया ।

1939 में प्रकाशित एम0 एस0 गोलवलकर की पुस्तक ''वी0 आर0 आवर नेशनलहुड डिफाइन्ड'' में इन बातों की विस्तार से चर्चा की गयी है। इस्लाम के बारे में कई गलत धारणाओं में से एक गलत धारणा यह है जो वैमनस्य और कटुता का सबसे बड़ा कारण बनी हुयी थी, ''मुसलमान धर्मांध और असहिष्णु होता है। इस्लाम का प्रसार तलवार के साये में हुआ है''- इस सिद्धान्त को इतने व्यापक पैमाने पर और लगातार फैलाया गया कि आम भारतीय नागरिक इस धर्म के बारे में ऐसा ही सोचता है।

मुस्लिम सम्प्रदायवादियों, मध्यकालीन मुस्लिम शासकों, सामन्तों, खासतौर पर औरंगजेब जैसे शासकों, उनकी धर्मांधता, जजिया और मन्दिरों को ध्वस्त करने जैसे कार्यों को सही बताया। उनमें से बहुतों ने औरंगजेब को भारत में दार-अल इस्लाम का निर्माता बताया। दूसरी ओर उन्होनें इस्लाम को कमजोर करने के लिए अकबर की निन्दा की। हिन्दू सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि प्राचीनकाल में हिन्दू समाज और संस्कृति, भारतीय सभ्यता अपने उत्कर्ष पर थी और मुसलमानों के आक्रमण और आधिपत्य के परिणामस्वरूप मध्यकाल में इसका पतन हो गया। इस महानता और उत्कर्ष को साबित करने के लिए प्राचीन युग का महिमागान किया गया और इसे पवित्र माना गया। दूसरी हिन्दू सम्प्रदायवादी मान्यता है कि 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा 18वीं शताब्दी में हिन्दू पुनर्जागरण हुआ। मराठों ने शिवाजी के नेतृत्व में विद्रोह किया और पेशवाओं के नेतृत्व में मराठा साम्राज्य की स्थापना की गयी। इसी प्रकार कई राजपूत राजाओं ने औरंगजेब के खिलाफ बगावत की जिसे मुस्लिम वर्चस्व के खिलाफ हिन्दू विद्रोह कहा गया और यह बताया गया कि हिन्दुओं ने अपने सम्मान और गौरव की रक्षा करने के लिए

था और हिन्दू प्रजा। इसलिए सभी मुसलमान चाहे वे गाँव में रहते हों या शहर में, चाहे वे अमीर हो या गरीब, किसान हो या सैनिक सभी को शासक के रूप में चित्रित किया गया। जबकि राजाओं, सरदारों, सामन्तों, जमींदारों और बड़े हिन्दू पदाधिकारियों को शासित के रूप में चित्रित किया गया। इसलिए 1941 ई0 में लाहौर में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए मुहम्मद अली जिन्ना ने कहा था कि" हम हिन्दुओं से कुछ नहीं माँग रहे, क्योंकि हिन्दुओं का कभी भी पूरे भारत पर अधिकार नहीं रहा। बल्कि मुसलमानों ने भारत पर 700वर्षों तक शासन किया, अंग्रेजों ने मुसलमानों से सत्ता हथियायी। हिन्दू सम्प्रदायवादियों ने स्वाभाविक तौर पर यह स्वीकार किया कि मुस्लिम शासन के दौरान हिन्दू दास का जीवन व्यतीत कर रहे थे। उदाहरण के लिए 1937 ई0 में वी0 डी0 सावरकर ने लिखा कि "भारत में मुसलमान शासकों का शासन हिन्दू राष्ट्र के लिए मौत का पैगाम था"।

मध्यकालीन भारत में मुसलमानों को शासक के रूप में देखने की दृष्टि की विचारधारा के क्रम में एक बात कही जाती है कि भारतीय राज्य की प्रकृति धर्म और खासतौर पर शासन के धर्म से निर्धारित होती रही है। कानपुर दंगा जाँच समिति की रिपोर्ट के अनुसार यह भी कहा जाता है कि मध्ययुगीन राज्य का मुख्य उद्देश्य इस्लाम का प्रचार-प्रसार करना था और इसका प्रमुख कारण राज्य की प्रकृति थी जिसके शासक मुसलमान थे, दूसरी ओर हिन्दू धर्म की रक्षा करने वाले मराठा साम्राज्य और मराठा सरदारों, राजपूत राजाओं और जाट जमीदारों के स्वायत्त राज्यों को हिन्दू राज्य कहा गया। इसी प्रकार सम्प्रदायवादियों ने उन हिन्दू या मुसलमान राजाओं की निन्दा की और बुरा शासक कहा जिन्होनें सम्प्रदायवाद का रास्ता नहीं अख्तियार किया।

सम्प्रदायवादियों ने संस्कृति की धर्म आधारित परिभाषा को आधार बनाया और उसमें उच्च वर्गो के धर्म को ही आधार बनाया गया। यह माना गया कि चूँकि हिन्दू धर्म और इस्लाम की परिभाषाएँ अलग-अलग थीं, उनके बीच न तो कोई साझा सांस्कृतिक आधार था न ही उनके बीच परस्पर सम्बन्ध। हिन्दू सम्प्रदायवादियों

संघर्ष किया। बी0. डी0 सावरकर ने 1913 में लिखा कि "18वीं शताब्दी के दौरान मराठा संघर्ष राष्ट्रीय मुक्ति का महान आन्दोलन था।"

मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी इस्लाम का स्वर्णयुग कायम किया तथा अपने स्वर्ण युग अर्थात मध्य युग के अरबी या तुर्की उपलब्धियों का दामन पकड़ा। मध्ययुगीन पश्चिम एशियाई इतिहास की सांस्कृतिक उपलब्धियों और नायकों की अँगुली पकड़ी और भारतीयता की अपेक्षा अपने मुसलमान होने पर बल दिया। मुस्लिम सम्प्रदायवादियों ने भी मुसलमानों के उत्थान और पतन की परिभाषा प्रस्तुत की। उनके अनुसार ब्रिटिश शासनकाल में हिन्दुओं का उत्थान और मुसलमानों का पतन हुआ। एक समुदाय के रूप में हुआ क्योंकि उनके हाथ से सत्ता छिन गयी थी। अल्ताफ हुसैन अली इसे मुस्लिम-विषाद का समय मानते हैं। इस विचारधार का खूब दुष्प्रचार हुआ और मुस्लिम लीग के नेताओं ने पाकिस्तान के माँग के समर्थन में इसका राजनीतिक उपयोग किया।

4.5 सम्प्रदायवादी इतिहास लेखन की आलोचना

यदि इतिहास का अध्ययन व्यापक रूप में किया जाय तो फिर साम्प्रदायिक दृष्टि के लिए कोई स्थान नहीं रह जायेगा। उदाहरण के लिए आर्थिक इतिहास के अध्ययन में एक हिन्दू किसान, एक मुसलमान किसान के ज्यादा करीब होगा, बजाय एक हिन्दू जमींदार या महाजन के। आगरा में रहने वाला एक मुसलमान बुनकर सामन्त या बदशाह की अपेक्षा एक सामान्य हिन्दू बुनकर के ज्यादा करीब होगा। इससे यह स्पष्ट होता है कि सुल्तानों या मुगलों के शासन में सभी मुसलमान शासक वर्ग और सभी हिन्दू शासित वर्ग में शामिल नहीं थे। हिन्दू जनता की तरह मुसलमान जनता भी गरीब और शोषित थी। अतः प्राचीन या मध्यकालीन राज्यों को हिन्दू या मुसलमान करार देना गलत है। सामाजिक या साँस्कृतिक इतिहास यह बताते हैं कि प्राचीन या मध्यकालीन भारत में सांस्कृतिक सहयोग और सौहार्द्र का परिवेश कायम था और एक सामाजिक संस्कृति का उदय हुआ था। इससे यह भी

पता चलता है कि आधुनिक काल के समान ही मध्य काल में उच्च वर्ग के मुसलमान सांस्कृतिक रूप से निम्न वर्ग के मुसलमानों की अपेक्षा उच्च वर्ग के हिन्दुओं के ज्यादा करीब थे। राजनैतिक इतिहास का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से पता चलता है कि न केवल भारत में बल्कि पूरी दुनिया में राजनीति धर्म से नहीं बल्कि आर्थिक और राजनीतिक स्वार्थों से परिचालित होती है। आज ही की तरह शासक और बागी दोनों अपने भौतिक हितों और महत्वाकांक्षाओं को छिपाने के लिए इसे धार्मिक रंग दे देते हैं महत्वपूर्ण बात यह है कि राजनीतिक घटनाओं और आन्दोलनो को उनके बुनियादी, सामाजिक और आर्थिक माहौल में देखना चाहिए।

4.6 बोध-प्रश्न

1- इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवाद से आप क्या समझते हैं? भारतीय इतिहास लेखन में सम्प्रदायवादी चेतना का प्रसार कैसे हुआ।

2- इतिहास-लेखन में सम्प्रदायवादी दृष्टिकोण के आधारभूत तत्वों का वर्णन कीजिए।

3- भारतीय इतिहास-लेखन में हिन्दू तथा मुस्लिम सम्प्रदायवादी विचारधाराओं की समीक्षा कीजिए ।

4.7 संदर्भ-ग्रन्थ

1- इतिहास एवं इतिहास लेखन के विविध आयाम : डा0 एस0 के0 राय तथा अन्य।

2- इतिहास चिन्तन- शैफाली चटर्जी

3- आधुनिक भारत का इतिहास- आर0 एल0 शुक्ला

इकाई -5

सबआर्ल्टन इतिहास

इकाई की रूपरेखा-

5:0 उद्देश्य

5:1 प्रस्तावना

5:2 सबाल्टर्न इतिहास-लेखन : सामान्य परिचय

5:3 प्रमुख इतिहास-चिंतक

5:4 सबाल्टर्न इतिहास-लेखन की विषय वस्तु

5:5 सबाल्टर्न इतिहास की मूल अवधारणायें

5:5.1 परम्परागत इतिहास में दलितों की अनुपस्थिति

5:5.2 दलित एवं कुलीन वर्ग में समाज का विभाजन

5:5.3 दलितों की चेतना एवं मानसिकता का अध्ययन

5:5.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचना

5:5.5 ज्ञान शक्ति को मान्यता

5:6 सबाल्टर्न विचारधारा की आलोचना

5:7 बोध-प्रश्न

5:8 संदर्भ-ग्रन्थ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप जान सकेगें कि-

- राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का क्या अभिप्राय है?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन की शुरूआत कैसे हुई?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन का विषय-क्षेत्र क्या है?
- भारतीय राष्ट्रवादी इतिहास-लेखन के गुण और दोष क्या हैं?

5.1 प्रस्तावना

इतिहास की विषयवस्तु तथा इतिहासकार का दृष्टिकोण सैद्धान्तिक तौर पर दो अलग-अलग बातें हैं। इतिहास की विषयवस्तु का सम्बन्ध समाज के किसी पहलू से हो सकता है जिसे कोई इतिहासकार अध्ययन के लिए चुनता है। जबकि इतिहासकार के दृष्टिकोण का सम्बन्ध उन अवधारणाओं और सिद्धान्तों से होता है जो इतिहासकार की समाज की समझ को निर्धारित कर रहे हों, तथा उनके अध्ययन पर अपना प्रभाव प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से डाल रहे हों। इतिहास-लेखन की विभिन्न अवधारणाएँ तथा सिद्धान्त इतिहास के विविध स्वरूप का निर्धारण करते रहे हैं। भारतीय स्वतंत्रता के परवर्ती काल में इतिहास लेखन के क्षेत्र में दो महत्वपूर्ण धाराएँ प्रगट हुईं, जिनमें से एक नवसाम्राज्यवादी धारा है तथा जिसे कैम्ब्रिज स्कूल के नाम से जाना जाता है और दूसरी धारा 'उपाश्रयी धारा' के नाम से प्रसिद्ध है। इसे ''निम्नवर्गीय प्रसंग'' तथा ''सबआल्र्टन अध्ययन'' के नाम से भी पुकारा जाता है। इस विचारधारा में पहले के समस्त इतिहास-लेखन को अभिजनवादी इतिहास लेखन कहकर रद्द कर दिया गया तथा आमजन को केन्द्र बनाकर एक ऐसा इतिहास लिखने की घोषणा की गयी जिसे जनता के नजरिए से लिखा जाना था। हाशिये पर खड़े समूह और व्यक्तियों के जीवन में झाँककर देखना, नये स्रोतों की खोज करना, उनकी पुनर्व्याख्या करना, इसकी प्रमुख विशेषता है। इस इकाई में उक्त सभी

किया गया है जिनके स्थान व भूमिका को तथाकथित अभिजनवादी इतिहास लेखन ने अनदेखा कर रखा था। यद्यपि अभी तक 'सबाल्टर्न' शब्द की सर्वमान्य हिन्दी संज्ञा स्थापित नहीं हो पायी है। परन्तु इस विचारधारा की समानता यूरोपीय इतिहास की विचारधारा 'आम आदमी का इतिहास' (Plebian History) अथवा 'निम्न वर्गों का इतिहास' (History from below) के साथ स्थापित की जा सकती है।

5.3 प्रमुख इतिहास-चिन्तक

'निम्नवर्गीय प्रसंग' के नाम से भी पुकारी जाने वाली इतिहास लेखन की इस विशिष्ट एवं तीक्ष्ण रूप में विवादास्पद धारा को पश्चिमी जगत में जार्ज रूड, जाजेन्स लेफेवर, ई.जे. हाब्स बाम और ई. पी. थामसन जैसे इतिहासकारों ने लोकप्रिय बनाया। भारत में 'उपाश्रयी इतिहास-लेखन' ८० के दशक में उस समय सैद्धान्तिक रूप में सामने आया जब रंजीत गुहा नामक विद्वान ने "सब आल्टर्न स्टडीज" नाम से एक ग्रन्थ शृंखला की शुरूआत की । अब तक इसके तहत बतौर परियोजना 11खण्ड प्रकाशित हो चुके हैं। जहाँ तक भारत में इस विचारधारा के समर्थक विद्वानों की बात है इसमें प्रमुखतया रंजीत गुहा, पार्थ चटर्जी, ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, शाहिद अमीन, दीपेश चक्रवर्ती, अशोक सेन, गायत्री चक्रवर्ती, डेविड हार्डीमेन, डेविड आर्नाल्ड, स्टीफेन हैनिंग्घम, गौतम भद्र, स्वप्नदास गुप्ता आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन्होनें अंग्रेजी शासन के परिप्रेक्ष्य में भारत के लोगों की स्थिति के सम्बन्ध में चिन्तन पर विशेष ध्यान दिया। इस दिशा में उन्होनें समाज के उन उपेक्षित और निर्धन वर्ग की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया जिसे दलित वर्ग के नाम से जाना जाता था और जिसे समाज में कोई महत्व प्राप्त नहीं था। उन्होने न केवल जनसाधारण गरीब किसान, चरवाहे, मजदूरों और स्त्री-समाज का वर्णन किया अपितु उनके विचारों तक पहुँचने का प्रयास किया।

संदर्भों में ''सबआर्ल्टन इतिहास'' की अवधारणा को समझाने का प्रयास किया गया है।

5.2 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन : सामान्य परिचय

सब आर्ल्टन आधुनिक इतिहास लेखन की सर्वथा नवीन विचारधारा है जिसका जन्म अमेरिका में हुआ था, जबकि सब आर्ल्टन (Sub Aultarn) शब्द का प्रथमतः प्रयोग इटली के मार्क्सवादी चिन्तक एन्टोनियों ग्राम्सी ने 'दलित व उत्पीड़ित वर्ग' के लिए किया था। रंजीत गुहा के अनुसार इतिहास के संदर्भ में इसका अभिप्राय वर्ग, जाति, वय, लिंग तथा पद या अन्य किसी प्रकार की अधीनता की स्थिति से है तथा इस विचारधारा का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों, किसानों, मजदूरों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, सुविधा व अधिकारों से वंचित जनों या विस्थापितों, शरणार्थियों, निर्वासितों के प्रच्छन्न या दबाकर रखे गये विवरणों को प्रस्तुत करना है। रणजीत दास गुप्ता का कहना है कि 'सबाल्टर्न' शब्द का अभिप्राय केवल कृषक वर्ग या निर्धन श्रमिकों या जन सामान्य से नहीं है, बल्कि ऐसी अवधारणा है जिसमें प्रभुत्व व अधीनता के द्वन्द्वात्मक सम्बन्ध अन्तर्निहित हैं। प्रो0 एस0 पी0 पाँथरी की दृष्टि में ''सबाल्टर्न'' इतिहासकारों का प्रयास अथवा दावा एक नये प्रकार की इतिहास-रचना का है जो अभिजन के दायरे से बाहर निकलकर निम्नजन की ऐतिहासिक प्रक्रियाओं को भी परखे और इसके साथ ही अभिजन तथा निम्नजन की प्रक्रियाओं को दो अलग पटरियों पर न ढकेलकर इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध, आश्रय तथा द्वन्द्व के आधार पर औपनिवेशिक काल की समझ को सुस्पष्ट करे''। अतः इतिहास लेखन के दोनों पहलू महत्वपूर्ण हैं।

इतिहास लेखन की 'सब आर्ल्टन' विचारधारा ने आधुनिक भारतीय इतिहास लेखन को नया विश्लेषणात्मक स्थान प्रदान किया। 'सबाल्टर्न स्टडीज' नामक इस धारा में उन समूहों की चेतना, राजनीति तथा गतिविधियों को केन्द्रीय महत्व प्रदान

रूप में किया गया। इतिहासकारों ने इन्हें हमेशा अपने-2 रूझानों के अनुसार कभी आजादी की लड़ाई में तो कभी समाजवाद की लड़ाई में एक मोहरा मानकर इतिहास लेखन किया है, जबकि इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बड़े-2 विद्रोहो या क्रान्तिकारी परिवर्तनों में इन्होनें महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किन्तु जब भी ऐसे विद्रोहों की चर्चा की जाती है तो उन्हें किसी बड़े नेता या संगठन के इशारे पर चलने वाले अन्य लोगों या आदि के रूप में चित्रित कर दिया जाता है। कभी भी इनकी भूमिका का अध्ययन इनके नजरिये से नहीं किया जाता। इनकी मानसिक चेतना, सोच, विचार, आदि के बारे में पता लगाने का प्रयास नहीं किया, जबकि प्रायः ऐसा होता है कि विद्रोहों या क्रान्तियों में भाग लेने वाले लोगों की सोच इनके तथाकथित कुलीन अथवा उच्चवर्गीय और पढ़े लिखे नेताओं से पूरी तरह मेल नहीं खाती, बल्कि यह उनके अपने अनुभवों व नेताओं की जरूरतों पर आधरित होती है तथा उनकी सांस्कृतिक परम्पराओं से जुड़ी होती है। किन्तु इतिहास-लेखन में इन बातों को दरकिनार करते हुए इन्हें या तो बड़े विद्रोहों में समाहित कर देते हैं अथवा किसी बड़े नेता या सगठन के साथ जोड़ देते हैं और उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त कर देते हैं।

5:5.2 दलित एवं कुलीन वर्ग में समाज का विभाजन – इतिहास-लेखन की स्थापित परम्पराओं की कमियों से बचने के लिए सबाल्टर्न अध्ययन के प्रतिपादक रंजीत गुहा ने भारतीय समाज को कुलीनों एवं दलितों के विभाजन पर आधारित समाज के रूप में देखने का सुझाव दिया है। इसका कारण यह दर्शाया गया है कि पूँजीवादी परिणति से पहले तथा परिपक्व वर्ग-चेतना के उद्‌भव से पूर्व किसानों, मजदूरों तथा कबीलों इत्यादि को बिल्कुल अलग-अलग एवं अनन्य वर्गों के रूप में देखने के स्थान पर घनिष्ठ पारिवारिक सम्बन्धों तथा स्थानीय परस्परता एवं मिलीजुली लोकचेतना तथा एक जैसे अनुभव के आधार पर गहराई से जुड़े हुए दलित समुदायों के रूप में देखना अधिक उपयोगी है। वास्तव में इसी नजरिये के

5.4 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन की विषय-वस्तु

यह इतिहास लेखन मुख्य रूप से मुगल काल, स्वतंत्रता आन्दोलन और इसके बाद की आधुनिक संस्कृति को खँगालता है और यह दावा करता है कि इतिहास लेखन के केन्द्र में केवल कुलीन साक्ष्य एवं कुलीनतावादी इतिहास ही नहीं है अपितु यह उत्तर-आधुनिक चिन्तन की तरह क्षेत्रीय चेतना को, किसानों को, मजदूरों को केन्द्र में रखकर इतिहास की व्याख्या करता है। सबआल्टर्न इतिहासकार मार्क्सवाद को तिलांजलि देकर एक नया इतिहास गढ़ रहे हैं। इन इतिहासकारों में प्रायः सभी भूतपूर्व मार्क्सवादी हैं। इन इतिहासकारों ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के दो पक्षों पर विचार किया हैः 1- उपनिवेशी भारत में कृषक प्रतिरोध तथा कृषक चेतना, 2- किसान समुदाय और राष्ट्रीय आन्दोलन के बीच सम्बन्ध। इसके अतिरिक्त ये विद्वान औपनिवेशी भारत की राजधानी में दो अलग-अलग क्षेत्रों की बात करते हैंः 1-अभिजन क्षेत्र- इसमें वे अभिजन लोग आते हैं जो ब्रिटिश शासकों द्वारा प्रदत्त अधिकारों और सुविधाओं के लिए संघर्षरत थे।2- उपाश्रित क्षेत्र इसमें वे नेतागण आते थे जो उपाश्रयी वर्ग या समूह के थे। इन दोनों क्षेत्रों का आपसी सम्बन्ध मूलतः शत्रुतापूर्ण था।

5.5 सब आर्ल्टन इतिहास लेखन की मूल अवधारणायें

इतिहास लेखन की इस अनन्य विचारधारा के सम्बन्ध में जानने योग्य प्रथम बात यह है कि इस विचारधारा के सभी इतिहासकारों में पूर्ण मतैक्य नहीं है। शेष नीचें की पंक्तियों में उक्त नजरिये की मूल अवधारणाओं की विवेचना की गयी हैः

5:5.1 इतिहास में दलितों की अनुपस्थिति- सबाल्टर्न विचारधारा के सभी लेखक इस बात पर जोर दे रहे हैं कि परम्परागत इतिहास लेखन में दलित जनता का इतिहास आज तक लिखा ही नहीं गया। यदि अंकित किया गया भी तो इन्हें उच्चवर्गीय नेताओं या संगठनों के इशारे पर चलने वाले पिछलग्गू या कठपुतली के

कारण इस तरह के इतिहास लेखन को सामूहिक रूप से सबाल्टर्न या अधीनस्थों या दलितों के अध्ययन का नाम भी मिला है। यद्यपि इस नाम विशेष से इसी परम्परा के सभी इतिहासकार स्वयं पूर्णतया संतुष्ट नहीं है। यह सच है कि आधुनिक भारत के इतिहास में दलितों के अध्ययन को यूरोप की तरह 'आम आदमी का इतिहास' (Plebian History) या निम्नवर्गों का इतिहास (History from below) भी कहा जा सकता था। परन्तु मोटे तौर पर ये सभी इतिहासकार मानते हैं कि ऐतिहासिक विश्लेषण में शोषण एवं प्रभुत्व की विषमताओं पर ध्यान देना महत्वपूर्ण है (आधुनिक भारत का इतिहास लेखन, देवेश विजय)।

5:5.3 दलितों की चेतना एवं मानसिकता का अध्ययन- सबाल्टर्न सिद्धान्त के प्रतिपादकों का कहना है कि दलितों को पेट से सोचने वाले जाहिल लोगों के रूप में देखने के बजाय उनकी चेतना एवं मानसिकता को समझने पर इतिहासकारों द्वारा विशेष ध्यान दिया जाय। ये सभी गहराई से तभी समझे जा सकते हैं जब आम आदमी के नजरिये, उसकी सोच और उसकी आह की गूँज इतिहासकार समझ सकें और प्राथमिक स्रोतों के रचनात्मक अध्ययन द्वारा इतिहास के पृष्ठों में उसे उतार सके। लेकिन दलित समुदायों की चेतना और मानसिकता का वास्तविक रूप क्या है? उसकी बुनियादी समानतायें तथा समय एवं स्थान के अनुरूप आने वाली विविधायें क्या है? इन प्रश्नों पर 'सबआल्टर्न अध्ययन' में मतैक्य नहीं है। परन्तु इस बात पर काफी सहमति है कि दलितों की चेतना में शोषण के प्रति विरोध तथा कुलीनों के प्रभुत्व का आम हालातों मे विषम मिश्रण मौजूद रहते हैं।

एक अन्य समस्या दलितों की चेचना के अध्ययन विधि या शोध-पद्धति की है। अतीत के समाजों की चेतना एवं मानसिकता की कल्पना करना और वह भी उन शोषित अनपढ़ लोगों की मानसिकता की जो खुद कुछ लिखकर न छोड़ सके और जिनके बारे मे अक्सर सहानुभूतिविहीन कुलीनों द्वारा रचे गये स्रोतों से ही हमें कुछ जानकारी मिलती है। ऐसे वर्गों की सोच की आज कल्पना कर पाना तो शायद और

भी दुलर्भ होगा। परन्तु सबाल्टर्न के इतिहासकारों ने इसी चुनौती को अपने शोध का केन्द्र बिन्दु बनाया है। लेकिन इस महान उद्देश्य के लिए इन इतिहासकरों द्वारा अपनायी गयी शोध-पद्धति एवं शैली काफी विवादास्पद रही है। जो इतिहास शोषण और दमन की अनुभूति को अपना केन्द्र बिन्दु बनाना चाहता हो उसके पन्नों में शायद शब्दाडंम्बर, अतिशयोक्ति तथा क्लिष्टता की नहीं, बल्कि इन्सानों के पसीने और उनकी मिट्टी की सीधी और सच्ची छवि का झलकना ही अधिक स्वाभाविक लगेगा। परन्तु भारतीय इतिहास लेखन के तथाकथित कुलीन दृष्टिकोणों का परिहास करने वाले सबाल्टर्न इतिहासकारों ने शायद इस सरल से सत्य को आत्मसात नहीं किया है। यही कारण है कि सहायक स्रोतों के आधार पर विदेशों से ही भारतीय दलितों को समझने का उनका अपना दावा कुछ कम कुलीन नहीं प्रतीत होता।

5:5.4 मार्क्सवादी दृष्टिकोण की आलोचना - सबाल्टर्न विचारधारा के इतिहासकारों ने मार्क्सवादियों के इस दृष्टिकोण की भी आलोचना की है कि समृद्ध लोगों के सहयोग के अभाव में किसी आन्दोलन का होना असम्भव होता है क्योंकि उन्हें सिर्फ समृद्ध वर्ग ही प्रेरित कर सकता है। इन इतिहासकारों ने यह माना है कि औपनिवेशिक काल में भारतीय समाज में मुख्य अन्तर्विरोध अभिजातवर्ग (भारतीय एवं ब्रिटिश) तथा निचले स्तर की जनता के बीच था न कि उपनिवेशवाद और भारतीय जनता के बीच। इनके अनुसार साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष को लेकर भारतीय जनता में कभी भी एकता कायम नहीं हुयी है और भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन जैसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं था। इसके स्थान पर वे जोर देते हैं कि इस आन्दोलन में दो स्पष्ट धारायें थी-

1- निचले तबके की जनता का साम्राज्यवाद विरोधी वास्तविक संघर्ष।

2- अभिजन वर्ग का नकली राष्ट्रीय स्वाधीनता आन्दोलन।

इनमें अभिजनवादी साम्राज्य का अन्त हुआ। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का जो सत्ता पर कब्जा करने का प्रतिबिम्ब मात्र था। आर0 पी0 दत्ता ने 'इण्डिया टुडे' में काँग्रेस पर किसानों के शोषण का आरोप लगाया है। जबकि शाहिद अमीन अपनी पुस्तकों 'Gandhi Ji as Mahatma' और 'गोरखपुर जिला 1922' में किसान आन्दोलन को एक पूर्ण स्वायत्त आन्दोलन के रूप में वर्णित किया है।

5:5.5 ज्ञान-शक्ति को मान्यता- सबार्ल्टन की एक प्रमुख मान्यता यह रही है कि ज्ञान की ही शक्ति होती है। यह मान्यता रूडयार्ड किपलिंग के 'श्वेतों का बोझ' का ही पर्याय है। उनके अनुसार भारत पर अंग्रेजों का अधिपत्य उनके अपने ज्ञान-विज्ञान का ही विषय था, यद्यपि यह भावना इनके अन्दर व्याप्त एक अन्तर्विरोध जैसा है।

5.6 सबाल्टर्न विचारधारा की आलोचना

सबाल्टर्न अध्ययन की मूल अवधारणाओं की कई इतिहासकारों ने जोरदार आलोचना की है। इस सिलसिले में एक रोचक बात यह है कि ''सबाल्टर्न अध्ययन' से जुड़े हुए ज्यादातर इतिहासकार मार्क्सवादी विचारधारा से ही निकलकर आये हैं। स्वभावतः इनकी आलोचना में भी मार्क्सवादी इतिहासकारों का स्वर ही सबसे अधिक मुखरित रहा है। इस आलोचना को मुख्य आयामों का संक्षिप्त उल्लेख यहाँ आवश्यक होगा। यह आलोचना वास्तव में चार अलग-अलग मुद्दों पर केन्द्रित रही है-

1- दलित (Subaltern)

2- चेतना (Consciouness)

3- स्वायत्तता (Autonomy)

4- संगठन (Organisation)

'सबाल्टर्न अध्ययन' की आलोचना में कुछ इतिहासकारों का कहना है कि 'सबार्ल्टन' शब्द की अवधारणा ही मूलतः भ्रामक है। सबाल्टर्न इतिहासकार समाज

को 'कुलीन' तथा 'दलित' जैसे अस्पष्ट वर्गों में बाँटते हैं। ये शोषित किसानों, फैक्टरी मजदूरों, तथा जंगलों में रहने वाले कबीलों, महिलाओं, निचले दर्जे के सरकारी कर्मचारियों इत्यादि को तथा इनकी सोच तथा मानसिकता के स्वरूप को भी एक ही दायरे में रखकर देखना चाहते हैं, किन्तु समाज को आसानी से अलग किये जाने वाले 'कुलीन' तथा 'दलित' समूहों में बाँटकर शायद देखना सम्भव नहीं। परन्तु इस आलोचना को आलोचना के रूप में लेने के बजाय सबाल्टर्न अध्ययन के कुछ विचारकों ने अपने नजरिये को सही साबित करने के रूप में लिया है। उनका कहना है कि उन्होनें दलित से अभिप्राय प्रचलित अर्थ में किसी विशिष्ट समूह से लेने के बजाय मात्र एक बहुआयामी और बदलते हुए शक्ति सम्बन्ध से ही माना है जिसके सामाजिक और मानसिक आयामों को इतिहास के अलग-अलग चरणों में निरूपित करना ही 'सबाल्टर्न अध्ययन' का ध्येय समझा गया है।

सबाल्टर्न अध्ययन के विरूद्ध मार्क्सवादी दृष्टिकोण से ही दूसरी मुख्य आपत्ति यह उठायी गयी है कि इस परम्परा के इतिहासकारों ने दलितों के आर्थिक परिवेश के स्थान पर उनकी चेतना को अधिक महत्व देकर उस आदर्शवाद को फिर से स्थापित करने की चेष्टा की है जिसे मार्क्स अपने ऐतिहासिक विश्लेषण में पहले ही धाराशायी कर चुके थे। परन्तु शायद यहाँ यह स्मरण रखना जरूरी है कि चेतना और विचारों को ऐतिहासिक प्रक्रिया में प्राथमिकता देना एक बात है और यह मात्र उनकी ओर ध्यान देना और उन्हें भी ऐतिहासिक व्याख्या में शामिल करना दूसरी बात है। इस दूसरी बात से अधिकांश इतिहासकारों को आपत्ति नहीं होनी चाहिए।

'सबाल्टर्न अध्ययन' के खिलाफ एक बहुत ही महत्वपूर्ण आपत्ति यह उठायी गयी है कि इस अध्ययन से सम्बन्धित विचारकों ने न केवल दलितों की चेतना एवं मानसिकता के अध्ययन पर अधिक जोर दिया है बल्कि दलितों को एक स्वायत्त वर्ग के रूप में चित्रित किया है। कई विचारकों ने उक्त संदर्भ को समीचीन नहीं माना है। सौभाग्य से 'सबाल्टर्न अध्ययन' के ही कई सुविज्ञ अध्येताओं ने इस प्रवृत्ति की

स्वयं आलोचना की है और अपने लेखन में दलितों की चेतना के विद्रोही एवं संकीर्ण, सभी पहलुओं पर समुचित प्रकाश डाला है।

परन्तु दलित चेतना की 'स्वायत्तता' की बहस से अधिक महत्वपूर्ण शायद यह मुद्दा है कि इस चेतना का वास्तविक स्वरूप क्या है? और समय तथा स्थान के परिवर्तन के साथ इसमें क्या बदलाव आते रहे हैं इस मुद्दे को शायद 'सबाल्टर्न' अध्ययन का विशिष्ट उद्देश्य भी नहीं माना जा सकता है। वास्तव में इस महत्वपूर्ण मुद्दे पर इतिहासकारों के बीच कोई खास मतैक्य नहीं है। एक ओर 'सबाल्टर्न अध्ययन' के प्रवक्ता रंजीत गुहा का रूझान दलितों की चेतना में छिपी कुछ सार्वभौमिक तथा शाश्वत प्रवृत्तियों तथा प्राथमिक पहलुओं (Elementary aspects) को खोज निकालने का दिखता है तो दूसरी ओर सुमति सरकार जैसे लेखकों ने दलितों की मानसिकता में समय और स्थान की विविधताओं के विश्लेषण पर अधिक जोर दिया है। छात्रों के लिए शायद यह महसूस करना मुश्किल न होगा कि इतिहास की दृष्टि से दूसरा प्रयत्न कहीं अधिक सार्थक तथा उपयोगी है। यद्यपि इस दिशा में दीर्घकालिक सामान्यीकरण अभी कुछ विशेष नहीं हो पाया है।

फिर भी 'सबाल्टर्न अध्ययन' के बारे में यह कहा जा सकता है कि इस प्रयोग से आधुनिक भारत के इतिहास लेखन में विचार की नयी गहमागहमी उत्पन्न हुयी है। इस परम्परा के बाहर के इतिहासकारों के साथ भी और इसके अपने रचनाकारों के बीच भी। हम जानते हैं कि 'सबाल्टर्न अध्ययन' से जुड़े हुए बहुत से इतिहासकार मार्क्सवादी विचारधारा से ही निकलकर आये हैं और इनके साथ आज भी इनका एक रोचक संवाद जारी है। इसी प्रकार सबाल्टर्न अध्ययन से जुड़े बहुत से इतिहासकार आज संरचनावाद, उत्तर-संरचनावाद, सामाजिक इतिहास जैसे कई नये ऐतिहासिक प्रयोगों की ओर उन्मुख हुए हैं जो कुछ समय से यूरोप के विचारजगत में प्रभावशाली बदलाव प्रस्तुत करते रहें हैं।

सबाल्टर्न इतिहास-लेखन ने भारतीय इतिहास लेखन को नया विश्लेषणात्मक स्थान प्रदान करने का प्रयास किया। 'सबाल्टर्न स्टडीज' नामक इस धारा में उन समूहों की चेतना, राजनीति तथा गतिविधियों को केन्द्रीय महत्व प्रदान किया गया है, जिनके स्थान व भूमिका को तथाकथित अभिजनवादी इतिहास लेखन ने अनदेखा कर रखा था।

5.7 बोध-प्रश्न

1- सबाल्टर्न इतिहास की अवधारणा का विवेचन कीजिए।

2- सबाल्टर्न इतिहास से आप क्या समझते हैं। इस विचारधारा के प्रमुख इतिहासकार तथा उनके विचारों पर प्रकाश डालिए।

3- सबाल्टर्न इतिहास की विषयवस्तु क्या है? इतिहास लेखन की इस विचारधारा की आलोचनात्मक समीक्षा कीजिए।

5.8 संदर्भ-ग्रन्थ

1- Introduction of Subaltern Studies- Ranjit Guha

2- ''आधुनिक भारत में इतिहास लेखन का पुनरावलोकन'', आधुनिक भारत का इतिहासः आर0 एल0 शुक्ला।

3-उपाश्रयी (सबाल्टर्न) इतिहास-लेखन – प्रो0 शैलेन्द्र प्रसाद पाँथरी